

अनुग्रह ज्योति 2019

ISSN : 2454-1133



ए.एन. कॉलेज, पटना

तृतीय चक्र, श्रेणी 'ए' – राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (नैक) द्वारा पुनर्मूल्यांकित
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यु.जी.सी.) द्वारा 'विशिष्ट' महाविद्यालय के रूप में रेखांकित

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना



विश्व पर्यावरण दिवस के अवसर पर बिहार राज्य प्रदूषण कंट्रोल बोर्ड द्वारा आयोजित कार्यक्रम में पर्यावरण के क्षेत्र में ए.एन. कॉलेज पटना के उत्कृष्ट कार्यों के लिए माननीय मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार से सम्मान-पत्र ग्रहण करते कॉलेज के प्रधानाचार्य प्रोफ़ेसर एस.पी.शाही।

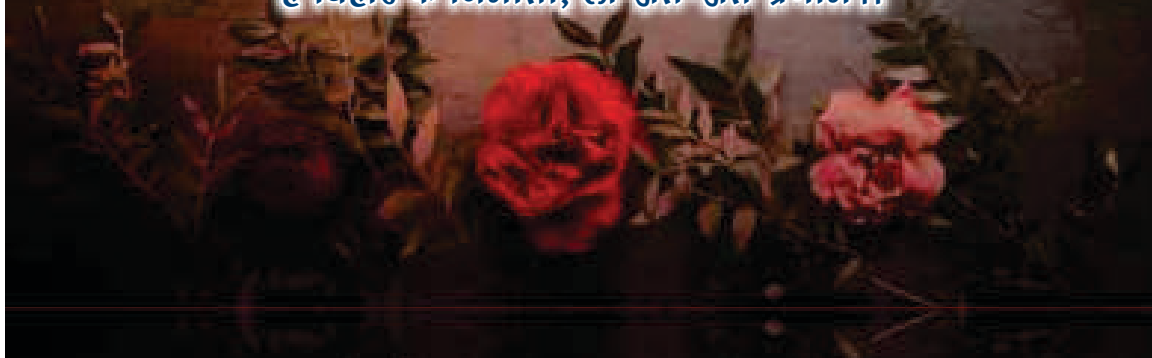


अनुग्रह जयंती सह-स्थापना दिवस समारोह-2018 का उद्घाटन करते मुख्यमंत्री, कुलपति प्रतिकुलपति, प्रधानाचार्य एवं अन्य।

बिहार विभूति
डॉ. अनुग्रह नारायण सिंह



तुम बिहार के गौरव-गरिमा, तुम थे देव महान
हे बिहार के निर्माता, लो शत-शत प्रणाम॥



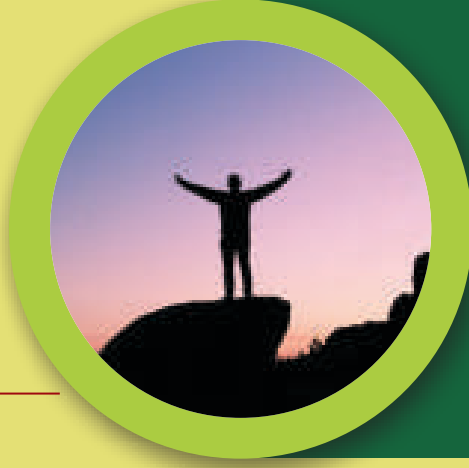


करो अनुग्रह हे नारायण,
ज्ञान की ज्योति जले...!
भासित अन्तर्मन जन-जन का,
जगमग जग कर दे ऽ ऽ...!
करो अनुग्रह ...!

आत्म विश्वास से भरा हृदय हो,
कर्म-धर्म हो, दया, विनय हो।
सत्य बने संबल जीवन का
ऐसा मन कर दे ऽ ऽ ऽ...!
करो अनुग्रह ...!

ऊँच नीच का भेद नहीं हो
स्वस्थ तन, अनुशासित मन हो,
विजयी हो संघर्ष हमारा
बाधा सब हर ले ऽ ऽ ऽ
करो अनुग्रह ...!

अनुग्रह ज्योति 2019



संरक्षक

प्रो.एस.पी.शाही, प्रधानाचार्य

प्रधान संपादक

प्रो. कलानाथ मिश्र

संपादक

डॉ. रत्ना अमृत

संपादक मंडल

- प्रो. अजय कुमार
- प्रो. कृष्णा सिंह
- डॉ. एस.के.पी. सिंह
- डॉ. हंसा गौतम
- डॉ. अनुराधा सेन
- डॉ. अभिषेक दत्त
- डॉ. अमृता चक्रवर्ती
- श्री ज्योतिष कुमार
- डॉ. संजय कुमार सिंह

अनुग्रह ज्योति

डि. प्रशांत कुमार रेड्डी, भा.प्रशा.से
D. Prasanth Kumar Reddy, IAS



सत्यमेव जयते

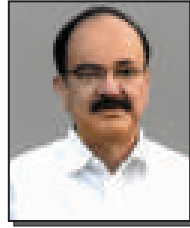
भारत के उप-राष्ट्रपति के निजी सचिव

PRIVATE SECRETARY

TO THE VICE-PRESIDENT OF INDIA

ubZ fnYyh / NEW DELHI-110011

TEL. : 23016344/23016422. FAX : 23018124



संदेश

महामहिम उपराष्ट्रपति जी को यह जानकर हर्ष हुआ है कि अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना द्वारा दिनांक 18 जून, 2019 को 'अनुग्रह बाबू की 132वीं जयंती' के अवसर पर एक समारोह का आयोजन किया जा रहा है तथा इस सुअवसर को स्मरणीय बनाने के उद्देश्य से महाविद्यालय पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' का प्रकाशन भी किया जा रहा है जोकि एक सराहनीय प्रयास है।

उपराष्ट्रपति जी अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना के समस्त पदाधिकारियों के उज्ज्वल भविष्य की कामना करते हैं एवं आयोज्यमान 'अनुग्रह बाबू की 132वीं जयंती' तथा प्रकाश्यमान पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' की सफलता हेतु अपनी हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करते हैं।

प्रशांत

(डि. प्रशांत कुमार रेड्डी)

नई दिल्ली :
15 मई, 2019

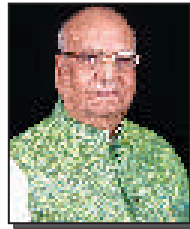
लाल जी टंडन
LAL JI TANDON



सत्यमेव जयते
राज्यपाल, बिहार
GOVERNOR OF BIHAR

राजभवन
पटना-800022
RAJ BHAVAN
PATNA - 800022

20 मई, 2019



संदेश

यह जानकर हार्दिक प्रसन्नता हुई कि अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना अपनी महाविद्यालयीय पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' का वर्ष 2019 अंक प्रकाशित करने जा रहा है।

आशा है, पत्रिका अपने विगत अंकों की भाँति रोचक, ज्ञानवर्द्धक और समसामयिक विमर्शों से परिपूर्ण होगी तथा इसके प्रकाशन से महाविद्यालयीय प्रतिभाओं की रचनाशीलता को भी अपने विकास के नये अवसर और आयाम मिलेंगे।

मैं 'अनुग्रह जयंती-सह-स्थापना दिवस समारोह' के आयोजन तथा पत्रिका के प्रकाशन की समग्र सफलता के लिए अपनी शुभकामनाएँ सम्प्रेषित करता हूँ।

(लाल जी टंडन)

मुख्यमंत्री
बिहार



पटना
दिनांक : 04.06.2019



संदेश

मुझे यह जानकारी प्रसन्नता हो रही है कि दिनांक 18 जून, 2019 को बिहार विभूति अनुग्रह नारायण सिन्हा के 132वीं जयन्ती के अवसर पर अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना द्वारा अनुग्रह जयन्ती-सह-स्थापना दिवस समारोह का आयोजन किया जा रहा है। इस अवसर पर महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' का लोकार्पण भी प्रस्तावित है।

बिहार के प्रथम उप-मुख्यमंत्री सह वित्त मंत्री, बिहार विभूति अनुग्रह नारायण सिन्हा आधुनिक बिहार के निर्माताओं में से एक महान स्वतंत्रता सेनानी और कुशल प्रशासक थे। बिहार के विकास में उनका योगदान उल्लेखनीय है। अनुग्रह बाबू की जयन्ती के अवसर पर हम उन्हें अपनी विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना का उच्च गुणवत्तायुक्त शिक्षा प्रदान करने में सदा विशिष्ट स्थान रहा है। इस महाविद्यालय में अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों ने देश के साथ-साथ विदेशों में भी प्रतिष्ठा एवं प्रसिद्धि प्राप्त की है। आशा है कि 63वाँ स्थापना दिवस समारोह में व्यक्त विचारों से जनमानस में एक नई चेतना का संचार होगा। मुझे विश्वास है कि प्रकाश्य पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' छात्र-छात्राओं के बौद्धिक चेतना के संबर्द्धन में पूर्ण रूप से सफल होगी, साथ ही बिहार विभूति के जीवन, सिद्धांतों, आदर्शों, स्मृतियों और विरासत को आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होगी।

छात्र एवं छात्राओं के उज्ज्वल भविष्य, अनुग्रह जयन्ती-सह-स्थापना दिवस समारोह के सफल आयोजन तथा पत्रिका के प्रकाशन एवं उसकी सार्थकता हेतु मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ।

(नीतीश कुमार)

अनुग्रह ज्योति

सुशील कुमार मोदी

उपमुख्यमंत्री
बिहार

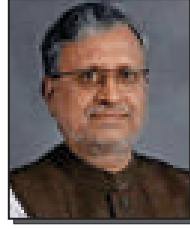


पटना

0612-2217894 (का.)
0612-2674624 (आ.)
0612-2217399 (आ.)
0612-2217639 (फ़ैक्स)

पत्रांक :

दिनांक : 29.05.2019



शुभकामना संदेश

यह जानकार अत्यंत प्रसन्नता हुई कि अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना, 18 जून, 2019 को अपना 63वाँ स्थापना दिवस मनाने जा रहा है एवं इस अवसर पर महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' का प्रकाशन भी होने जा रहा है।

इस महाविद्यालय की स्थापना महान स्वतंत्रता सेनानी एवं बिहार के प्रथम उप मुख्यमंत्री-सह-वित्त मंत्री बिहार विभूति डॉ. अनुग्रह नारायण सिन्हा के नाम पर की गई थी एवं इनकी 132वीं जयन्ती के अवसर पर इस समारोह का आयोजन किया जा रहा है।

आशा है, समारोह एवं पत्रिका से लोग अनुग्रह बाबू के व्यक्तित्व एवं कृतित्व से अवगत होकर प्रेरणा ग्रहण करेंगे एवं महाविद्यालय की विभिन्न गतिविधियों से भी परिचित हो सकेंगे।

स्थापना दिवस समारोह एवं पत्रिका के प्रकाशन से जुड़े हुए सभी महानुभावों को साधुवाद एवं इनकी सफलता हेतु हार्दिक मंगलकामनाएँ।

(सुशील कुमार मोदी)

अनुग्रह ज्योति

कृष्णनंदन प्रसाद वर्मा

मंत्री
शिक्षा एवं विधि विभाग
बिहार सरकार, पटना



Krishnnandan Prasad Verma

Minister
Education & Law Department
Govt. of Bihar, Patna

पत्रांक : M-216

दिनांक : 12.06.2019



संदेश

यह हर्ष का विषय है कि अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना द्वारा अनुग्रह बाबू की 132वीं जयंती के अवसर पर कॉलेज अपना 63वाँ स्थापन दिवस 18 जून 2019 को मनाने जा रहा है। साथ ही महाविद्यालय पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' का प्रकाशन किया जा रहा है जिसका लोकार्पण बिहार विभूति अनुग्रह बाबू की जयन्ती के अवसर पर होगा। उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना का योगदान अत्यंत ही महत्वपूर्ण रहा है।

मैं समारोह की सफलता तथा महाविद्यालय पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' के ससमय प्रकाशन के लिए मंगलकामना करता हूँ।

(कृष्णनंदन प्रसाद वर्मा)

आवास : 3, स्टैंड रोड, पटना-800015, कार्यालय : विकास भवन, नया सचिवालय, बिहार, पटना

दूरभाष : 0612-2201904 (का.), फैक्स : 0612-2215836

Res. : 3, Stand Road, Patna - 800 015, Office : Vikas Bhawan, New Secretariat, Bihar, Patna

Phone : 0612-2204904(O), Fax : 0612-2215836

E-mail : ministereducation0099@gmail.com | Mob.: 9931271328, 8544412147

अनुग्रह ज्योति

अशोक चौधरी

मंत्री
भवन निर्माण विभाग
बिहार सरकार, पटना



Ashok Chaudhary

Minister
Building Construction Dept.
Govt. of Bihar, Patna

पत्रांक :



संदेश

यह प्रसन्नता का विषय है कि अनुग्रह बाबू की 132वीं जयंती तथा अनुग्रह नारायण महाविद्यालय पटना का स्थापना दिवस मनाया जा रहा है। इस अवसर पर महाविद्यालय की वार्षिक पत्रिका अनुग्रह ज्योति का भी प्रकाशन होने जा रहा है। यह महाविद्यालय आधुनिक बिहार के निर्माता तथा भारत के महान स्वतंत्रता सेनानी तथा बिहार के पहले उपमुख्यमंत्री-सह-वित्त मंत्री बिहार विभूति अनुग्रह नारायण सिन्हा के नाम पर स्थापित है।

अपेक्षा है कि यह महाविद्यालय बिहार विभूति की परिकल्पना एवं उनके शैक्षणिक आदर्शों को फलीभूत करने हेतु तत्पर होगा।

इस अवसर पर मैं महाविद्यालय पत्रिका प्रकाशन एवं छात्र-छात्राओं के स्वर्णिम भविष्य के लिए मंगल कामना करता हूँ।

(अशोक चौधरी)

अनुग्रह ज्योति



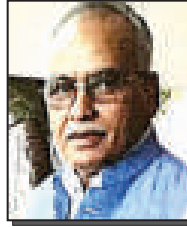
PATLIPUTRA UNIVERSITY

PATNA-800 020

E-mail : patliputrauniversity2018@gmail.com

Ref. No. :

Date :



शुभकामना संदेश

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना के लिए यह गौरव का विषय है स्थानीय अनुग्रह नारायण महाविद्यालय, पटना अपना 63वाँ स्थापना दिवस मनाने जा रहा है और वह भी अनुग्रह बाबू की 132वीं जयंती के अवसर पर। इस मौके पर महाविद्यालय अपने कॉलेज की वार्षिक पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' का प्रकाशन करने जा रहा है।

महाविद्यालय की पत्रिका दो शब्दों से बनी है-अनुग्रह और ज्योति। अनुग्रह का अर्थ है कृपा। अष्टछाप के कवियों का सूत्र वाक्य था-पोषणम् तत् अनुग्रहः। अर्थात् ईश्वर का अनुग्रह ही हमारे जीवन में भक्ति का कारण है। जिस प्रकार स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ भोजन का होना जरूरी है उसी तरह स्वस्थ आध्यात्मिक मन के लिए परमात्मा की कृपा जरूरी है।

उस आध्यात्मिक प्रकाश पुंज से निकलनेवाली ज्योति का नाम अनुग्रह ज्योति है। मैं महाविद्यालय के स्थापना दिवस पर प्रकाशित होने वाली वार्षिक पत्रिका के लिए न सिर्फ अपनी शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ बल्कि बिहार विभूति अनुग्रह बाबू के सपनों के इस महाविद्यालय के 63वें स्थापना दिवस की सफलता की कामना भी करता हूँ।

(प्रो.जी.सी.आर.जायसवाल)

कुलपति

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

अनुग्रह ज्योति



PATLIPUTRA UNIVERSITY

PATNA-800 020

E-mail : patliputrauniversity2018@gmail.com

Ref. No. :

Date :



शुभकामना संदेश

यह जानकर अपार हर्ष हो रहा है कि ए.एन.कॉलेज पटना, बिहार विभूति अनुग्रह नारायण सिन्हा की 132वीं जयंती तथा महाविद्यालय का 63वां स्थापना दिवस मनाने जा रहा है। इस अवसर पर महाविद्यालय पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' का भी प्रकाशन किया जा रहा है। यह प्रशंसनीय है। ए.एन. कॉलेज, पटना शिक्षा जगत में एक विशिष्ट स्थान रखता है। हमें विश्वास है इस पुनीत अवसर पर प्रकाशित होने वाली यह पत्रिका शिक्षको, बुद्धिजीवियों के सुचिंतित आलेखों से सुसज्जित होगा एवं छात्र छात्राओं के रचनाशीलता का भी इससे विकास होगा। इस आयोजन से शैक्षणिक वातावरण समृद्ध होगा। अनुग्रह जयंती सह स्थापना दिवस के अवसर पर महाविद्यालय परिवार को मेरी अनंत शुभकामनाएँ।

(प्रो. गिरीश कुमार चौधरी)

प्रतिकुलपति

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना



EDITORIAL

Dear readers

It gives us great pleasure to bring you this issue of 'Anugrah Jyoti', the college magazine of A.N. College. This is a tribute and offering to the memory of the doyen of this college the great visionary leader Bihar Vibhuti, Sri Anugrah Babu.

The name and fame of an institute depends on the calibre and achievements of the students and teachers. The role of a teacher is to be a facilitator in nurturing the skills and talents of students. "Education must begin with the solution of the teacher - student contradiction, by reconciling the poles of the contradiction so that both our simultaneously teachers and students"

This magazine is a platform to exhibit the literary skills and innovative ideas of teachers and students. 'Anugrah Jyoti' presents the achievements of students and contributions of teachers.

We would like to thank all my editorial team members for helping us pull this through. We profusely thank our Principal, Prof. S.P. Shahi for giving support and encouragement and a free hand in this endeavour. We express our considerable appreciation to all the authors of the articles in this magazine. These contributions have required a generous amount of time and effort. It is this willingness to share knowledge, concerns and special insights with fellow beings that has made this magazine possible.

Chief Editor

Prof. Kalanath Mishra

Editor

Dr. Ratna Amrit

**"Education is the most powerful weapon
which you can use to change the world."**

- Nelson Mandela.





प्रधानाचार्य की कलम से

बि

हार विभूति अनुग्रह बाबू की 132वीं जयन्ती तथा महाविद्यालय का 62वाँ स्थापना दिवस के अवसर पर कॉलेज की वार्षिक पत्रिका 'अनुग्रह ज्योति' 2019 (ISSN : 2454-1133) प्रस्तुत करते हुए अपार हर्ष और संतोष का अनुभव हो रहा है। यह पत्रिका महाविद्यालय की बौद्धिक समृद्धि का एक झलक है। यही कारण है कि कॉलेज के विद्वान प्रोफेसर, शोध विज्ञ एवं छात्र छात्राओं के सृजनात्मकता से युक्त इस वार्षिक पत्रिका को ISSN न० प्राप्त है।

अनुग्रह बाबू के नाम की गरिमा से युक्त यह कॉलेज सतत उनके विशाल व्यक्तित्व से प्रेरणा ग्रहण करते हुए दिनानुदिन सफलता की उँचाइयों को छूता जा रहा है। यह महाविद्यालय बिहार विभूति का जीवन्त स्मारक है।

इस कॉलेज की स्थापना और प्रगति में बिहार के पूर्व मुख्यमंत्री एवं यशस्वी राजनेता आदरणीय सत्येन्द्र नारायण सिन्हा जी (जिन्हें स्नेह और सम्मान से लोग 'छोटे साहब' के नाम से संबोधित करते रहे हैं) का अद्वितीय योगदान है। वे हमारे उन्नति के रीढ़ रहे हैं।

यह लिखते हुए मुझे प्रसन्नता हो रही है कि मैं अपने छात्र जीवन से ही इस महाविद्यालय से जुड़ा रहा हूँ। बाद में यहाँ अध्यापन कार्य किया और आज इस कॉलेज के प्राचार्य के रूप में कार्य करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। यह भावना और लगाव मुझे कॉलेज के प्रति अपनी महती जिम्मेदारियों का सतत् अहसास कराता रहता है। मैंने अपने कार्यकाल में सम्पूर्ण समर्पण भाव से कॉलेज के शैक्षिक तथा सांस्कृतिक गतिविधियों को एक नयी उँचाई पर ले जाने की चेष्टा की है।

अध्ययन अध्यापन के साथ-साथ हमने कॉलेज के आधारभूत संरचनाओं को भी सुदृढ़ करने का निरंतर प्रयास किया है और इसमें सफलता भी मिली है। माननीय





मुख्यमंत्री जी ने कृपापूर्वक कॉलेज में बहुपयोगी बहुमंजिला (मल्टी युटिलीटी सेन्टर) भवन बनाने के लिए लगभग सतरह करोड़ रुपए की राशि स्वीकृत की है तथा शीघ्र ही वह कार्य आरंभ होने वाला है। कॉलेज में निर्माणाधीन एक भव्य ऑडिटोरियम भी शीघ्र ही बनकर तैयार हो जाएगा। उसके लिए भी हम राशि उपलब्ध कराने में सफल हुए हैं। छात्र छात्राओं के लिए प्रसाधन भी निर्माणाधीन है।

यह महाविद्यालय परिवार के सामूहिक प्रयास का ही फल है कि हमें तीसरी बार राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद (नैक) द्वारा 'ए' श्रेणी प्राप्त हुआ है।

हम पूरी कर्तव्यनिष्ठा के साथ महाविद्यालय की प्रगति के लिए प्रतिबद्ध हैं। हमें इस बात की भी खुशी है कि महाविद्यालय परिवार के सभी सदस्य चाहे शिक्षक हों, अथवा शिक्षकेत्तर कर्मचारी हों सभी एक जुट होकर छात्र हित में कॉलेज के विकास के लिए तत्पर हैं।

हमारी सबसे बड़ी शक्ति, युवा शक्ति है। उनमें उत्साह जगाने तथा उनकी प्रतिभा में निखार लाने के लिए हमने 'युवा महोत्सव' का आयोजन करना आरंभ किया है। यह आयोजन भव्यता के साथ हो रहा है। खेलकूद प्रतियोगिता में हमारा कॉलेज श्रेष्ठ रहा है। बौद्धिक विमर्श के लिए हम छोटे साहब के नाम पर सत्येन्द्र नारायण सिन्हा व्याख्यान माला का भी आयोजन करते रहे हैं। इस व्याख्यान माला में अभी तक देश विदेश के ख्यातिलब्ध दस विद्वानों का व्याख्यान सफलता पूर्वक किया जा चुका है।

हमारा उद्देश्य छात्रों के सर्वांगीण विकास करना है ताकि जीवन के संघर्षों में वे सफलता की ऊँचाइयों को छू सकें। इसके साथ ही मैं बिहार विभूति की आत्मा के प्रति अपनी असीम कृतज्ञता ज्ञापि करता हूँ जिनका संदेश हमेशा हमारे साथ रहा है कि 'stand by your merit' (अपनी क्षमता के बल पर खड़े रहो।) उन्हीं के आशीर्वाद एवं प्रेरणा के बल पर हम प्रगति के पथ पर दिनानुदिन अग्रसर हो रहे हैं।

रवि शर्मा



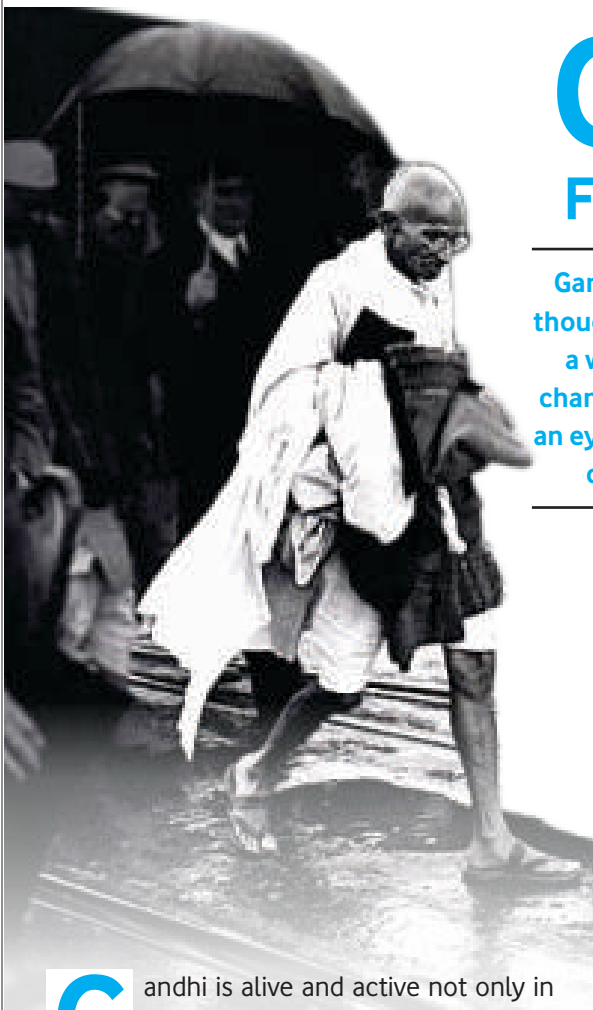
अनुक्रमणिका

• GANDHI : Father of Nation	: Prof. S.P. Shahi	01
• Presenteeism : The obvious and hidden battel of Higher Education	: Prof. Vijaya Lakshmi : Dr. Shruti Narain	05
• स्वच्छता अभियान : लोहिया की अवधारणा	: प्रो. अजय कुमार	08
• Contribution of Indian Diaspora in Developing	: Prof. Damodar Singh	16
• William Wordsworth	: Prof. (Dr.) Baban Kr. Singh	22
• Ecological Leanings in Brihadaranyaka Upanishad	: Prof. Abha Singh	24
• Evoltion vis-a-vis Entropy	: Dr. Arun Kumar	29
• Status of time in Indian thought	: Prof. Shailesh Kr. Singh	33
• प्रकृति से प्रेरित वैज्ञानिक आविष्कार	: MkWñ jes'k ikBd	40
• कार्यालयीय भाषा एवं प्रशासनिक शब्दावली के प्रयोग	: izks- dykukFk feJ	44
• जीवनचर्या का मार्मिक पाठ है जिन्दगीनामा : कृष्णा सोबती	: प्रो. कृष्णा सिंह	49
• Cooking Chemistry and Carcinogens	: Dr. Tripti Gangwar	52
• स्त्री विमर्श / नारीवाद और जेंडर	: izks- fot; dqekj	54
• A Thematic study of somerset Maugham's Novel	: Prof. Namita Singh	65
• The biological clocks of the foetus and the newborn	: Prof. Arun Kr. Singh	68
• Indian Agriculture after globalization & economic reform	: Prof. (Dr.) Priti Kashyap	72
• The best learning takes place in a child's mother tongue	: Dr. Hansa Gauram	76
• Perennial Quest for Water	: Dr. Ratna Amrit	79
• The importance of discipline in life	: Dr. Ramawatar Singh	81
• Fullerenes : A Journey	: Dr. Anil Kr. Singh	84
• Exclusion & Inclusion in Indian Society	: Dr. Tanya Mukherjee	87
• Bin Pani Sab Sun	: Dr. Subhash Pd. Singh	89
• Declining Ground Water : The Indian Perspective	: Sushil Kr. Singh	92
• Vertical Plantation & Vertical Farming	: Dr. Shabana Karim	98



• National Digital Library of India	: Dr. Abhishek Dutta	102
• Corrosion-Necessary Evil	: Dr. Sheerin Masroor	104
• Organophosphorus Compounds	: Dr. Nisha Kumari	107
• रामचरितमानस में शक्ति का समावेश	: MkWñ lat; dqekj flag	110
• वो बाती बनकर जली	: MkWñ Hkkouk 'ks[kj	116
• युवापीढ़ी और जीवन का लक्ष्य ^fkek*	: MkWñ foEeh jkuh 120	
• वर्तमान समाज एवं नैतिक मूल्य	: MkWñ jktsUnz dqekj	123
• भारतीय आर्य परम्परा	: lqJh pqUuu dqekjh	126
• केंचुआ को बधाई! flag	: MkWñ fouksn 'kadj 131	
• प्राचीन भारत में भौगोलिक ज्ञान	: foØkar dqekj	144
• स्त्री पुरुष सम्बन्ध के सामाजिक पक्ष	: MkWñ usgk dqekjh	147
• नक्सलवाद और राजनीति	: jk/s 'ke	156
• सुमित्रा देवी : बिहार की पहली महिला कैबिनेट मंत्री	: vk'kqrks"k dqekj	158
• Changing contours of human trafficking	: Anjani Kumar	160
• सामाजिक न्याय के आलोक में गाँधी और अम्बेडकर का तुलनात्मक अध्ययन	: रौशन कुमार	169
• ध्वनि प्रदूषण की समस्या	: ललिता रानी	173
• उड़ान	: laè;k Jh	176
• प्रतिदान	: fnO;k Jh	177
• वर्तमान वैज्ञानिक युग में हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता	: nhid dq- jk;	178





GANDHI

Father of the Nation

Gandhi is not a common person, Gandhi is a thought, Gandhi is a philosophy even Gandhi is a way of living life. Each of us must be the change we wish to see in this world, an eye for an eye makes the whole world blind; the future depends on what we do in the present.



Prof. S. P. Shahi

Principal
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

Gandhi is alive and active not only in India rather he is alive in the contemporary world. In point of fact, it is believed that we are living in the modern world, 21st century where people achieved tremendous success in science, technology, IT, health, education all most all the sector; on the other hand, nation of the world gradually adopting and practicing democracy, whole world is emphasising human rights, but any problem arises, whether it is social, political, economical or educational anything, we try to find out the

solution in Gandhi. Why?

Gandhi is not a common person, Gandhi is a thought, Gandhi is a philosophy even Gandhi is a way of living life. Each of us must be the change we wish to see in this world, an eye for an eye makes the whole world blind; the future depends on what we do in the present. Earth provides enough to satisfy every man's need, but not every man's greed. This is the basic and fundamental philosophy of the great immortal soul.

Around the world this philosophy has



been playing a very vital role for mobilising people in a successful manner in many oppressed societies under the leadership of people like Martin Luther King in the United States, Nelson Mandela in South Africa, Aung Saan Sun Kyi in Myanmar, Dalai lama and so many which is an well-expressed demonstration to the continuing relevance of Mahatma Gandhi.

Recently, we saw his principle of Satyagrah in the case of Nirbhaya's case. It was very brutal and heinous crime in the history of India, although peaceful protest in the form of candle march has been held almost all over the country and justice was delivered. It happened only because of Gandhi, he is the only person who taught us to run on the path of Satyagrah and Ahinsa. He says "My uniform experience has convinced me that there is no other God than Truth... The only means for the realization of Truth is Ahimsa... The little fleeting glimpses,

therefore, that I have been able to have of Truth can hardly convey an idea of the indescribable lustre of Truth, a million times more intense than that of the sun we daily see with our eyes. In fact what I have caught is only the faintest glimmer of that mighty effulgence. But this much I can say with assurance, as a result of all my experiments, that a perfect vision of Truth can only follow a complete realization of Ahinsa." This truth and the peaceful protest became the influential force to get justice for Nirbhaya. His learning of Ahinsa "Non Violence" is not only for social survival, even in some extent India's foreign policy is also based on peaceful co-existence and it is reflected in not indulging in aggression first.

Furthermore, his one more best teaching is Self discipline. Self discipline is the best policing for any individual. Anyone can achieve success by practicing self discipline honestly. It is a mixture of one's intellectual





and spiritual sphere. Gandhi was a religious person. He believed that if anyone could not be honest for his own-self how he could be honest for others. So that He suggested the best way to be honest is prayer and worship God. In Harijan he wrote that when the mind is completely filled with His spirit one cannot harbour ill-will or hatred towards any one had. Reciprocally the enemy will shed his enmity and become a friend. It is not my claim that I have always succeeded in converting enemies into friends, but in numerous cases it has been my experience that when the mind is filled with His peace all hatred ceases. An unbroken succession of world teachers since

the beginning of time, have borne testimony to the same. I claim no merit for it. I know it is entirely due to God's grace. If anyone is free from ill will he can focus on his objective. Gandhi was a strategist, a visionary and a planner. With his full intellectual wisdom and faith he had been fighting without any arms with the then world's most powerful nation and made India an independent nation.

Now India is a developing nation, at that time it was under British rule. Gandhi was not only fighting for free India but his vision was to free India from poverty also. He said that I suggest that we are thieves in a way. If I take anything that I do not need for my own

immediate use and keep it, I steal it from somebody else. I venture to suggest that it is the fundamental law of Nature without exception, that she produces enough for our wants from day to day, and if everybody took enough for himself and nothing more, there

would be no pauperism, there would be no man dying of starvation in this world. But so long as we have got this inequality, so long we are stealing, I am no socialist, and I do not want to dispossess those who have got possessions; but I do say that those of us who want to see light out of darkness have to follow this rule in their own lives. I do not want to dispossess anybody, for I should then be departing

from the rule of Ahimsa. If somebody else possesses more than I do, let him. But so far as my own life has to be regulated, I do say that I dare not possess anything which I do not need. In India we have got millions of people living on one meal a day and that meal consisting of a Chapati with no fat spread on it and a pinch of salt. You and I have no right to anything more until these millions are clothed and fed better. You and I, who ought to know better, must adjust our wants, and even undergo voluntary starvation, in order that they may be fed and clothed.

Additionally, on the other hand as far as the today's Indian workforce is concerned no

“ You and I have no right to anything more until these millions are clothed and fed better. You and I, who ought to know better, must adjust our wants, and even undergo voluntary starvation, in order that they may be fed and clothed. ”



one has time, each one is in hurry. Everyone wants success. There is limited resource we have. India should have followed Gandhian path to engage workforce. In some extent we failed to do so, consequently it has been creating chaos; economic development has been mostly confined to the urban conglomerates. In the process, the rural India that comprises 70% population has been given short shrift. Gandhi ji's philosophy of inclusive growth is fundamental to the building of a resurgent rural India. He believed in "production by the masses" rather than in mass production, a distinctive feature of the industrial revolution. It doesn't mean that he was against the industrialisation. It is surprising, even paradoxical, that these days Gandhian philosophy should find increasing expression through the most modern technology. Now, it is possible to establish small-scale and medium-scale factories in smaller towns and remote corners of the country, thanks to the phenomenal innovations in communication and information technologies. New technologies have brought in widespread and low-cost electronic connectivity that enables instantaneous contact between industrial units and the sellers and consumers of their

products. Location and logistics are no more a limitation or constraint for industrial development.

While the twenty-first century has been defined by globalisation, free markets, privatisation, liberalisation... it has also been marked by violence, extremism, inequality, poverty, and disparity. Amidst all this, if one poses the question of relevance of Gandhi ji to our age, one is struck by an astounding need for him for our times. Gandhi ji's ideas and vision hold an extremely relevant moral and social mirror to our society.

Jai Hind Jai Bharat...

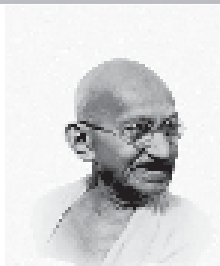
¹ An Autobiography, (1966), pp. 382-83

² Harijan, 28-4-'46, p. 109

³ Ashram Observances in Action, (1959), pp. 136-7

Reference:

1. An autobiography, 1966
2. Harijan by MK Gandhi
3. Young India By MK Gandhi
4. Experiment with my truth by MK Gandhi
5. Collected work of Mahatma Gandhi, Vol XII
6. Ashram Observances in Action, (1959)



The future depends
on what we do in
the present.



Presenteeism

The obvious and hidden battle of Higher Education

Presenteeism is the practice of coming to work when one is ill, injured, or otherwise unable to function at full capacity on the job. The resulting reduction in productivity is a growing financial and safety concern for employers, particularly since research suggests presenteeism is much more prevalent and damaging than absenteeism.



• **Dr. Shruti Narain**

Assistant Professor,
Dept. of Psychology, Patna Women's College (Autonomous),
Patna University.

• **Prof. Vijaya Lakshmi**

Head, University Dept. of Psychology,
Dean, Faculty of Social Sciences,
Patliputra University.

The paper aims to throw light upon the concept of presenteeism which refers to the practice of coming to work despite illness, injury, psychological problems like anxiety, depression, alienation, stress, etc., often resulting in reduced productivity. On the contrary, absenteeism in the workplace i.e. intentional or habitual absence from work is widely researched and could be easily identified. The rise of presenteeism at workplace especially in Higher Education is a growing concern as it cannot be easily identified like absenteeism. If not attended, presenteeism can act like a slow poison and paralyze the whole system of education. Thus, measures need to be adopted to combat the growing challenge of presenteeism at workplace. There is a call for the education system to bring about a change in the mindset.

Higher education in India is undergoing a lot of changes in recent times. Many steps

have been taken by the University Grants Commission like, introduction of choice based credit system (CBCS), uniform syllabus all over the universities of the country, focus on skill based and value based education, environmental studies, biometric system for marking the attendance of the teachers, environment building for research and innovation, and the like, to strengthen the Higher Education in India as it itself has many challenges and issues. For e.g. shortage of resources, teacher vacancies, accountability and performance of teachers, lack of employable skills, accreditation of institutions etc. were the key observations and recommendations of the Standing Committee on Human Resource Development in its report on 'Issues and challenges before higher educational sector in India' after examining some higher education institutions of India (Rao, 2017). One obvious, as we all could have observed or done it sometime or the other, but still



hidden, as this issue was never paid heed to, is the prevalence of the challenge of presenteeism.

Presenteeism is the practice of coming to work when one is ill, injured, or otherwise unable to function at full capacity on the job. The resulting reduction in productivity is a growing financial and safety concern for employers, particularly since research suggests presenteeism is much more prevalent and damaging than absenteeism. Factors that drive presenteeism include a large workload (often involving multiple tasks and demands from several departments), fear of missing deadlines, fear of disciplinary action or job loss, missed pay, the desire to conserve leave for future use (for vacations, emergencies, child care, family problems, etc.), loyalty to coworkers (i.e., "I've got to get in because my colleagues are depending on me and nobody else can cover for me"), company loyalty, and job satisfaction. Less commonly, the practice of staying at work beyond the expected hours to the point at which one is no longer effective because of fatigue, boredom, or lack of useful tasks to perform (VandenBos & American Psychological Association, 2015).

Presenteeism or working while sick can cause productivity loss, poor health, exhaustion and workplace epidemics. While the contrasting subject of absenteeism has historically received extensive attention in the management sciences, presenteeism has only recently been studied (Johns, 2010). He further reviews that certain occupations such as welfare and teaching are more prone to presenteeism. Doctors may attend work while sick due to feelings of being irreplaceable. Jobs with large workloads are

associated with presenteeism. People, whose self-esteem is based on performance, as well as workaholics, typically have high levels of presenteeism. The term presenteeism is introduced by a professor of organizational and health at Manchester University in UK, named as Cary Cooper (Lowe, 2002). During 1990 researchers focused on linking health with human capital. During this time the term presenteeism began to appear in health and productivity literatures. The term presenteeism is defined as productivity loss due to illness or health conditions (Brand-Rauf et al 2001, Stewart et al 2003). This term is wide-spread in US by R.W. Whitmer, President of health enhancement research organizations (Shamansky 2002).

Harilal and Santhosh (2019) explored the concept of Presenteeism and models of presenteeism and found that the environment change, pollution and change in food habit have dramatically changed the health conditions of people. Most of the people in the world are disturbed by one way or another way due to health problems. So there is a high chance for presenteeism among employees. Extensive study on this area was not conducted in India. The cost loss due to presenteeism is very high when compared with absenteeism, based on different research. Researchers need to get a direction to fill the research gap.

With academics reluctant to take sick leave, universities must become more aware of the dangers of 'presenteeism', says Kinman (2017). She also adds large workload, time pressure or sense of obligation to their employers and service users there are many reasons why people work through sickness. However, the notion that the "ideal worker"



shows their commitment by working through illness is being challenged as the true costs of “presenteeism” become known. Indeed, there is growing evidence that presenteeism is more common than absenteeism and may be considerably more damaging to the productivity of employees and their long-term well-being (Kinman, 2017).

The proliferation of the institutions like regional and the state universities has also raised concerns about an imbalance between excellence and inclusion. Noting that several teachers are bunking classes and are not being able to complete their syllabus on time, the department of higher education has insisted that vice chancellors and principals of all government degree colleges install a system to track attendance of faculties. In a bid to keep a tab on teachers, biometric attendance was introduced to track the regular presence of teachers who can mark their attendance either through finger prints or showing cards aiming to provide more teaching hours to the students which in turn will enhance their performance. This is what was expected out of this system but, has it improved the accountability and performance of teachers, is a big question. There is an old saying that 'you can lead a horse to water, but you can't make him drink.' Presenteeism has been observed more at such institutions as at present, there is no mechanism for ensuring the accountability and performance of professors in universities and colleges.

Having said that, educational institutions must safeguard against blindly making laws rather, a system of performance audit of professors based on the feedback given by their students and colleagues should be set

up. Other inputs like research papers, publications by teachers should be added in the performance audit in due course of time says the Standing Committee on Human Resource Development, adds Rao (2017).

References

- Brandt-Rauf, P., Burton, W. N., & McCunney, R. J. (2001). Health, productivity, and occupational medicine. *Journal of Occupational & Environmental Medicine*, 43(1), 1.
- Cooper, C. (1999). The changing psychological contract at work. *European Business Journal*, 11(3), 115-118
- Harilal A. & Santhosh V. A. (2019). Concept of Presenteeism and Models in Presenteeism. *International Journal of Management Studies*. Vol VI, Issue 1 (5), 17-25. DOI URL : [http://dx.doi.org/10.18843/ijms/v6i1\(5\)/02](http://dx.doi.org/10.18843/ijms/v6i1(5)/02)
- Johns, G. (2010). Presenteeism in the Workplace: A review and research agenda. *Journal of Organizational Behavior*, 31, 519-542. doi:10.1002/job.630
- Kinman, G. (2017). Presenteeism is hurting higher education. *Times Higher Education* March 23, <https://www.timeshighereducation.com/blog/career-advice-presenteeism-is-hurting-higher-education>
- Lowe, G. (2002). Here in body, absent in productivity: Presenteeism hurts output, quality of work-life and employee health. Retrieved February 3, 2005, from <http://www.grahamlowe.ca/documents/26/2002-1202-Lowe.pdf>
- Rao, N. (2017). Standing Committee Report Summary: Issues and challenges before higher educational sector in India. New Delhi: PRS Legislative Research, Institute for Policy Research Studies. www.prsindia.org
- Shamansky, S. L. (2002). Presenteeism... or when being there is not being there. *Public Health Nursing*, 19(2), 79-80.
- Stewart, W. F., Ricci, J. A., Chee, E., & Morganstein, D. (2003). Lost productive work time costs from health conditions in the United States: Results from the American Productivity Audit. *Journal of Occupational & Environmental Medicine*, 45(12), 1234-1246
- VandenBos, G. R. & American Psychological Association (2015). *APA Dictionary of Psychology*. Washington, D.C.:



स्वच्छता अभियान : लोहिया की अवधारणा

बिहार महिला समाख्या आन्दोलन ने शहरों की बात तो छोड़ दें,
ग्रामीण महिलाओं को भी जगाने का काम किया है। उन्हें इस
लायक बनाया कि वे अपनी आवश्यकता को समझें और उसे पूरा
करने के लिये पुरुषों का सहारा छोड़ स्वयं आगे आएँ।



प्रो. अजय कुमार

विभागाध्यक्ष,

विश्वविद्यालय समाजशास्त्र विभाग,
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

बि

हार में 16 दिसम्बर 2015 को मुख्यमंत्री
श्री नीतीश कुमार ने 'लोहिया स्वच्छ
बिहार अभियान' की शुरुआत की है।

उन्होंने कहा कि देश में स्वच्छता
अभियान चलाने का श्रेय पूरे तौर पर राम मनोहर
लोहिया को ही जाता है। वे पहले चिंतक और
राजनेता थे, जिन्होंने स्वच्छता पर जोर दिया था।
स्वच्छता अभियान कोई आज से नहीं चल रहा है
बल्कि लोहिया जी ने पचास के दशक में ही इसकी
शुरुआत की थी। डॉ. लोहिया ने एक बहस में
हिस्सा लेते हुए कहा था कि जिस देश की
प्रधानमंत्री महिला हो (इन्दिरा गाँधी), उसकी
करोड़ों महिलाओं को खुले में शौच करना पड़े, यह
कितनी शर्म की बात है।' लोहिया स्वच्छ बिहार
अभियान के तहत बिहार राज्य के ग्रामीण क्षेत्रों को
खुले में शौच मुक्त बनाने का लक्ष्य है जिसे केन्द्र
प्रायोजित स्वच्छ भारत मिशन (ग्रामीण) तथा राज्य
सम्पोषित लोहिया स्वच्छता योजना के प्रावधानों से
पूरा किया जाना है। इस अभियान के तहत 1.66
करोड़ परिवारों को शौचालय उपलब्ध करवाना
तथा बिहार को 02 अक्टूबर, 2019 तक खुले में
शौच मुक्त बनाने का लक्ष्य है।

सर्वप्रथम राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने 1915 में

दक्षिण अफ्रिका से भारत लौटने के बाद भारत को
जानने के लिए यात्रा के क्रम में देश में जगह-
जगह अस्वच्छता का आलम देख बहुत आहत हुए
थे। उसी दौरान आजाद भारत के साथ एक सपना
स्वच्छ भारत का देखा। महात्मा गाँधी के स्वच्छता
की अवधारणा विशद थी, जिनमें व्यक्तिगत
शारीरिक स्वच्छता, सार्वजनिक स्वच्छता,
अश्यपृश्यों, सफाईकर्मियों एवं मद्यनिषेध आदि
जैसे मुद्दों का समावेश रहा। इन्होंने मन की
स्वच्छता को प्राथमिकता दी। निरोग शरीर में
निर्विकार मन का वास होता है। यह एक स्वयं
सिद्ध सत्य है। मन और शरीर के बीच अटूट
सम्बन्ध है। अगर हमारे मन स्वच्छ हों, तो वह हर
तरह से हिंसा से मुक्त होते हैं। शरीर के स्वस्थ
रहने के लिए हर स्तर पर स्वच्छता की
आवश्यकता है। भारत की प्रधानमंत्री इन्दिरा गाँधी
का विचार था कि भारत में स्वच्छता केवल
साफ-सफाई तक न होकर सफाईकर्मियों की
दुर्दशा व अपमान का अंत सही रूप में स्वच्छता
है।' पर्यावरण एवं स्वच्छता की समस्याओं से
संबंधित चिंतन राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर
20वीं सदी के आरंभ से ही शुरू हो गया था। 1972



में पृथ्वी सम्मेलन, 1987 में क्योटो सम्मेलन तथा 2002 में जोहान्सबर्ग में पर्यावरण सम्मेलन आरंभ किये गए। इसी क्रम में संयुक्त राष्ट्र के तत्वाधान से अंतर्राष्ट्रीय जलवायु संधि सम्मेलन भारत में सम्पन्न हुआ। डॉ. बिन्देश्वर पाठक का स्वच्छता आंदोलन 1970 से जुड़े सुलभ आंदोलन बिहार के छोटे गांव बेतिया से आरंभ होकर पूरे भारत में फैला। इनका आंदोलन स्वच्छता से जुड़े बहुआयामी आंदोलन जिसमें वैयक्तिक व सामूहिक स्वच्छता, सफाईकर्मियों की मुक्ति, सफाईकर्मियों का व्यवसायिक पुनर्वसन, सफाईकर्मियों के बच्चे हेतु शिक्षा व प्रशिक्षण तथा पर्यावरणीय स्वच्छता था। वर्तमान में स्वच्छ भारत अभियान प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अगुवाई में महात्मा गाँधी के जन्मदिन 2 अक्टूबर 2014 को स्वच्छ भारत अभियान के रूप में शुरुआत की गई। इस अभियान की अवधि 2 अक्टूबर 2014 से 2 अक्टूबर 2019 तक तय की गई है।

लोहिया स्वच्छ अभियान तथा महिलाएँ — प्रस्तुत शोधपत्र उत्तरी बिहार को समग्र मानकर महिलाओं से साक्षात्कार अनुसूची द्वारा प्राथमिक श्रोत के आंकड़े एकत्रित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त द्वितीयक श्रोत से भी बिहार के अन्य जिलों से आंकड़े प्राप्त किए गए हैं। देश के अन्य राज्यों की तरह बिहार में भी सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान चलाया

जा रहा है। इस अभियान को सफल बनाने में सरकारी विभागों के अलावा गैर-सरकारी संस्थाओं की भी भागीदारी है। वैसे बिहार कई

क्षेत्रों में अन्य राज्यों से पीछे है। लेकिन सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान के क्षेत्र में बिहार की महिला समूह आगे बढ़कर काम कर रही हैं। इसमें बिहार शिक्षा परियोजना द्वारा गठित महिला समाख्या समूह का योगदान सराहनीय है। महिला समाख्या समूह राज्य के बाहर की महिलाओं को भी इस अभियान में शामिल होने के लिए प्रेरित कर रही हैं। महिला समाख्या समूह की कई दक्ष महिलाएं मध्य प्रदेश और छत्तीसगढ़ में जाकर वहाँ की महिलाओं को शौचालय बनाने का प्रशिक्षण दे रही हैं और सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान में शामिल होने के लिये तैयार कर रही हैं।

बिहार महिला समाख्या आन्दोलन ने शहरों की बात तो छोड़ दें, ग्रामीण महिलाओं को भी जगाने का काम किया है। उन्हें इस लायक बनाया कि वे अपनी आवश्यकता को समझें और उसे पूरा करने के लिये पुरुषों का सहारा छोड़ स्वयं आगे आएँ। वैसे, महिला सशक्तिकरण के लिये सरकारी

महिला समाख्या के अन्तर्गत महिलाओं के स्वसहायता समूह बनाए गए। उन समूहों को राष्ट्रीयकृत बैंकों से जोड़ा गया। कई समूहों को अपना रोजगार करने के लिये बैंकों से लघु ऋण भी दिए गए।

और गैर-सरकारी स्तर पर कई कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं। लेकिन बिहार महिला समाख्या समूह ने नारी सशक्तिकरण के लिये जो काम किया। उसे देखने बाहर के लोग आ रहे हैं। महिला समाख्या के अन्तर्गत महिलाओं के स्वसहायता समूह बनाए गए। उन समूहों को राष्ट्रीयकृत बैंकों से जोड़ा गया। कई समूहों को अपना रोजगार करने के लिये

बैंकों से लघु ऋण भी दिए गए। दूसरा सबसे बड़ा बीड़ा जो महिला समाख्या ने अपने समूह के माध्यम से उठाया। वह है सम्पूर्ण स्वच्छता



अभियान में भागीदारी। इसके लिये महिला समाख्या संगठन ने ग्रामीण क्षेत्रों में शौचालय बनाने का प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षण के बाद महिलाएं राजमिस्त्री बन गईं। फिर क्या था, महिला राजमिस्त्री का विश्वास जगा और वे घर-घर जाकर ग्रामीण महिलाओं को शौचालय की जरूरत बताने लगीं। इसी क्रम में बहुत से परिवार के लोग शौचालय बनवाने को तैयार भी हो जाते। महिला समूह की राजमिस्त्री उनके घरों में शौचालय तैयार कर देती। महिला समाख्या समूह की इन उपलब्धियों ने सरकार को भी सहयोग करने के लिए प्रेरित किया। इससे सामाजिक परम्परा के बन्धन टूटे। अनेक जरूरतमन्द महिलाओं को रोजगार मिला।

महिलाओं के रोजगार के नये क्षेत्र खुले। साथ ही स्वच्छता के प्रति ग्रामीण परिवारों की आस्था बढ़ी। उत्तरी बिहार के कई जिले बाढ़ ग्रस्त हैं। बाढ़ के दिनों में शौच के लिये बाहर जाना मुश्किल हो जाता है। महिलाओं को तो सामान्य दिनों में भी अन्धेरा होने का इन्तजार रहता है। महिला समाख्या समूह की सदस्यता जब ग्रामीण महिलाओं को उस स्थिति की याद दिलाती है तो ग्रामीण महिलाएं परिवार के लोगों को घर में शौचालय बनवाने पर राजी कर लेती हैं। इस तरह इन महिला राजमिस्त्रियों के कारण घरों में शौचालय बनवाने का एक माहौल तैयार हो गया है। सम्पूर्ण स्वच्छता अभियान की सफलता के लिये रास्ता साफ दिख रहा है।

सरकारी आंकड़ें बताते हैं कि राज्य में लोक स्वास्थ्य अभियन्त्रण विभाग ने भी अभियान के अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवन बसर करने

वाले परिवारों को अनुदान स्वरूप दी गई राशि पर उनके घरों में शौचालय बनवाये जा रहे हैं। मगर महिला समाख्या समूह की उपलब्धियाँ इससे अधिक दिखाई पड़ रही हैं। उपलब्ध जानकारी के अनुसार, अकेले मुजफ्फरपुर जिले में 126 महिला राजमिस्त्रियों ने 3457 से अधिक शौचालयों का निर्माण किया। वहीं रोहतास में 20 महिला राजमिस्त्रियों ने 622, गया में 49 ने 6770, सीतामढ़ी में 31 ने 622, पश्चिम चम्पारण में 28 ने 194, कैमूर में 6 ने 77, दरभंगा में 16 ने 623, शिवहर में 12 ने 112, भोजपुर में 44 ने 1093, वैशाली में 20 ने 154 अर्थात् राज्य में कुल 352 महिला राजमिस्त्रियों ने 13724 शौचालयों का निर्माण कर एक उल्लेखनीय कार्य किया। मुजफ्फरपुर जिला महिला समाख्या की जिला कार्यक्रम समन्वयक पूनम सिंह बताती हैं कि इस जिले के चार प्रखण्डों में सघन रूप से शौचालय निर्माण का काम चल रहा है। इसमें जिले का मुशहरी महिलाएं इस काम में लगी हैं।³

शौचालय की सामग्री निर्माण में स्वसहायता समूह की सावित्री, तारा और विभा राजबाड़ा स्वसहायता समूह द्वारा बनाई गई शौचालय बनाने की सामग्री पसन्द करने लगे हैं। इससे समूह की महिलाओं को महीने में 1500 से 4500 रुपये की आमदनी हो जाती है। इसे देखते हुए गाँव की पढ़ी-लिखी लड़कियां भी इस काम में आगे आने लगी हैं। मुशहरी के मुखिया संजय कुमार मानते हैं कि प्रखण्ड के ग्रामीण क्षेत्रों में एक बदलाव आ गया है। एक नयी क्रांति आ रही है। लगता है मुशहरी एक बार फिर नक्सली आन्दोलन के लिये नहीं, बल्कि सम्पूर्ण स्वच्छता के लिये चर्चा में आ



जाएगा।

महिला सशक्तिकरण की चर्चा करते हुए पूनम कहती हैं कि मुशहरी प्रखण्ड के अलावा जिले के अन्य प्रखण्डों में भी महिला स्वसहायता समूह का गठन महिला समाख्या की स्वयंसेविकाओं के नेतृत्व में हो रहा है। केवल चार प्रखण्डों में एक हजार से अधिक महिला स्वसहायता समूह का गठन हो चुका है। 20 हजार ग्रामीण महिलाएं इनकी सदस्य बन चुकी हैं। लगभग 500 स्वसहायता समूहों को विभिन्न बैंक शाखाओं से जोड़ दिया गया है। इस क्षेत्र में सबसे बड़ी उपलब्धि यह है कि इन स्वसहायता समूहों के जरिये न केवल आमदनी बढ़ाने का प्रयास हो रहा है, बल्कि महिलाओं में बचत करने की आदत भी डाली जा रही है। इसी का परिणाम है कि इस जिला की महिला स्वसहायता समूह की ओर से अब तक 2 करोड़ रुपये बैंकों के बचत खाते में जमा कराए गए हैं। महिलाओं में बचत का यह अनोखा उदाहरण है। इससे महिलाओं में आत्मविश्वास जगा है। स्वसहायता समूह की हर महिला अब कुछ न कुछ करने के लिये संकल्पबद्ध है।

यह पूछने पर कि शौचालय बनाने की तकनीकी जानकारी महिलाओं को कैसे मिली, जिला कार्यक्रम समन्वयक ने बताया कि पहले कुछ महिलाओं को प्रशिक्षण के लिये ईश्वर भाई के सफाई विद्यालय अहमदाबाद भेजा गया। वहाँ से

प्रशिक्षण लेकर लौटी महिलाओं ने दूसरी महिलाओं को राजमिस्त्री का प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षित महिला राजमिस्त्री तारा बताती हैं कि एक बार बता देने के बाद महिलाएं शौचालय बनाने में जुट जाती हैं। इस काम से एक सामाजिक परिवर्तन आया है। अब कुछ परिवारों में पुरुष बच्चों की देखभाल करते हैं और महिला राजमिस्त्री दूसरे गाँवों में शौचालय बनाने जाती हैं। कुछ पुरुष अपनी राजमिस्त्री पत्नी को स्वयं कार्यस्थल पर पहुँचाने का काम करते हैं। इस प्रकार स्वच्छता अभियान के कारण सामाजिक परिवर्तन को तो बल मिल ही रहा है, पुरुषों की नजर में महिलाओं का मान भी बढ़ा है।

सचमुच बिहार में महिलाओं ने स्वच्छता के लिये एक मजबूत वातावरण तैयार किया है। अब गाँवों में लोग शौचालय की आवश्यकता को महसूस करने लगे हैं। तभी तो कई महिला गैर-सरकारी संगठनों ने शौचालय निर्माण के जरिये स्वच्छता को अपनी संस्था का प्रमुख कार्यक्रम मान लिया है।

सचमुच बिहार में महिलाओं ने स्वच्छता के लिये एक मजबूत वातावरण तैयार किया है। अब गाँवों में लोग शौचालय की आवश्यकता को महसूस करने लगे हैं। तभी तो कई महिला गैर-सरकारी संगठनों ने शौचालय निर्माण के जरिये स्वच्छता को अपनी संस्था का प्रमुख कार्यक्रम मान लिया है। इसी क्रम में मुजफ्फरपुर जिला के कुरहनी प्रखण्ड के हनुमान प्रसाद

ग्रामीण विकास सेवा दल ने अपने प्रयास से प्रखण्ड की सकरी सरैया पंचायत को 'निर्मल ग्राम' घोषित कराया। इसके लिये पंचायत सहित इस स्वयंसेवी संस्था को इसी वर्ष नयी दिल्ली में राष्ट्रपति ने सम्मानित किया। इस संस्था की कार्यक्रम प्रभारी उषा सिंह बताती हैं कि हमारी



संस्था ने कुरहनी प्रखण्ड को 'निर्मल प्रखण्ड' बनाने का कार्यक्रम बनाया है। इसके लिये पूरे प्रखण्ड के गाँवों में शौचालय निर्माण का काम महिला राजमिस्त्रियों द्वारा हो रहा है। हालांकि कुछ गाँवों में लोक स्वास्थ्य अभियन्त्रण विभाग द्वारा भी शौचालय बनवाए जा रहे हैं। लेकिन गाँव की महिलाएं चाहती हैं कि महिला राजमिस्त्री ही उनके घरों में शौचालय का निर्माण करें।

बिहार के गोपालगंज में ऐसी ही दो बुजुर्ग महिलाओं को जिला प्रशासन ने सम्मानित किया है,⁴ जो अपना जीवनयापन तो लोगों से मदद मांग कर करती है, लेकिन इन्हीं पैसों को बचाकर उन्होंने स्वच्छ भारत अभियान के तहत घर में शौचालय का निर्माण कर एक मिसाल पेश की है। इन महिलाओं ने यह साबित कर दिया है कि देश या समाज में किसी प्रकार के योगदान के लिए पैसे नहीं, जज्बे की जरूरत है। गोपालगंज के जिलाधिकारी अनिमेष पराशर ने आईएनएस को बताया कि गोपालगंज सदर प्रखण्ड के कोन्हवा ग्राम पंचायत को गुरुवार को खुले में शौच से मुक्त घोषित कर दिया गया है।

इस मौके पर जिला प्रशासन ने कोन्हवा पंचायत की 55 वर्षीय मेहरून खातून और 60 वर्षीय जगरानी देवी को पुरस्कृत कर सम्मानित किया। दरअसल, दोनों महिलाएं लोगों से मदद मांगकर या मजदूरी कर अपना गुजर-बसर कर रही हैं, लेकिन उनके द्वारा किया गया कार्य बेहद सराहनीय है। मेहरून खातून कहती हैं, नरेंद्र मोदी जब से प्रधानमंत्री बने हैं, तब से देश को स्वच्छ रखने के लिए अभियान चला रहे हैं। ऐसे में इस पंचायत के लोग भी हमारे साथ हैं। साफ-सुथरा

रहने में क्या हर्ज है।

जिलाधिकारी पराशर कहते हैं कि केंद्र सरकार की स्वच्छ भारत मिशन और बिहार सरकार के लोहिया स्वच्छता अभियान के तहत खुले में शौच से मुक्ति का अभियान जिले के प्रत्येक गांव में चलाया जा रहा है। इन दोनों महिलाओं को जब इस अभियान के बारे में पता चला तो ये इससे बहुत प्रभावित हुईं। इसका असर यह हुआ कि लोगों से मदद मांगकर जुटाए पैसों को बचाकर इन्होंने अपने घरों में शौचालय बनवा लिया। उन्होंने कहा कि आज ये दोनों महिलाएं समाज में मिसाल बन चुकी हैं। वे कहते हैं कि ये दोनों महिलाएं वृद्ध हैं, लेकिन समाज को एक नया संदेश दिया है। मेहरून खातून कहती हैं, भीख मांगकर परिवार चलाने के कारण हमें कभी सम्मान नहीं मिला, लोग नीची निगाह से देखा करते थे, लेकिन स्वच्छ भारत अभियान के लिए इस पहल ने हमारा दर्जा बढ़ा दिया है। लोग अब सम्मान की नजरों से देख रहे हैं।

एक अधिकारी कहते हैं कि कम पढ़ी-लिखी और वृद्ध होने के कारण जगरानी देवी न ठीक से हिंदी बोल पाती हैं और ना ही भोजपुरी बोल पाती हैं, लेकिन उनके किए गए कार्यों ने उनके संदेश को बहुत दूर तक समाज में पहुँचा दिया है। उन्होंने कहा कि आज ये दोनों महिलाएं समाज में मिसाल बन गई हैं। उल्लेखनीय है कि कोन्हवा पंचायत में कुल 1519 घर हैं, जिसमें से करीब 600 घर कुछ महीने पूर्व तक शौचालय विहीन थे।

ग्राम पंचायत के मुखिया मनोज कुमार भी खुले में शौच मुक्त होने पर प्रसन्नता जताते हुए कहते हैं कि आज इस कार्य में पंचायत की



महिलाओं ने काफी बढ़-चढ़कर हिस्सा लिया, मेहरून और जगरानी ने तो पूरे राज्य ही नहीं, देश को एक संदेश दिया है कि जज्बा हो तो कोई काम मुश्किल नहीं।

बिहार लोहिया स्वच्छ अभियान (एक रिपोर्ट)

— गंगा नदी के पास बसे गाँवों में शौचालय का निर्माण प्राथमिकता के आधार पर किया जा रहा है। हर घर में शौचालय होना चाहिए। वह 21वीं सदी में दुनिया की सबसे बड़ी चुनौती है। देशभर में खुले में शौच करने वाली आबादी का 60 प्रतिशत चार राज्यों में है। देश में चार राज्य ऐसे हैं जिनको तय करना है कि देश खुले में शौच मुक्त हो सकता है या नहीं। ये राज्य उत्तर प्रदेश, बिहार, ओड़िशा और झारखंड हैं। इन राज्यों में बड़ी आबादी के पास शौचालय नहीं है। स्वच्छ अभियान के तहत प्रगति अन्य राज्यों की तुलना में यहाँ धीमी है। भारत को स्वच्छ बनाने हेतु इन राज्यों में युद्धस्तर पर उपयोगिक शौचालयों की आवश्यकता है।

बिहार में लगभग 70 प्रतिशत घरों तक शौचालय की पहुँच नहीं है। इन राज्य में मंत्रालय के अनुमान से अधिक शौचालयों की जरूरत हो सकती है। इसकी वजह है बड़ी संख्या में शौचालयों का अनुपयोगी होना। इन्हें उपयोग करने लायक बनाना होगा, तभी शौचालयों तक लोगों की पहुँच होगी। बिहार में 8.2 लाख शौचालय बेकार पड़े हैं। इन शौचालयों को उपयोग लायक बनाने के लिए या तो दोबारा

बनाना होगा या इनकी मरम्मत करनी होगी। बिहार राज्य में तो यह कार्य धीमा है।

बिहार के बाढ़ प्रभावित खगड़िया जिले के रहीमपुर उत्तरारी गाँव के निवासियों ने शौच की सबसे मुश्किल चुनौती का सामना किया है। वे सभी जल्दी उठ जाते और शौच के लिए जगह की तलाश करते। 35 वर्षीय मोहित यादव कहते हैं कि महिलाओं की स्थिति बहुत कठिन है। मानसून के दौरान शौच के लिए उनकी पत्नी और बेटियाँ सूर्योदय से पहले खुले स्थान की तलाश के लिए गहरे बाढ़ के पानी से गुजरती हैं। रहीमपुर उत्तरारी गाँव गंगा के तट पर बसा है। ऐसा नहीं है कि गाँव में शौचालय नहीं है। यहाँ स्वच्छ भारत

बिहार में लगभग 70 प्रतिशत घरों तक शौचालय की पहुँच नहीं है। इन राज्य में मंत्रालय के अनुमान से अधिक शौचालयों की जरूरत हो सकती है। इसकी वजह है बड़ी संख्या में शौचालयों का अनुपयोगी होना।

अभियान (एसबीएम) के तहत बनाए गए शौचालयों की संख्या बहुत है। इस क्षेत्र में नियमित बाढ़ को ध्यान में रखते हुए रहीमपुर उत्तरारी में शौचालय बनाए गए थे। शौचालयों को जमीन से चार फीट ऊपर बनाया गया ताकि उन्हें बाढ़ के पानी से नुकसान न पहुँचे। लेकिन ठेकेदार ने सोक पिट (सोख्ता गड्ढों) को बाढ़ के स्तर पर ही बना दिया। यादव कहते हैं कि

मानसून के दौरान सोक पिट भर जाते हैं। हम उन्हें इस्तेमाल नहीं कर सकते। प्रधानमंत्री मोदी की ओर से शौचालय बनाने की निर्धारित समयसीमा निकट आ रही है। अधिकारियों पर अधिक से अधिक शौचालय बनाने का दबाव है, भले ही उपयोग न किए जाएं।

लोहिया स्वच्छ अभियान के तहत शौचालय



बनाने की होड़ सी चल रही है। बिहार सरकार को कुल 202 लाख घरों के लिए 70 प्रतिशत शौचालयों का निर्माण अक्टूबर 2019 तक करना है। विभिन्न स्वच्छता योजनाओं के अंतर्गत राज्य में बनाए गए 58 लाख शौचालयों में से 16 लाख शौचालयों का निर्माण स्वच्छ भारत अभियान शुरू करने के बाद किया गया। इसके 50 प्रतिशत का निर्माण वित्त वर्ष 2016-17 में किया गया था। क्या इसका मतलब यह है कि राज्य सम्पूर्ण स्वच्छता को मन से अपना रहा है? यह बहुत स्पष्ट रूप से उभरकर आया है कि राज्य शौचालय का निर्माण खुले में शौच मुक्ति के आधिकारिक "प्रमाणपत्र" को प्राप्त करने के लिए कर रहे हैं। लोग इन शौचालयों का इस्तेमाल करेंगे, यह पक्का नहीं है। इसका अर्थ है कि कुछ वर्षों के बाद, राज्यों में खुले में शौच करने की स्थिति फिर से वापस आ जाएगी। और यह क्यों कहा जा रहा है? बेगूसराय जिले में शिहमा ग्राम पंचायत के सरपंच, लल्लन कुमार सिंह से पूछिए।

उन्होंने बताया "पिछले छह महीनों में 80 प्रतिशत से

अधिक घरों में शौचालयों का निर्माण किया गया है।" शौचालयों के उपयोग पर सिंह बताते हैं कि वह लगातार प्रोत्साहित करते हैं ताकि ग्रामीण अपना व्यवहार बदलें और शौचालय का उपयोग करना शुरू कर दें। लेकिन डाउन टू अर्थ के संवाददाताओं ने पाया कि कुछ ही घर शौचालयों का उपयोग कर रहे हैं, जबकि अन्य पहले की

तरह खुले में शौच कर रहे हैं। स्पष्ट है कि यहाँ शौचालयों का इस्तेमाल करने के लिए जागरूकता और प्रोत्साहित करने का बहुत कम काम हुआ है। पिछले वित्तीय वर्ष में राज्य ने सूचना, शिक्षा और संचार (आईईसी) संबंधित गतिविधियों के लिए अपने आबंटित बजट का केवल 0.18 प्रतिशत खर्च किया था।

शौचालयों के निर्माण के लिए बजट का 99 प्रतिशत हिस्सा खर्च किया गया था। हालांकि कुछ गांव ऐसे भी हैं जिन्हें शौचालय स्वच्छ भारत अभियान के तहत धनराशि आवंटित नहीं की गई। शिहमा जैसे ग्राम पंचायत धन प्राप्त करने के मामले में काफी भाग्यशाली हैं क्योंकि वे गंगा के पास बसे हैं। नमामि गंगे के अंतर्गत ऐसे गांवों को शौचालयों का निर्माण करने की प्राथमिकता मिलती है। गंगा से दूर बसे गांवों को प्राथमिकता से फंड नहीं मिलता। इन गांवों के लिए राज्य ने

45 वर्षीय सदा देवी कहती हैं, "मैंने घर में शौचालय बनाने के लिए 18000 रुपये खर्च किए, मुझे अब तक सरकार से कोई मदद नहीं मिली है। अधिकारियों का कहना है कि जब तक वॉर्ड के सभी घरों में शौचालय नहीं बन जाता, तक तक आधिकारिक रूप से धनराशि जारी नहीं हो सकती।"

2014 में लोहिया स्वच्छ भारत अभियान (एलएसबीएम) का शुभारंभ किया था। लेकिन इस योजना के

तहत निधि तभी जारी की जाती है जब पूरा भारत खुले में शौच मुक्त हो जाता है। बेगूसराय जिले में लाभार्थियों को केवल 20 प्रतिशत प्रोत्साहन राशि मिली। इस वजह से शौचालयों के निर्माण के प्रति दिलचस्पी कम हो रही है।

बेगूसराय की रामदीरी-2 ग्राम पंचायत से 45 वर्षीय सदा देवी कहती हैं, "मैंने घर में शौचालय



बनाने के लिए 18000 रुपये खर्च किए, मुझे अब तक सरकार से कोई मदद नहीं मिली है। अधिकारियों का कहना है कि जब तक वॉर्ड के सभी घरों में शौचालय नहीं बन जाता, तक तक आधिकारिक रूप से धनराशि जारी नहीं हो सकती।" इसलिए वित्तीय बाधा एक कारण है कि लोग शौचालयों के निर्माण नहीं कर रहे हैं या खराब शौचालयों के साथ समझौता करने को मजबूर हैं।

प्राथमिक एवं द्वैतीयक श्रोतों से एकत्रित आंकड़ों के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि मुख्य मंत्री द्वारा संचालित लोहिया स्वच्छता अभियान शुरूआती चरणों में लोगों को उत्साहित किया था पर धीरे-धीरे इस अभियान में शिथिलता दिखाई दे रही है। प्राप्त आंकड़ों से स्पष्ट होता है कि अधिकांश उत्तरदात्रियों के घर में शौचालय है, इसका निर्माण सरकार द्वारा प्राप्त प्रोत्साहन राशि के द्वारा किया गया है। सार्वजनिक स्थलों पर सरकार द्वारा शौचालय का निर्माण नहीं किया गया है, सार्वजनिक स्थलों पर कूड़ापात्र नहीं देखे गये। गंदे पानी के निकास के लिए नालियों की व्यवस्था नहीं है। 72 प्रतिशत उत्तरदात्रियों के घर में सरकारी पानी का नल नहीं पहुँचा है। सार्वजनिक तालाब की साफ-सफाई पर सरकार का ध्यान

नहीं है लेकिन महिलाओं में स्वच्छता के प्रति जागरूकता बढ़ी है। सर्वेक्षण के दौरान यह भी ज्ञात हुआ कि कुछ महिलाएँ शौच के लिए कभी कभी बाहर भी जाती हैं। निष्कर्षतः यह कहना चाहूँगा कि अशिक्षा एवं जागरूकता की कमी के कारण सरकार द्वारा प्रायोजित लोहिया स्वच्छ बिहार अभियान में गतिशीलता नहीं देखी जा रही है। समाजशात्रियों, सिविल सोसाईटी के लोगों एवं स्वयंसेवी संस्थाओं द्वारा प्रखण्ड स्तर पर जागरूकता शिविर लगाकर इस अभियान को सफल बनाया जा सकता है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :

1. उमेश चतुर्वेदी : मल निपटान का जैविक तरीका जरूरी : योजना जनवरी, 2015 : 59
2. अनिल वाघेला : स्वच्छता का समाजशास्त्र : 2015 : पृष्ठ संख्या 269
3. A Special report on India: Creaking, groaning: Indrastructure is India's biggest handicap. The Economist. 11 December 2008.
4. As China Roars, Pollution Reaches Deadly Extremes. The New York Times. August 26, 2007.
5. Beychok, Milton R. (1967). Aqueous Wastes from Petroleum and Petrochemical Plants (1 st ed.). John Wiley & Sons. ISBN 0-471-07189-7. LCCN 67019834.
6. प्रो० गोपीरमण सिंह : स्वच्छता का समाजशास्त्र



CONTRIBUTION OF INDIAN DIASPORA IN DEVELOPING CULTURAL BOND BETWEEN INDIA AND MAURITIUS

Thus, Indian diasporas, forming around 75% of the population of Mauritius, have firmly rooted their cultural heritage in the island.

We may safely say that ethnically and culturally India and Mauritius are on the same page.

The phenomenon of Indian diasporas could be treated in the perspective of global history, where people moved from one part of the world to another under varying circumstances. Some time, as in case of Alexander the Great, it took in the form of rounding up the whole world through military expedition in an attempt to have his control ubiquitously, and spreading Hellenic glory over its area of influence. At another time, as in the case of Ashoka the Great, characterized with philanthropic zeal of releasing the current of mass human emancipation from the shackles of mundane life, it naturally assumed the form of a laudable, evangelical mission. During medieval period, an urge for religious expansion as well as political sway in the capture areas, prompted the Arabs and Turks to expand in Europe and Indian subcontinent.

Indian diaspora, contributing immensely to the phase of her past grandeur, was inspired with the conviction that it is only the promotion of a universally salubrious environment for peace that individual stands in relation to society in an equation of microcosm and macrocosm. Hence the



Prof. Damodar Singh

Post Graduate Dept. of History
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

exploration of new lands by her sons, and their closer contacts with new people was mostly an attempt to acquaint the latter in a persuasive spirit as to how deep Indian genius had fathomed in tracing the source of permanent happiness. Her missionary zeal for conveying the gospels of love and goodness easily placed her at a magnitude whose height still remain untouched, though the recourse to science and technology is mainly taken to expedite the cosmopolitan tempo of an enlightened progress. And now, when after having created the millennia of cultural expansion, where emigration had played a commendable role, her sons were being drafted as coolies and labourers in the middle of 19th century to various colonies within the British imperial complex, sounds literally like touching a ridiculous, precipitous fall from the sublime; and, adding to their



woes, most of them had to settle there. One of such place was Mauritius.

Initially the British Estate holders in Mauritius solved their labour problem for their sugar plantation by getting the much needed man force from the Africa, no matter however great the demand, which, in due course, became very lucrative to be odiously called the 'slave-trade'. But in 1833 the British House of Commons passed Anti Slavery Act and all the slaves working in the plantation of Mauritius were emancipated and set free. The slaves once liberated refused to work in the plantation as they considered that to be a symbol of semi-slavery. This compelled the British planters to look towards their newly acquired colony India, the so-called labour reservoir of cheap, to get rid of labour deficiency.

It was in such a colonial complex that Indian emigration to Mauritius commenced and In an apparent bid to solve labour problem for the British sugar planters in Mauritius, Indians in great numbers were transported to the island Mauritius mainly between 1834 and 1917 under indenture system of emigration. However, notwithstanding the flaws and excesses of the mode of recruitment, or their pigeonhole-like accommodation in the decks during their transshipment or high rate of mortality and sea-sickness on the voyage, and their herd-like existence under the employers accustomed to meting them out a slave-like treatment only, these coolies played a major role in, slowly and steadily, building a strong

socio-economic and cultural base of their new homeland, Mauritius. These Indian Diasporas formed majority in Mauritius, comprising about 73 % of the total population. They were the ones who fought and acquired independence in 1967. Thereafter, the Indian diasporas have all along been the dominant force in politics of the island, and they have always been governing the island. This paper is confined to scan the development of cultural bonds by Indian Diasporas in Mauritius.

The Indian diasporas in Mauritius were from various parts of India Tamil Nadu, Maharashtra, Chotanagpur, Bihar (mainly from present districts of Bhojpur, Rohtas, Buxar and Siwan) and eastern Uttar Pradesh. Among the Indians majority of them belonged to Bihar and Eastern U.P. Most of them were Hindus, whereas very few were Muslims. Though all of them were sufferers at the hands of the English planters, they had not forgotten their cultural heritage. They continued following their faith and worshipping. The first symbol of their cultural bond in Mauritius was witnessed in 1867 when the Hindus of north India constructed a Shiva Temple in a village in the north of the island called "Gokul", and around the same times the Tamilians set up their own places of worship in Port Luis. In 1872 the Muslim settlers, though in small number, also did not lag behind. They constructed the Great Jumma Masjid at Port Louis, which was considered to be a fine work of Islamic architecture.



All the Indian Diasporas were going through great hardship, but this did not deter them from celebrating festivals. Some of the important festivals and ceremonies which were celebrated were the Durga Puja, Holi, Diwali and Shivaratri. The 'Ekkadasi' and 'Ramnaumy' were observed mostly by women. The Tamils celebrated Cavadee festival for 10 days, to honour Lord Muruga. The Creoles (Christians in Mauritius) also participate in this festival in large number. The Muslims celebrate Eid-ul-Fitr (popularly known as Eid), Eid-al-Zoha (i.e. Bakarid) and Muharram.

In every estate there was a Baithaka (village club) wherein panchayat used to function, and it was the Baithaka where the most glamorous festivals and ceremony were held. Probably this was the only source of entertainment. The most popular was the katha which was performed to mark the celebration of a religious Bhagavat that was generally held around Christmas, i.e. in the last week of December. Men and women turned up in large number to hear the priest, who highlighted in simple words the goodness and glory of God as revealed in the Bhagwatgita, the Mahabharata and the Ramayana. To add to the gaiety of life, theatrical performance used to be held in villages, the most notable and popular being the Ramlila and the Indra Sabha.

The Muslims also celebrated their festival. Eid and Bakarid was celebrated in a grand way, wherein the Hindus also join in large number. However, the most popular

festival celebrated by them was "Muharram". Celebrating this festival is indicative of the fact that most of the Muslims were Shia.

The Indian Diasporas used a fairly wide range of musical instruments. The marriage ceremony perhaps provided most spectacular occasion of the manifestation of the traditional customs, beliefs and observances of Hindu religious life. Regarding dress, Mauritians resembled with Indian, courtesy diasporas.

In the backdrop of the facts, stated above, one may arguably say that Indian culture, Indian traditions and Indian religion dominated the life of the diasporas in Mauritius during the British rule. Even post independence, in Mauritius it could be easily gleaned that in various walks of social, religious and cultural life of the islanders, Indian culture has left indelible mark.

The Indian diasporas are also very loyal to the cultural ideals of the motherland. A symbol "Sheo Ganga" in a lake is there in Mauritius where the Hindus assemble each year in great numbers on the eve of Mahashivratri. A Shiva temple has also been built near the lake, and every year thousands of devotees take kanwars along with them from their respective homes to the temple to mark the occasion. There is festive like scene. All along the route to "Sheo Ganga", people, both Hindus and Muslims, assemble and give food, fruits, drinks to the devotees. On the banks of Sheo Ganga a big fair is organized for three days. Former Mauritian Prime Minister Dr. Sheosagar Ramgoolam, whose parents



were coolies hailing from Bihar, had also been very eager and anxious to promote the culture of his ancestors in Mauritius. He himself was a great custodian of his culture and every year, on the day of Shivaratri, he along with thousands of Mauritians used to go to “Mauritius Ganga” and take “Ganga water” from there. This tradition of Dr. Ramgoolam is carried by son and ex-premier of Mauritius Sri Naveen Chandra Ramgoolam too. The incumbent Prime Minister Pravind Jugnauth is also very caring about the socio-cultural well being of the diasporas. Indeed all this testifies how deep the roots of the Indian culture are among the Mauritians.

The Arya Samaj had also been great factor in moulding the life of the people of this tiny island. Though Arya Samaj was established in Mauritius by Dr. Manilal, but when he left the island in 1911, the socio-cultural work of Arya Samaj was effectively carried out under the leadership of Dr. Bharadwaj and, more importantly, Kasi Nath Keshto. The organization penetrated deep into the minds of Indian diasporas and did yeomen's service in generating a new consciousness, new awareness which ultimately led to the socio-cultural emancipation of the country. Through its wide network of schools across the island and its couple of newspapers Arya Vir and Arya Patrika, it generated much awareness and made diasporas conscious of their rights and taught them to forcefully assert for securing their legitimate place in the society.

In order to maintain and give firm footing

to the culture of Mauritius, many initiatives were undertaken by the diasporas. In the process, in 1935 the Hindi Pracharani Sabha was established. It is an educational, cultural and social friendly association, and functions purely on contributions by the well wishers. Situated at Long Mountain, its primary objective is the promotion of Hindi literature and Indian Culture. Its motto is 'Bhasha Gayi to Sanskriti Gayi'. (If language is lost, culture too is lost). In an apparent bid to encourage Hindi among the youngsters, it organizes, at regular intervals, competitions in poetry telling, story telling, speeches etc., and lucrative awards are distributed as well. Moreover, a Gita Institute was established in Port Louis in 1933 and it provided a forum for diasporas to learn and preach the gospel.

The Ramayana Centre is an another important cultural and spiritual organization based in Mauritius. It was founded in 2001 by an act passed in the National Assembly of the Republic of Mauritius to promote and propagate the Hindu epic Ramayana and the spiritual, social and cultural values flowing therefrom. Prior to this, no parliament of any country had enacted a Bill or set up an institution for the dissemination of the perennial values of the Ramayana. In 2002, on Tulsi Jayanti day, the foundation stone of the Ramayana Center was laid by the then Prime Minister, Anerood Jugnauth. Subsequently the building was formally inaugurated in 2007 by the then Prime Minister Dr. Navinchandra Ramgoolam.

Apparently keeping Indian diasporas in



the mind, an apex institute of oriental learning by the Government of Mauritius was established with the support of the Government of India, distinguished as Mahatma Gandhi Institute (MGI). It was inaugurated on October 9, 1976 jointly by Sir Seewoosagur Ramgoolam and Smt. Indira Gandhi, the then Prime Ministers of Mauritius and India respectively. Located in Moka, its Mission is to provide academic and cultural basis for the promotion, consolidation and dissemination of Indian Cultural traditions within the multicultural context of Mauritius. A post of ICCR (Indian Council for Cultural Relations) Chair, Indian Philosophy and Sanskrit, has been established. Apart from teaching, one of the main works of the chairperson is to strengthen the cultural bond while delivering specialized lectures at various fora.

The Mahatma Gandhi Institute has a mandate to promote Indian Studies, Performing Arts, Fine Arts, Mauritian Studies, Chinese Studies and African Studies. The High Commissioner of India is the ex-officio Vice-chairperson of the Council of the Institute, which is headed by a Chairperson nominated by the Government of Mauritius. The Institute has brought Indian studies, especially Indian languages (Hindi, Bhojpuri, Sanskrit, Tamil, Telgu and Marathi), philosophy and, more importantly, Indian culture into the mainstream of the Mauritian education. Through its education facilities, the School of Mauritian, Asian and African studies, Folklore Museum, Fine Arts building,

Gandhian Basic School for crafts learning and a rich library, the Institute has served as a bridge for bringing together the cultures of the two countries and has enriched the understanding of each other.

Almost on a similar tone and tenure, another institution known as Indira Gandhi Centre for Indian Culture (IGCIC) was established in 1987. It is also a cultural wing of the High Commission of India in Mauritius. The Centre was established in 1987 and had been functioning from the rented premises in Quatre Bornes before moving into its own building in 2002. The new premises of IGCIC at Phoenix was inaugurated on March 11, 2000 by Shri Atal Bihari Vajpayee, former Prime Minister of India and Dr Navin Chandra Ramgoolam, the Prime Minister of Mauritius.

One of the main activities of IGCIC is presentation of cultural programmes by the eminent cultural troupes from India visiting Mauritius under the Cultural Exchange Programme (CEP) and outside CEP framework. ICCR sponsors the visit of leading cultural troupes from India on special occasions as well, such as Mahashivaratri, Milad-un-Nabi, Diwali etc. IGCIC in collaboration with Ministry of Arts & Culture arranges for the performances of the visiting groups at IGCIC and other places of Mauritius for the benefit of the people living in remote areas.

One can very well realize that at the core of both the organizations, MGI and IGCIC, is the development of cultural bond of the Indian diasporas in Mauritius.



Hindi is part and parcel of the cultural history of Mauritius. Hindi of Mauritius is the standard form of Bhojpuri, once spoken in the island and now spoken by several people and understood by several more. Post independence, it was mainly due to the efforts of late Dr. Sheosagar Ramgoolam (1900-1984) and his son Navinchandra Ramgoolam (b.1947) that Hindi has found a place in State colleges. The number of students preparing for higher examinations in Hindi conducted by the Hindi Sahitya Sammelan of Allahabad reached 9000 in 1975. There are around 1000 centres in Mauritius where free Hindi classes are conducted every afternoon. There are over 500 Government Primary Schools where Hindi is taught by hundreds of teachers. Moreover, WHS an ICCR Hindi Chair has been established to highlight the cause of Hindi and Indian culture.

India has given considerable encouragement to popularize Hindi in Mauritius which has gone long way in promoting cultural bond of the diasporas and cultural solidarity between India and Mauritius. The Second World Hindi Conference was held on 28-30 August, 1976, at Port Luis, Mauritius, Dr. Sheosagar Ramgoolam, the then Prime Minister of Mauritius, was Chairperson of the National Organization Committee, and a delegation of 23 members from India, under the leadership of the Chairman of the event, Dr. Karan Singh, Minister for Health and Family Planning participated in the conference. Again, from 02-04 December, 1993 Fourth Hindi Conference was held in Port Louis, wherein a

strong Indian contingent under the leadership of Shri Madhukar Rao Chowdhary participated. Last year, i.e. in 2018 the 11th World Hindi Conference was held from 18-20 August at Swami Vivekananda International Conference Centre in Mauritius, wherein an Indian contingent of about 150 dignitaries, headed Ms Sushma Swaraj, External Affairs Minister, participated. The holding of such a conference has gone a long way to cementing the cultural bonds of the Indian diasporas in Mauritius.

Thus, Indian diasporas, forming around 75% of the population of Mauritius, have firmly rooted their cultural heritage in the island. We may safely say that ethnically and culturally India and Mauritius are on the same page. Since the very beginning of the Indian settlement there, Indian religion, culture and traditions have influenced the life of the people of the island, and with the passage of time these links have become stronger and more durable. Indian diasporas in Mauritius have not forgotten their culture, traditions, religion and still today they are perfect custodians of Indian culture. Post independence, the Government and people of the two nations have quite earnestly attempted to strengthen the already strong cultural bonds that united the two countries in more ways than one. Sir Veera Samy Ringadoo, the then Mauritian minister, aptly summed up this bond in his address at Jawaharlal Nehru University on the theme Indo-Mauritius Relationship on February 26, 1989 : "India provided Mauritius with every opportunity to tap the immense cultural savoir of the sub-continent." ●



WILLIAM WORDSWORTH

A GREAT WORSHIPPER OF NATURE

Wordsworth is fully convinced that the natural instincts and pleasures of childhood are true standards of a Man's happiness in life. All pleasures which a man, so easily neglects in his work, are the chief means by which we may expect permanent and increasing Joy.



Prof. (Dr.) Baban Kr. Singh

University Professor cum Proctor
P.G. Dept. of English
A. N. College, Patna

It is an admitted fact that William Wordsworth is the greatest priest in the temple of Nature. Devotion to Nature is his main religion. According to him, Nature is the most powerful healer and teacher and not killer at all. He rightly declares:- "Let Nature be your Teacher". The poem The Rainbow opens with the line "My heart leaps up when I behold a rainbow in the sky" of course, the taste and temperament for Nature lies in his blood. His unputdownable poem "The Daffodils" also hints at his deep rooted attachment to Nature. He is a renowned romantic poet.

To William Wordsworth, Man and Nature are linked together by the indwelling spirit. The best philosopher, to William Wordsworth, is the child, that he is receptive, free from the inevitable yoke custom and routine, which the years bring. This leads one to believe that there must be stirring in Nature latest beneath her visible forms "a mind" with which the "mind of man" may hold communication. To be open to all the influences, around us, to let ourselves be passive to the powers about us, to neglect not even the smallest of voices for ever speaking to us that seems the real

wisdom.

The question is how many of us are willing to listen to such a voice? In fact, majority of men are deaf to these voices, just because they are so busy with their work and have no time for hearing these voices. The world is too much.

With us Wordsworth's entire poetic structure is built upon his ethical conviction that 'Man' by living in direct contact with 'Nature' ultimately becomes Divine 'a part of God.' He has a firm belief that Man's miseries and misfortunes are due to the fact that Man has gone far from Nature. As soon as he returns to the tranquil and calm bosom of Mother Nature, all his miseries and misfortunes vanish, giving place to an eternal bliss and perpetual elation.

Wordsworth opines that Nature has a soul of its own and between the soul of Nature and Mind of Man there is a pre-arranged harmony or an unconscious affinity. The harmony, between the some of Nature and the Mind of Man, enters into every atom, and creates a vitality in the various objects of Nature, Wordsworth has firm conviction that Man's ultimate aim must be to lose his identity and



be absorbed in the "Souls of All Souls." 'As the little virulent is restless to mingle with the infinite sea, the individual soul's ultimate end according to Wordsworthian philosophy, is to be completely absorbed in the souls of All Souls'. Philosophy asserts that the harmony or the union between Man and God can be affected when Man must recognise his very SELF, His WILL is identical in essence with every creature, even the oppressed, the humblest and the down-trodden, and is in love and sympathy with Nature. Then only the veil of MAYA becomes transparent and Man gets nearer his Maker, and ultimately becomes His Part.

No doubt, William Wordsworth remains essentially a poet of Nature. He is not less the poet of Man and in what he writes about human life, his greatness as a moralist is specially apparent. His philosophy of human life rests upon his fundamental conception that Man is not apart from Nature. He glorifies childhood as the state when the kinship with Nature and God is at its greatest. Wordsworth explains this by the picture that the child comes straight from the creator of Nature.

Wordsworth is fully convinced that the natural instincts and pleasures of childhood are true standards of a Man's happiness in life. All pleasures which a man, so easily neglects in his work, are the chief means by which we may expect permanent and increasing Joy.

We see this plain teaching in 'The Rainbow', 'Tintern Abbey', and 'Intimations of immortality'. Wordsworth saw Joy in Nature and it awakened Joy in him. He received delight and he gave back delight. It was his ethical conviction that function of Nature is to lead Man from Joy to Joy and make him eternally blissful.

When the final stage of Wordsworth's approach to Nature came, he became a pantheist. According to the philosophy of Pantheism there is a pre-arranged understanding between Nature and God. At his stage the foundation of Wordsworth's entire existence was made of seeing God in Nature and Nature in God. He had the firm belief that in all its detached manifestations Nature reveals one God. And Wordsworth look up the role of a High Priest of Nature a worshipper in that service, who never gets tired of that service. Ultimately, the worshipper in the deepest and profoundest love for Nature & God is lost in Him and having lost his own self identity, became one with Him. This is the final stage of his Nature Worship. In quest of God, he goes to Nature and is, finally, absorbed in Nature and by becoming one with Nature he becomes 'One with God'. As such, we come to the conclusion that Wordsworth and Nature are closely related to each other like the flower and its smell. ●

The music in my heart I bore Long after It was
heard no more.

- William Wordsworth



ECOLOGICAL LEANINGS IN BRIHADARANYAKA UPANISHAD

**Mind evolves in life and life evolves in matter
because they are inherent in an original
reality that is one without a second and which
is self-luminous.**



Dr. Abha Singh

former ICCR Chair, MGI, Mauritius

Professor

Post Graduate Department of Philosophy
A.N.College, Patliputra University, Patna

In 1866 German zoologist Ernst Haeckel invented the word 'oecologies' and used it for 'the relation of the animal to its organic as well as its inorganic environment, particularly its friendly and hostile relation to those animals or plants with which it comes in contact'.¹ The word 'ecology' has been derived from a couple of Greek words 'oikos' and 'logos', which means habitation and study respectively. Ecology literarily denotes a vast range of study from the living habits of individual species to an overarching concern for the entire planetary system. It is not limited merely to the study and preservation of plants, animals and microscopic organism, it also involves human interaction with the physical environment. In other words, the spectrum of ecology comprises a study of relations among people as well as those among people and their environment. Thus, 'ecology' requires one to respect linkages between the cultural (religious, social, economic) and natural processes. The philosophy of ecology emerges through an exploration of subtle and complex relationship between cultural and natural worlds. It is the culture which provides the lens through which the perception of natural world is understood

and acted upon. The maturity of one's ecological thinking depends upon one's ability to be fully honest about the tradition one embraces.

The root of every tradition lies in their belief in certain values. In other words, man, in his cultural quests, shows deep concern for what is valuable. Man creates values as per suitability of time and space, as he is a reckoner of values. One acts according to certain values that one cultivates and obtains from different sources. Hence, values of life determine the nature of a society. However, there are some vital elements in Indian tradition that provides continuous sustenance and strength to human life irrespective of its space and time. It carries certain unique features, which have transcended the spatio-temporal barriers and are continuous in its appeal.

Arguably, that feature of India is spirituality. Spirituality begins from looking within. True spirituality means looking within not only oneself, but also the whole nature, i. e. to understand the internal reality of nature. Spirituality is the motive force behind which we feel ourselves as part of the whole and ponder how this creation is working, how our



own being is working within it and who has created it and how? Without this internal dimension animal spirit prevails in man.

Again, tradition of a society is mirrored in its literature. Reverence for nature is found in earliest Indian literature, Vedas and Upanishads. In this paper I intend to trace ecological leanings in the dialogue between Sage Yajnavalkya and his scholarly wife Maitreyi (symbol of Indian intellectual woman), daughter of one of the ministers in the court of King Janak, in Brihadaranyaka Upanishad. Other wife of Yajnavalkya has been depicted as a housewife.

The pretext of the famous dialogue between sage Yajnavalkya and wife Maitreyi in the Brihadaranyaka Upanishad is that after the completion of first three stages of life, brahmacharya, grihastha and vanaprastha, Yajnavalkya started preparing for sannyasa. In that process he told both of his wives that before his departure he wishes to divide his secular property into two equal parts for them. It makes Maitreyi puzzled. She questions; whether the worldly riches could make her perpetually happy and immortal? To this Yajnavalkya's reply is negative, but he understands the intellectual depth of his wife. He realises that Maitreyi is a true seeker of ultimate knowledge and a lover of Self (atman).

Yajnavalkya offers to explain to her that it is knowledge of the Self which confers immortality. People, in general, run after worldly satisfactions and riches of the earth

that, they believe, would enable them to happily perform rites and rituals that would make one immortal. Such dialogue takes place in the second chapter of Brihadaranyaka Upanishad and is known as Madhu Khanda for it introduces the Madhu theory. Madhu literally means honey. In the Madhu theory Brihadaranyaka Upanishad opines that 'atman (soul) exists'. All organic beings such as plants, animals, human beings and gods are wandering souls. Still all are one with each other merging in Brahman (Cosmic Soul). The inorganic nature, i.e. earth, water, fire, air and space, is the field where beings act. It is in the inorganic field where the actions of beings bear fruits that they experience. It states that everything is the universe is connected. Organic beings affect inorganic nature and inorganic nature affects the organic beings. Everything and everyone is mutually dependent, nourishing and nurturing each other. One is the 'honey'

of the other because it is all one Brahman, one blissful existence.

It suggests that as a human being, man, carries affection for worldly relations and riches. Maitreyi asks: "What is the secret behind the love expressed by one person to another?" Answering this question, Yajnavalkya asserts that all organic beings and inorganic nature is mutually

dependent. Everyone and everything affect each other because all existence is blissful oneness of Brahman. One cherishes this world only because the Self is embedded in the whole creation. Everything is dear due to Self. It is love for one's own self in disguise.

“**All organic beings and inorganic nature is mutually dependent. Everyone and everything affect each other because all existence is blissful oneness of Brahman.**”



Whether it is love for God, or wealth, or one's body, or one's kith and kin, or caste, or whatsoever sources of joy is in this world, all is dear only for the sake of Self. Self is at the root of whatever form of love that man is stuck with. However, our love for other objects are superimposed on the self by ignorance. It can be likened as the illusion of snake in a rope. Love for worldly objects is secondary as they contribute to the pleasure of the self and our love for Self alone is primary. Self is embedded in whatsoever man does or thinks. Yajnavalkya opines that the love that one feels in respect of an object is in fact the love that the love for perfection and completeness. It is not really love for the particular object. To make it more lucid Yajnavalkya says that even when one clings towards particular object as a source of satisfaction, actually the mind does not want that object. What mind desires is completeness of being. Thus, when there is a promise of the fulfilment that it seeks, through the perception of an object that appears to be its counterpart, there is a sudden feeling that fullness is going to come, and there is a satisfaction even on the perception of that object; and there is an apparent satisfaction, just by the imagined possession of it together with the yearning for actual possession. So, what is it that you are asking for? You are not asking for any object or thing; you are asking for a condition of completeness in your being.

Above explanation of Yajnavalkya makes Maitreyi perturbed. She raises a pertinent question: "Why is mind oblivious of it and how to obtain proper knowledge of it?" Yajnavalkya answers this question taking recourse to various similes. He says that as



the drum and sound that it produces cannot be separated because sound doesn't have an independent existence apart from the drum. Similarly the relation between smoke (that rises up when fire is kindled with damp fuel) and fire cannot be perceived distinctly. These are the examples of two entities that are essentially related to each other but can't be perceived independently. Likewise we have varied experiences in waking or dream states, but what is common in all experience is consciousness (self). It cannot be perceived apart from these states. In other words, there is a relation of inherence between consciousness and life. Because of the inherence of consciousness (self) in everything, we conclude that consciousness is essentially related to life. Apart from self or consciousness everything else should be considered as non-existent. Self is centrally connected to everything in the universe. 'It is like ocean for water, skin for touch, nose for all smells, tongue for all tastes, eye for all forms, ear for all sounds, mind for all intentions, heart for all arts, hand for all actions, and the feet for all movements'. Yajnavalkya asserts that Self is infinite and



boundless. It is Pure Consciousness. Everything emerges from its elements and merges into It again. In Its absence there is no more individual consciousness. Yajnyavalkya tells Maitreyi that this infinite and boundless Being is a 'mass of consciousness'. The reason why one cannot have perceptual knowledge or cognitional awareness in the totality of things is because of the fact that everything is connected with everything in that knowledge. One cannot look upon something and judge a thing independently as everything is connected with everything else.

The gist of Yajnavalkya-Maitreyi dialogue is based on two precepts of value (a) the essential infinitude and divinity of all souls and (b) the essential oneness and solidarity of universe and all life. Supreme Being resides in all; hence no area of life is alien to spiritual influence. It emphasizes the presence of an infinite knowledge, power, purity and bliss behind the body-mind

complex of limited human beings, which is called Atman. Moreover, as mentioned earlier, the dialogue emphasized upon the essential unity of all existence. This vision is spiritualistic. It has enjoined the self in all beings and all beings in the self. It has exhorted to get engaged in the welfare of all beings, hating none and enhancing friendliness and compassion for all.

The above-mentioned holistic views of the Brihadaranyaka Upanishad is mirrored in the philosophy of ecology. Quite in

consonance with the organic character of universe, as foreseen by Yajnyavalkya, reputed ecologist Aldo Leopold avers that the close and deep relationship between man and his environment is felt intuitively. For him, nature is animate.

For Opensky, small part of human body, when reflected separately knowing nothing about the rest of body, appears to be inanimate. Similar is the case with the earth viewed elementarily. Again Aldo Leopold is of the view that 'there is not much discrepancy

except in language, between the conception of a living earth, and the conception of a dead earth, with enormously slow, intricate and interrelated functions among its parts, as given by physics, chemistry and geology. The essential thing for present purpose is that both admit the interdependent functions of the elements'. But 'anything indivisible is a living being', says Opensky. Possibly in our intuitive perceptions,

which may be truer than our philosophies, we realize the indivisibility of the earth its soil, mountains, rivers, forests, climate, plants and animals, and respect it collectively not only as a useful servant but as a living being, vastly less alive than ourselves in degree, but vastly greater than ourselves in time and space.

It is, thus, quite obvious that the primary object of ecological concern is the ecosystem as a whole. Peter Singer also supports this view when he writes: 'Behind many attempts to derive values from

“
'Behind many attempts to derive values from ecological ethics at this level lies some form of holism some sense that the species or ecosystem is not just a collection of individuals but really an entity in its own right.'
”



ecological ethics at this level lies some form of holism some sense that the species or ecosystem is not just a collection of individuals but really an entity in its own right.¹

As so, ecology has made it possible to apprehend the same earth as an articulate unity. It has expanded the frontiers of the relationality of the human community to the greatest relationality of all biotic and abiotic members of the biosphere. A concept of cosmic family has been envisaged. Hence, ecology is in consonance with basic teachings of Brihadaranyaka Upanishad

where nature has been regarded as a repository of accumulated wisdom of billions and billions of years. It has built an intricate relationship among the various species of living organisms individually as well as collectively, and also between living organism and their surroundings. Ecologists would undoubtedly agree with Yajnavalkya that wisdom of nature far exceeds the total

scientific knowledge that man has at his command. However, for Yajnavalkya all this

rests upon the existence of an intelligent Being who is imminent as well as transcendent. In that respect it is on the same page with ecology which also establishes that there is an impersonal intelligence embedded in nature that also transcends all these aspects of intelligent design.

The above discussion leads us to conclude that ecology and basic ethos of Brihadaranyaka Upanishad

are two faces of the same coin, as the two conceive consciousness at the root of all phenomena and at the root of evolutionary process. It reinforces the Vedantic concept that mind evolves in life and life evolves in matter because they are inherent in an original reality that is one without a second and which is self-luminous.

“ **A concept of cosmic family has been envisaged. Hence, ecology is in consonance with basic teachings of Brihadaranyaka Upanishad where nature has been regarded as a repository of accumulated wisdom of billions and billions of years.** ”

ARISE, AWAKE, STOP
NOT UNTIL YOUR
GOAL IS ACHIEVED

उठ जाग, रुक मत जाग तक





Evolution vis-à-vis Entropy

"Nature promotes entropy and disorder. Universe functions with a single goal to spread energy and to efficiently create chaos, it requires some order. Matter self-organizes in an effort to better disperse energy, of example, Tornadoes were natures, way of dispelling a concentrated area of high pressure by converting into rotational force and eventually exhausting itself."



Dr. Arun Kumar
Dept. of Physics
A. N. College, Patna

English naturalist Charles Darwin (1809-1882), in mid 19th century proposed the theory of biological evolution stating that all species of organism arose and developed through natural selection. Small and inherited variations increase the individual's ability to compete, survive and reproduce. Although, natural selection had been established as an empirical scientific fact yet it faced, stiff opposition from creationists and a sizable fraction of scientific community. Creation-evolution controversy had cultural, political and theological overtones. Creationists had long rooted religious belief that nature, life and humans, originated with supernatural acts of divine intervention. "Familiarity breeds Acceptance"- the common people familiar with religious belief, accepted this as fait accompli. Pope Francis remarked "God is not a demiurge or magician, but the Creator who brought every thing to life". Anti-evolutionist from scientific community claimed that evolutionary mechanisms were inconsistent with the second law of thermodynamics which states "Everything always gets more disordered over time".

Speciation by evolution violates the second law of thermodynamics (Morris, 1987).

- Salient Features of Evolution Theory
- Current Species developed from earlier life forms.
- Earlier forms were simpler in having few capabilities and less complex systems.
- Organisms get better ordered over time.
- Laws of Thermodynamics
- The energy of the Universe is constant.
- The entropy of universe tends towards maximum.

Above two statements pertain to the first and the second law of thermodynamics respectively and extend to encompass all of nature. There are a number of ways in which second law of thermodynamics can be stated-

For an isolated system, the direction of spontaneous change is from arrangement of lesser probability to an arrangement of greater probability.

For an isolated system, the direction of spontaneous change is from order to disorder



and The entropy of an isolated system increases or remains the same.

Like conservation laws, the second law of thermodynamics applies only to a system, free of external influences. For a system that is not isolated, there is no principle restricting its direction of spontaneous change. Entropy is a measure of disorder in a system or probability of arrangements of the parts of a system. Greater probability means greater disorder and entropy is higher. Arrangement of less probability means greater order and less entropy.

The Arrow of Time

In the Principia, Newton wrote "Absolute, true and mathematical time, of itself, and from its own nature flows equably without regard to anything external, and by another name is called duration". This view of time persisted until the arrival of Special Relativity in the beginning of 20th century.

The second law of thermodynamics differentiated between forward and backward in time, as laws of mechanics had failed to do so. If the time were run backward, it is quite reasonable as well as possible that the reversed planetary orbits, would obey the same laws as the actual forward in time orbits. But the reversal of any entropy-changing transformation would be neither reasonable nor possible. However, the second law of thermodynamics is basically a

probabilistic law, whose absolute validity increases as the complexity (number of parts constituting the system) of the system it describes increases. For a system, having a few (say a dozen) molecules, it is probable as well as possible, that entropy may decrease, at least some of the time. It may happen that all the twelve molecules may cluster in a corner of a container. But a system consisting of large number of molecule (say 1010 or 1020), the entropy decrease becomes so improbable that it would be called "Impossible". The essential probabilistic nature of second law of thermodynamics

leaves open the possibility that highly improbable reversal of probability may occur in which disorder is restored to order.

Relativity had most profound effect on our conception of time. The merger of space and time made the temporal arrow unreasonable, when there was no spatial arrow. It is

more consistent to think of man, matter moving through time (as they move through space) than to think of time itself as flowing.

Kenneth W. Ford of the University of California, wrote "All of the new insights about time make clear that we must think about it in very human terms"- its definition, its measurement; its apparently unique direction stem not from "absolute true and mathematical time" but from psychological time. These insights also re-inforce the idea that the second law of thermodynamics

“Newton wrote "Absolute, true and mathematical time, of itself, and from its own nature flows equably without regard to anything external, and by another name is called duration".



must ultimately account for our sense of time. It is stimulating idea that the only reason man is aware of the past and not the future that he is a complicated and highly organized structure. Unfortunately, simple creatures are no better off They equalize future and past by remembering neither. An electron, being precisely identical with every other electron, is totally unmarked by its past or by future. Man is intelligent enough to be scarred by his past. But the same complexity that gives him a memory at all, is what keeps his future a mystery.

Anti-Evolutionist view-point

Anti-evolutionists argued that as entropy of the universe increases or remains the same, therefore disorder is more probable than order and

a system over time becomes more disordered. Therefore, both evolutionary theory and second law of thermodynamics can not be correct. Physics is more basic or well established than Biology therefore second law of thermodynamics is predominant and universal, while Darwin's evolution theory should be rejected as an esoteric hypothesis

Naturalists Defense

Naturalists contended that "Second Law of Thermo-dynamics holds for systems that are thermally isolated and not for those, which are in equilibrium" Living organisms are open systems that maintain greater order than surroundings by importing free energy

(nutrients) and exporting entropy (heat and waste). Living things have been elegantly described as "islands of order surrounded by ocean of chaos (Margules and Sagar, 1995)".

Austrian physicist and Nobel Laureate, Erwin Schrodinger considered that "fundamental attribute of living things is that they maintain high levels of internal order by exporting entropy to their environment (Schrodinger, 1944)"

Darwin's theory is oblivious of the "Arrival of the Fittest"

Darwin's theory described the "survival of the fittest but not the arrival of the fittest". It

explained how the current species developed from earlier life but could not explain, how did life arrive on the

earth? In order to explore the origin of life, a famous experiment in 1950s, was carried out by chemists Stanley Miller and Harold Urey.

Miller-Urey Experiment

Miller and Urey Prepared a "Primordial soup" containing water, methane, Ammonia and hydrogen and heated this concoction (mixture) to simulate boiling seas, then, it was subjected to heavy shocks by electric charges to imitate lightning. Finally, the mixture was allowed to cool, just as planets and oceans had cooled.

Miller Urey experiment failed bit it produced a few amino acids- nothing closely resembling life. Creationist cited failure of this experiment to castigate evolutionists as

“ Miller Urey experiment failed bit it produced a few amino acids- nothing closely resembling life. ”



scientific proof that life could not have appeared on earth without divine intervention.

In 2007, Miller's students re-analysed the samples using contemporary techniques including Liquid chromatography and mass spectroscopy. The results had been surprising- the new analysis of the vials identified several important nucleobases, the building blocks of RNA. On this basis, many scientists believed that as life evolved over billion of years, therefore, Miller-Urey experiment needed much more time to gestate.

Conclusion

Belgian chemist and Nobel Laureate, Ilya Prigogine proposed a theory for predicting the behavior of open systems weakly driven by external sources. Prigogine proposed in thermodynamic terms that life can be considered a subset of larger class of systems called "dissipative structures (Prigogine and Stengers, 1984)".

In 2013-14, MIT Physicist Jeremy England proposed a hypothesis based on mathematical formulae known as "Dissipation Driven Adaptive organization". He proposed that "Nature promotes entropy and disorder. Universe functions with a single goal to spread energy and to efficiently create chaos, it requires some order. Matter self-organizes in an effort to better disperse energy, of example, Tornadoes were natures, way of dispelling a concentrated area of high pressure by converting into rotational force

and eventually exhausting itself. Photosynthesis is also a very effective entropy machine. The concentrated energy of sun is dissolved and weakened by trees, resulting into overall increase in entropy. Life is an exceptionally effective tool for dissipating energy and increasing entropy. For an entropy tool, the easiest way to do more work is to make copies of itself". But Jeremy's hypothesis is still unproved.

Eugene Shakhnovich, a professor of Chemistry, Chemical Biology and Biophysics at Harvard University said "Jeremy's ideas are interesting and potentially promising but at this point extremely speculative, especially applied to life phenomena". Therefore, at present, a credible theory overarching evolution and entropy applied to life phenomena is still elusive.

References

1. Ford Kenneth W: Basic physics P 456-57, Oxford and IBH Publishing company: 1975
2. Bunn E. E.: Evolution and second Law of Thermodynamics, A M J Phys, 2009: 77(10): 922-50
3. Prigogine I, Stengers I: Order out of chaos: man's new dialogue with Nature: Flamingo: 1984
4. Schrodinger E: What is life? Mind and matter Cambridge University





Status of Time in Indian Thought

Time is also considered as a unifying and coordinating principle which coordinates all experiences and their interpretations. This role of time led to the belief in its metaphysical reality, a reality which seems to be constitutive of our experience and thinking.



Dr. Shailesh Kr. Singh

Professor, Dept. of Philosophy
A.N. College, Patna

E I had presented this paper in the Symposium of the 90th Session of Indian Philosophical Congress. I intend that the teachers, research scholars and students who do not necessarily belong to the field of philosophy should also know the brief and basic concept of Time as has been sketched by some important Western and Indian thinkers. With this idea I wished for the publication of this paper also in the books, journals and magazines which are not confined only to the field of Philosophy.

The visualisation and conception of space and time in Indian thought is somewhat different from what the Western mind regards as intuitively obvious. Some Western thinkers regard space and time as categories. In western sense categories or knowledge stands for the universal notions which are involved in all judgements. Different thinkers, in western thought, have conceived different lists of categories. For example Aristotle regards ten categories which include space denoted as 'where' and time denoted as 'when'. Hegel believed in seventy categories. Schopenhauer reduces all the categories to causality. Most of the western thinkers have agreed in regarding space, time, substance and causality as the fundamental categories of knowledge. Any

supposition about the existence of substance refers to the conception that substance exists somewhere in space and at a certain point of time **having power of producing changes in other things.** (Dr. Jadunath Sinha, Introduction to Philosophy, p. 90) We are familiar to the twelve categories mentioned by Kant. For Kant time is mere subjective form of intuition, essentially a human way of looking at things and, therefore, has no place beyond the world of appearance, in things-in-themselves. According to Kant, time is neither an objective reality, nor an abstract concept generalized from the experience of succession or sequence. The notion of time cannot be derived from the ideas of succession of events, since the experience of succession presupposes time. The apprehension of events in the order of before and after presupposes the notion of time. Hence, the notion of time is not derived from and posterior to experience, but prior to all experience. It is an a priori form of perception, an a priori notion which the mind evolves from within itself in order to represent to itself the succession of events. Time has only empirical reality. It applies to phenomena only. Things-in-themselves do not exist in



time. Time is an a priori form of internal perception.

The conception of change wedded to such a conception of time is nothing more than that of succession and replacement of state by state. Bergson, however, in addition to this succession and replacement aspect of time identifies it with the deeper reality which we experience within us. Real time is better named duration, because while ordinarily time suggests succession, duration suggests the enduring and continuous character which belongs to real time.

Russell in his work 'Problem of Philosophy' believes in two space: real space and apparent space. It is essential to science that its matter should be in space, but the space in which it cannot be exactly the space we see or feel. But this real space is public the apparent space is private to the percipient. Thus we may assume that there is a physical space which physical objects have special relations corresponding to those which the corresponding sense-data have in our private spaces. It is physical space which dealt with in geometry and assumed in physics and astronomy. Assuming that there is physical space, and that it does thus correspond to private spaces, what can we know about it? We can know only what is required in order to secure the correspondence. (Russell, p.31)

Russell says "thus, so far as time is constituted by duration, there is the same necessity for distinguishing a public and a private time as there was the case of space". (Russell, p.32)

The theory of evolutionist Spencer and his follower is essentially empirical but it is modified by their doctrine of evolution. The idea of time, according to them, is undoubtedly an abstraction from the experiences of successive events; but it is not the experiences of the individual mind from which the idea is abstracted; idea has really being derived from the accumulated experience of innumerable generations and has been handed down to us according to the law of heredity. (P.B.Chatterjee, p. 74)

Perceptual time is the specious present which is grasped by the perception; it is the meeting point of the immediate past and the immediate future; it emerges from the immediate past and grows into the immediate future. It is not a mathematical instant but a duration of time filled with an event, which is grasped by a single act of perception. The past is known by memory and the future is known by expectation. Times perceived by the inner sense constitute perceptual spaces. They are many and different from one another. We make an abstraction from many times perceived, and from an abstract general idea or concept of one time. It is the ground of sequence of events. Hume says, "Time is always discovered by some perceivable succession of changeable objects."

In western philosophy space is understood in the relational way as above, below, inside, outside, nearness, distance etc. Generally speaking, space is regarded as a real substance existing outside and independent of mind an empty receptacle in



which all things are contained. The relation between space and material objects is that of a container to the contained. This is the view of Newton and of commonsense Realism. Descartes identifies space with extension, and regards it not as a real substance, but as an attribute of matter. Extension is the essence of matter. For Spinoza space or extension is one of the infinite attributes of the one substance, viz. God. Infinite extension is an attribute of God. Leibnitz regards space not as an objective entity, but as confused perception, on our part, of the co-existence of monads. For the empiricists like Berkeley, Hume, Mill space is purely an abstract idea or a concept generalized from the ideas of co-existence derived from tactuo-muscular sensations; empty space is derived from the unresisted movement and that of the filled space from the muscular sensations of resisted movement. According to Kant the very idea of movement and co-existence involves and presupposes the a priori idea of space. So space is an a priori form of the mind, a form of perception, our way of representing things in mutual externality to each other. The things-in-themselves are not in space. Space is not a real substance or an attribute of a relation of things. It is an a priori form of perception. It is a form of external perception. Kant recognizes only empirical reality of space.

In Vedic Samhitas the notion of the various division and sub-divisions of time (kala) is found in several hymns. References to days and nights are found in places. There are six Ritus each of two months duration or

only five by joining Hemanta and Sisira together as to form one ritu. Three ordinary division of time, namely, present, past and future are found mentioned in the Rig Veda. Besides, time is identified with the Sun and Vishnu and is divided into another 90 divisions; year, two solstices, five seasons, twelve months, twenty four half months, thirty days, eight watches, and twelve Zodiacal signs. This whole form of a circle which like a wheel remains constantly moving. (Umesh Mishra, p.55) For the agriculturalists of the early Vedic period, time meant the year and its seasons. In addition, the sun is associated with the passage of time, for example at RV 1.155.6, where Vishnu with his three strides sets in motion the 360 days and nights 'like a self-revolving wheel'. In the Atharvaveda, however, the effort to find some single unifying principle in the universe leads occasionally to time. In A V 13.2.39-41, kala is brought into connection with Prajapati, because both are representatives of the Rohita, the sun, who precedes time. The hymn of Atharvaveda (A V 19.53-54) make of kala a first principle, declaring that it is by Time that everything has been created and set in motion, from the sun's course onwards, and thus even Prajapati, 'the lord of creatures', was produced in the beginning by Time. Thus everything originates in time, persists in time and is destroyed in time: Time both creates and destroys everything. Also in Maitri Upanisad it has been said kalah pacati bhutani i.e. 'Time cooks/ripens all things indeed in the great self; he who knows what time is ripened/cooked in, he is a knower of



the Veda. This is found in variant forms not only in the Buddhist tradition (in Jataka tales) but also in the Mahabharata. This proverb shows a far more acute awareness of time than is often associated with Indian culture, but is only one of several such proverbial sayings found in the epics. The Vedic view on time and that of the epics reveal a more dynamic view of time. (G.C.Nayak & K. Bagchi, p.43,44,46)

In Indian Philosophy the schools of NyayaVaisesika and Jainism talk of duration. They expound the concept of duration on the basis of their experience of perceptual or specious present which ranges from one moment to a number of moments. Nyaya and Jainism have discussed the nature of and duration of present time in some details. Both maintain two kinds of time one, which is absolute and substantial, and the other is the empirical divisions of time based on spatial periodic movements of physical bodies.

According to Vaisesika 'kala' is the extraordinary cause of past, present and future. We have such knowledge in the context of substance (dravya). Kala is the extraordinary cause of the knowledge like this event took place before that or after that or simultaneously. Similarly, space is the basis for the supposition of here and there, before and after, far and near, east and west, north and south. Both space and time like akasha are all-pervading (vyapaka). Both are formless and thus are not perceived. Their existence is inferred from empirical events and substances. Both are basically one and indivisible but due to upadhi they are

regarded as many. Due to upadhi one indivisible (akhand) time is separated into day, night, months, year, etc. So is the case with space also. Both akasha and space are the two separate substances. They are separate because of the difference in nature (rupa). Akasha is only the samwayi karan of Shabda. But space is not the samwayi karan of any object rather it is the nimitta karan of every effects. From these effects the knowledge of space is inferred. (Baldev Upadhyaya, p.226)

According to Vaisesika the nine substances, earth, water, fire, air, ether, time, space, self and manas have the genus of substance, produce effects inhering in them, possess qualities, are not destroyed by their causes and effects, and possess final particularities. The genus of substance inheres in them. They produce effects, which inhere in them. They are their inherent causes. They are endowed with qualities. But qualities are not inherent causes. Nor are they endowed with qualities. Substances are not destroyed by their causes and effects. (Jadunath Sinha, Indian Philosophy, P.422-423)

Space and Time have the generic qualities of number, magnitude, distinctness, conjunction and disjunction. They are the efficient causes of all effects. Particular causes produce particular effects in particular places and a particular times. They do not produce their effects in other places and at other times. So the time qualified by the particular causes and the space qualified by them are their auxiliary efficient causes.



The yarns are the material or inherent cause of a cloth. Their conjunction is its non-inherent cause. Time and Space qualified by the yarns are their efficient causes. If they were not so, the yarns would produce a cloth at any time and in any place. But particular causes never produce their specific effect at any time and in any place. No effect is produced independently of space and time. If an effect is produced in one place at a particular time, it is not produced in another place at another time. So space and time are the condition of the production of all effects as their abodes. A self also is an efficient cause of all effects which produce pleasure and pain in it according to its merits and demerits. But it is not their abode, whereas space and time are the efficient causes of the production of all effects as their abodes (adhara). (Jadunath Sinha, Indian Philosophy, P.426)

In realism of Nyaya-Vaisesika, where time is a substantial reality, where there is no element of subjectivity at any level, time defies logical analysis. Although they advance a priori arguments in support of the reality of time, they are averse to taking time as mind-dependent. Their arguments are a priori, because they are not based on empirical grounds which are the very basis of any realism. They establish the reality of time by conceptually analysing the ordinary linguistic usage of such words as past, present, future, succession, simultaneous, and non-simultaneous. They take time as the cause of the concepts of these temporal expressions, simply because we need time to

elucidate them. They are not at all ready to admit that these concepts are psychological in their origin. (Hari Shankar Prasad, p.546,547)

Both Nyaya-Vaisesika and Jainism talk of duration. They form the concept of duration on the basis of their experience of perceptual or specious present which ranges from one moment to a number of moments. Their notion of present is exemplified in the subsistence of an object, or a course of action like 'cooking' including its whole process. Then they conceive of the absolute and substantial time by extending the specious present in forward as well as backward direction to its extremity on both sides. They also conceive of absolute time as a substratum of the temporal relations, temporal properties, and temporal factors which we use in our ordinary language and which we have found to be psychological in origin. But, according to Prof. Hari Shankar Prasad, this shows that they admit time as a substantial reality and give its descriptions via temporal properties. This is clearly a non-empirical method. Moreover, their notion of duration is fundamentally fallacious, because in that case duration in empirical sense implies changelessness of reality which will then be timeless. Consequently, there will be no time in the absence of change; there will be no events, no happening, no process, no history, and ultimately no world. (Hari Shankar Prasad, p. 548) Actually for Nyaya-Vaisesika and Jainism, the fundamental existents are continuants which include everything like



substance and properties, particulars and universals, and so on. For them, momentary events are derived from the fundamental realities. Whereas for the Buddhists, the momentary events are fundamental and substance, etc. are derivatives. (Hari Shankar Prasad, p. 550)

The Samkhya did not admit the existence of any real time; to them the unit of Kala is regarded as the time taken by an atom to traverse its own unit of space. It has no existence separate from the atoms and their movement. The appearance of Kala as a separate entity is a creation of our budhi as it represents the order or mode in which budhi records its perceptions.

Within Samkhya-Yoga frame of reference, Purusa may be described as the pure subject or the transcendental consciousness which is formal, ontological ground of all conscious acts and experiencing. The pure subject is not the experience or the agent of any activity or willing. What then is the relationship of the transcendental subject (Purusa) which is, ontologically speaking, other than the world-involved subject (Buddhi-Ahamkara structure), to the temporal structuring of this world-involved subject? Within the Samkhya-Yoga framework time and temporal relations of past, present and future cannot, ontologically speaking, be grounded in pure-consciousness or the transcendental subject (Purusa) which is intrinsically non-temporal. Any attempt to locate the ontological, ground of temporal relations in the transcendental subject, which is essentially non-temporal, will imply the reduction of the

temporal dimensions of being to pure duration or, not endurance which is not a case of endurance, but will be a thorough past, present and future, or trans-temporal unity. In such an event one will have to face the question of how the temporal determinations can emerge from the unit (of pure consciousness) per se. It may be argued that a pre-supposed unit alone is the context in which the change or temporal determination can be grasped and understood. However, Samkhya-Yoga points out that only a unity which has a built-in structure and differentiation can account for temporal performance and temporal change. Prakriti is postulated as the realm of being which has such a structure. This indeed is precisely the point that emerges in our analysis of Samkhya-Yoga understanding of temporality. Within the Samkhya-Yoga frame of reference the subjectivity as the principle of I-ness is the ground of the ontological distinction of past, present and future (as my past, my present and my future) precisely because this principle has its objective reference point in Prakriti (the world) which is the ground of temporal permanence and change.

Kala in Nyaya-Vaisesika is regarded as a substance existing by itself. In accordance with the changes of things it reveals itself as past, present, and future. The Nyaya-Vaisesika conception of Kala is that of an all-pervading, partless substance, which appears as many in association with the changes related to it. (S.N. Dasgupta, p. 82, 83) Mahamahopadhyaya Umesh Mishra, History



of Indian Philosophy,(Vol one) 1st ed. Tirbhukti Publication, Allahabad, 1957

Generally speaking, in Indian thought, time is conceived statically rather than dynamically. The different Indian schools formulate the conception of time while dealing with the allied concepts of Being and becoming, change and causality, karma and rebirth, and so on. This is the reason that we find different conception of time in the Vedas, Upanisads, Puranas, and the various philosophical schools of SamkhyaYoga, Nayaya Vaisesika, Mimamsa, Vedanta, Jainism, and Buddhism. As the concept of time cannot be considered in isolation we find contextual reference to time where it is treated differently as real or unreal, subjective or objective, primary or secondary, physical or psychological, creator or created, interiorized or exteriorized, substantial or attributive, empirical or a priori, and so on.(Hari Shankar Prasad, p.537)

In Indian tradition we find the emergence of the principle of the samsara or rebirth and karma, an absolute rule of cause and effect applied to morality and ethics. These concepts have greatly influenced the world-view and thus are also the major cause of difference between early Vedic views and the thoughts which have emerged later on. Karma doctrine is in opposition to any concept which emphasizes the beginning of the universe as karma doctrine propounds the unending sequence of cause and effect in both directions. Buddhist doctrine of momentariness developed in reaction to the idea of man being at the mercy of time which

is implied in the doctrine of samsara.

Time is also considered as a unifying and coordinating principle which coordinates all experiences and their interpretations. This role of time led to the belief in its metaphysical reality, a reality which seems to be constitutive of our experience and thinking.

Works Consulted

1. Baldev Uapadhyaya, Bhartiye Darshan, Sharada Mandir, Varanasi, 1991
2. Dharendra Mohan Dutta, The Chief Currents of Contemporary Philosophy, Calcutta University Press.
3. G. C. Nayak & K. Bagchi, Philosophical Appraisal, Humanist Philosophical Foundation, Bhubaneswar, 2010
4. Hari Shankar Prasad, The Centrality of Ethics in Buddhism, Motilal Banarsidass Publishers Pvt. Ltd. Delhi, 2007
5. Jadunath Sinha, Introduction To Philosophy, New Central Book Agency, Calcutta, 1985
6. Jadunath Sinha, Indian Philosophy, Motilal Banarsidass Publishers pvt. Ltd. Delhi, 1999
7. Mahamahopadhyaya Umesh Mishra, History of Indian Philosophy,(Vol one) 1st ed. Tirbhukti Publication, Allahabad, 1957
8. P.B.Chatterji, Outlines of General Philosophy,(10 edition), Vol.I Calcutta, 1951
9. Russell, Problems of Philosophy, Oxford University Press, New York, 1964



प्रकृति से प्रेरित वैज्ञानिक आविष्कार

आदमी की सूक्ष्म दृष्टि ने पौधों एवं जंतुओं के विशिष्ट गुणों को समझा — परखा एवं अपनी आवश्यकता के अनुसार अनुसंधान किया। आधुनिक युग में जीव-जंतु पर आधारित अनुसंधान ने अत्याधुनिक खोजों की नींव रख दी है और यह काफी विस्तारित हो गया है एवं इसने विज्ञान की एक नई शाखा को जन्म दिया है जिसे बायोमीमेटिक्स कहते हैं।



डॉ० रमेश पाठक

विभागाध्यक्ष

जंतु विज्ञान विभाग

ए.एन.कॉलेज, पटना

पृथ्वी के पास अपनी उत्पत्ति के साथ वह सबकुछ था जो जीवों में पाया जाता है यथा जल एवं सभी तत्व पर धरती का अपने ऊपर किया गया सबसे बड़ा अनुसंधान जीव का निर्माण ही था। यही अनुसंधान आगे बढ़ा तथा पेड़-पौधे एवं जंतु बने। इन सबको अपने अनुकूल बनाने के लिए प्रकृति ने इनमें अनेको विशेषताएँ भर दिया। पौधों एवं जंतुओं की यही विशेषताएँ भविष्य में आदमी द्वारा किए गए अनेकों अनुसंधानों के आधार बने। आदमी की सूक्ष्म दृष्टि ने पौधों एवं जंतुओं के विशिष्ट गुणों को समझा-परखा एवं अपनी आवश्यकता के अनुसार अनुसंधान किया। आधुनिक युग में जीव-जंतु पर आधारित अनुसंधान ने अत्याधुनिक खोजों की नींव रख दी है और यह काफी विस्तारित हो गया है एवं इसने विज्ञान की एक नई शाखा को जन्म दिया है जिसे बायोमीमेटिक्स कहते हैं।

पतले से पतले जड़ को तोड़ना मुश्किल होता है। ऐसी डालियाँ जो तंतुओं से बनी होती हैं बहुत ही मजबूत होती हैं। बरगद की डालियों से लटकती जड़ों को पकड़ कर बच्चे झुला झुलते हैं। उनकी मजबूती का क्या कहना। यानि जो जितना

अधिक तंतुवत होता है वह उतना ही ज्यादा मजबूत होता है। आज का युग धातु यानि मेटल का युग है। लोहा, स्टील, शीशा इनका उपयोग हर तरह के निर्माण में होता है। इनके अलावा एक और पदार्थ जो आज के युग में महत्वपूर्ण हो गया, वह है प्लास्टिक। शोधकर्ताओं का ध्यान जब पौधों के तंतु यानि फाईबर की मजबूती पर गया तो उन्होंने इस गुण को पदार्थों में लाने के लिए अनुसंधान शुरू किया और अंततः सफल भी हुए और उसी का परिणाम है कि आज फाईबरस स्टील, लोहा, प्लास्टिक, शीशा बन गए जो अपने मूल रूप की अपेक्षा बहुत ज्यादा मजबूत हैं और निर्माण को पहले की अपेक्षा ज्यादा मजबूती प्रदान कर रहे हैं। फाईबरस धातुओं का उपयोग हवाई जहाज तक के निर्माण होता है।

एक जंतु समूह मौलस्का होता है जिसके अन्तर्गत स्क्वीड, लौलिगो, सिपिया इत्यादि आते हैं। ये समुद्र में पाये जाते हैं। इनमें स्याही की ग्रन्थी यानि इंक ग्लैंड पायी जाती है। यह ग्रन्थी इन जंतुओं के लिए सुरक्षा कवच का काम करती है। जब कोई दुश्मन इन पर आक्रमण करता है तो



ये स्याही की तेज धार पीछे की ओर फेंकते हैं। जितनी तेजी से ये स्याही पीछे फेंकते हैं उतनी ही तेजी से ये आगे बढ़ते हैं। वैज्ञानिकों की दृष्टि ने प्रकृति के इस अद्भुत कारनामे को देखा और समझा एवं जेट इंजन का आविष्कार किया। यह जेट प्रपल्सन का सिद्धान्त का ही देन है कि आज हमारे पास अत्याधुनिक विमान हैं। हमारे पास स्पेस सीप या सटल हैं जो हमें और हमारे उपकरणों को अंतरिक्ष में ले जा रहे हैं। हम



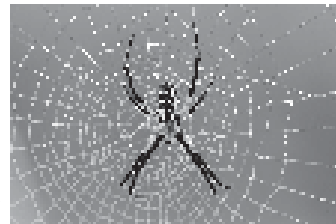
अंतरिक्ष की यात्रा कर रहे हैं।

प्रकृति ने चमगादड़ को एक विचित्र प्राणी

बनाया। वह चिड़िया की तरह उड़ता है और आदमी की तरह अपने बच्चे को दूध पिलाता है। यह रात में उड़ता है और रास्ता जानने के लिए आँख की जगह कान का प्रयोग करता है। अल्ट्रासोनिक आवाज जो हम नहीं सुन सकते वह चमगादड़ सुन सकता है। चमगादड़ एक अल्ट्रासोनिक आवाज निकालता है और वही आवाज पेड़-पौधों जैसे अवरोधों से टकरा कर लौटती है तो चमगादड़ उसे सुन कर अपना रास्ता तय करता है यानि आँख की जगह वह अपने कान का उपयोग करता है। इस क्रिया को एकोस्टिक विजन कहते हैं। आज मेडिकल साइंस में अल्ट्रासाउंड का प्रयोग शरीर के अंदर की बीमारियों का पता लगाने या फिर गर्भ में पल रहे बच्चे की स्थिति जानने में किया जाता है। टेल एवीव विश्वविद्यालय के नाथन इटेटर, टीम साईमन के साथ प्रयोग कर चमगादड़ को आधार

बना कर अल्ट्रासाउंड पद्धति को और विकसित कर सूक्ष्मतर स्तर पर बीमारियों का अध्ययन करने के लिए अनुसंधान कर रहे हैं। चमगादड़ के इस गुण को आधार बना कर होली बैट केन का इजाद किया गया। यह छड़ी दृष्टिहीनों के लिए बनायी गई है जिसमें अवरोध के पास आते ही कम्पन होने लगती है और उस व्यक्ति को पता चल जाता है कि सामने अवरोध है।

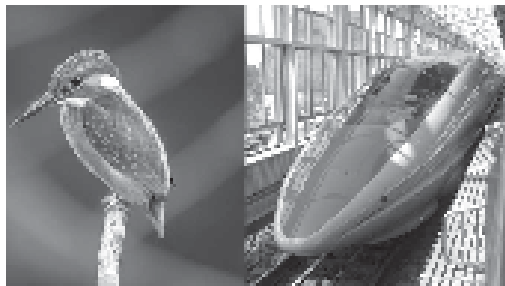
मकड़ा अपने शरीर से एक सिल्क की तरह का पदार्थ



निकालता है जिससे वह एक जाल बुनता है, अपने शिकार को पकड़ने के लिए। कार्प, लैंगर और उनकी टीम ने जब जाल के सूत्रों का अध्ययन किया तो उन्हें एक विचित्र बात का पता चला। उन्होंने पाया कि इन सूत्रों पर चिपकने और नहीं चिपकने वाले अलग-अलग हिस्से होते हैं। इससे फायदा यह होता है कि वे जितना आसानी से चिपकते हैं अतनी ही आसानी से अलग भी हो जाते हैं। सूत्रों के इस गुण के आधार पर इन वैज्ञानिकों ने आदमी के विभिन्न उपचार में आने वाले चिपकने वाले पदार्थ यानि एडेसीव बनाया जो किसी भी तरह के आकस्मिक स्थिति में उपयोग में आ सके। मकड़ा की एक और विशेषता उसके पैर हैं। वह बहुत आसानी से कहीं भी पहुँच सकता है, यहाँ तक की सँकरी से सँकरी जगहों में भी। वैज्ञानिकों ने मकड़े की तरह का रोबोट बनाया जो आसानी से पहाड़ों पर चढ़ सके एवं सँकरे जगहों में प्रविष्ट कर जाएं।



नाकाबु एक जापानी कम्पनी में इंजिनियर थे। जापान ने बुलेट ट्रेन बनाया तो उसमें कई तकनीकी समस्याएँ भी आयीं। जब ये ट्रेन किसी गुफा से गुजरती थी तो वायु के अवरोध से उसमें बहुत कम्पन होती थी जिससे बहुत ज्यादा आवाज होती थी जिससे यात्रियों को काफी परेशानी होती थी। एक दिन नकाबु का ध्यान कींगफिसर चिड़िया पर गया। उन्होंने देखा कि यह चिड़िया बड़े ही आराम से काफी ऊपर से डाइव लगती है। उसे न तो जल में, ना ही बाहर परेशानी होती है। कींगफिसर ने उन्हें बुलेट ट्रेन की समस्या का समाधान दे दिया और उन्होंने कींगफिसर की चोंच की तरह ही बुलेट ट्रेन के लिए 50 फीट लम्बा स्टील का कींगफिसर नोज बना दिया। इस तरह



आन्तरिक सतह को या कुछ चीजों की बाहरी सतह को सुपर स्लिपरी बनाया गया। इससे कई लाभ हुए जैसे सतह की स्वतः सफाई, पाइप में गंदगी का नहीं जमना, बोतल से सौस या किसी खाद्य पदार्थ का अंतिम बूंद तक बाहर निकल जाना, ठंडे प्रदेशों में पाइप में बर्फ का नहीं जमना इत्यादि।



एक बड़ी समस्या का समाधान हो गया।

एक मांसाहारी पौधा होता है जिसका नाम है नेपेन्थिस। इसकी पत्तियों की सतह बहुत ज्यादा चिकनी यानि सुपर स्लिपरी होती है। उसके इस गुण को ध्यान में रख कर पाईप एवं बोतलों की

मैपल एक पौधा होता है। इसके बीज में एक या दो पंख होते हैं। जब बीज पौधे से अलग होते हैं तो हवा के सहारे उड़ते हुए बहुत दूर चले जाते हैं। उड़ते समय इनकी गति सर्पिल होती है और इसके पंख इसमें बहुत सहायक होते हैं। इसकी इस विशेषता को ध्यान में रख कर ऐसा ही एक या दो पंखों वाला ड्रोण बनाया गया। यह ड्रोण अपनी जगह से सीधा ऊपर उठता है और फिर बहुत आसानी से किसी भी दिशा में सर्पिल गति से उड़ता है। यहाँ तक की जंगल-झाड़ में भी आसानी से कहीं भी चला जाता है। इससे विभिन्न तरह के डेटा इकट्ठा करने जैसे जंगलों का

पत्तियाँ सूर्य के प्रकाश को पकड़ने वाली सबसे सूक्ष्म रचनाएँ हैं। ये सूर्य के प्रकाश को पकड़ कर उसे कार्बोहाइड्रेट में बदलती हैं। वैज्ञानिकों ने उनकी संरचना का अध्ययन किया और उनकी आकृति का सोलर सेल बनाया जिसे गाँव के छोटे घरों पर लगा कर उनसे विजली पैदा कर घरों को रौशन करने का प्रयास किया गया।



विनाश, विलुप्त होते जीव, प्रदूषण इत्यादि में काफी मदद मिलती है।

पत्तियाँ सूर्य के प्रकाश को पकड़ने वाली सबसे सूक्ष्म रचनाएँ हैं। ये सूर्य के प्रकाश को पकड़ कर उसे कार्बोहाइड्रेट में बदलती हैं। वैज्ञानिकों ने उनकी संरचना का अध्ययन किया और उनकी आकृति का सोलर सेल बनाया जिसे गाँव के छोटे घरों पर लगा कर उनसे विजली पैदा कर घरों को रौशन करने का प्रयास किया गया।

वैसे तो विज्ञान की हर शाखा की व्यापकता, उसका कैनवास काफी बढ़ता जा रहा है, पर 21 वीं सदी जीव विज्ञान और कंप्यूटर विज्ञान का एक अनोखा संगम देखेगी। जैसा कि कहा जा रहा है कि यह सदी मुख्य रूप से जीव विज्ञान की सदी होगी। जीवों की कोशिका में पाये जाने वाले डी0

एन0 ए0 की एक विशेषता है कि वह स्वयं अपना प्रारूप तैयार कर लेता है। वह स्वयं एक से दो हो जाता है। जीवन संबंधी सारी सूचनाएँ उसके अंदर होती हैं। इस तरह वे सूचनाएँ भी द्विगनित हो जाती हैं। इसी तरह अगर कोई भी बाहरी सूचना या

जीवों की कोशिका में पाये जाने वाले डी.एन.ए की एक विशेषता है कि वह स्वयं अपना प्रारूप तैयार कर लेता है। वह स्वयं एक से दो हो जाता है। जीवन संबंधी सारी सूचनाएँ उसके अंदर होती हैं। इस तरह वे सूचनाएँ भी द्विगनित हो जाती हैं। इसी तरह अगर कोई भी बाहरी सूचना या आंतरिक सूचना किसी कोशिका को मिलती है तो कोशिका उसे आवश्यकता अनुसार हजारों, लाखों की संख्या में बदल देती है। कंप्यूटर वैज्ञानिक भी यही चाहते हैं कि कंप्यूटर के लिए बनाया गया कोई भी प्रोग्राम अपनी संख्या स्वयं बढ़ा ले और कई दिशाओं में एक साथ काम करे। इस तरह कंप्यूटर की क्षमता अभुतपूर्व ढंग से बढ़ जायेगी।

आंतरिक सूचना किसी कोशिका को मिलती है तो कोशिका उसे आवश्यकता अनुसार हजारों, लाखों की संख्या में बदल देती है। कंप्यूटर वैज्ञानिक भी यही चाहते हैं कि कंप्यूटर के लिए बनाया गया कोई भी प्रोग्राम अपनी संख्या स्वयं बढ़ा ले और कई दिशाओं में एक साथ काम करे। इस तरह कंप्यूटर की क्षमता अभुतपूर्व ढंग से बढ़ जायेगी।

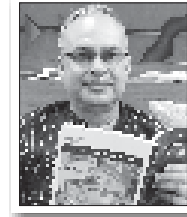
दीमक के घर से सिख ले कर वैज्ञानिकों ने घर के नये डिजाइन बनाए जिसको नीचे से भेंटीलेटेड किया गया। इससे फायदा यह हुआ कि गर्म हवा खिड़कियों से बाहर निकल जाती है। इसी तरह चींटी का अपनी वजन से ज्यादा वजन उठाने की प्रक्रिया हो या फिर जेको के पाँव, या फिर दूसरे प्राणियों की जीवन शैली, आदमी ने सबसे कुछ न कुछ अवश्य सिखा और उस पर अनुसंधान कर अपनी जीवन पद्धति में सुधार किया। यह बायोमीमेटिक्स भविष्य में अनेक वैज्ञानिक अनुसंधान का केन्द्र होगा तथा मानव

कल्याण के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाएगा।



कार्यालयीय भाषा एवं प्रशासनिक शब्दावली के प्रयोग

किसी विद्वान ने कहा है कि शब्द एक जादू है जो वस्तुओं को प्रकट और विलीन कर देता है। आईए हम इस जादू का प्रयोग करें। शक्ति अर्जित करें। जन मन की भाषा के माध्यम से जनगण की सेवा करें।



प्रो. कलानाथ मिश्र
हिन्दी विभाग
ए.एन. कॉलेज, पटना

रघुवंश' के आरम्भ में महाकवि कालिदास लिखित इस पंक्ति के साथ मैं अपनी बातों का आरम्भ करना चाहूँगा—

वागार्थविव सम्पृक्तौ, वागार्थ
प्रतिपत्तये

जगतः पितरौवन्दे पार्वती परमेश्वरौ।

अर्थात् शब्द और अर्थ उसी प्रकार से पृथक नहीं किया जा सकता है जिस प्रकार जगत के पिता शिव और माता पार्वती एक दूसरे के पूरक हैं। प्रकांड भाषा-शब्द शास्त्री डॉ. रघुवीर ने अपने प्रसिद्ध (‘कॉम्प्रिहेन्सिव इंग्लिश-हिन्दी डिक्सनरी’ की भूमिका में लिखा है—(Words and thought are unseparately connected.) शब्द और विचार एक दूसरे से इस प्रकार जुड़े रहते हैं कि उनको अलग-अलग नहीं किया जा सकता। विचार और शब्द, शब्द और अर्थ के इस अन्योन्याश्रय संबंध पर विचार करने से हमें हमारे चिंतन, उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम के साथ ही हमारे परिवेश, हमारी संस्कृति के बीच की एक अंतर्सम्बंध का पता चलता है। हमारी चिंतन प्रक्रिया जहाँ से आरम्भ होती है, हम सोचना सुरु करते हैं, वहीं से भाषा अपना काम सुरु कर देती है। भाषा है तो शब्द का होना अनिवार्य है। हमारी चिंतन प्रक्रिया मौलिक भाषा से

ही जन्म लेती है, आकार पाती है। फिर हम उसे चाहे जिस भाषा में रूपान्तरित कर अभिव्यक्त करें। किन्तु रूपान्तरण के क्रम में चिंतन की मौलिकता को बचाए रखना कठिन होता है। अतः हम अपने मिट्टी पानी की भाषा में जब अपनी बातों को रखते हैं तो वह अधिक प्रभावकारी होता है।

शब्द भाषा की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी है। शब्द अर्थवान होते हैं एवं पद तथा वाक्य में अर्थ देने वाले होते हैं। शब्द की परिभाषा देते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है— शब्द कर्ण से उपलब्ध, बुद्धि से ग्राह्य तथा प्रयोग से स्फुटित होने वाली आकाशवाणी ध्वनि है। भारतीय भाषा विज्ञान की भूमिका में प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा. भोलानाथ तिवारी ने भाषा की परिभाषा देते हुए कहा है — व्याकरणिक विनियोग के योग्य किसी विशिष्ट ध्वनि समूह के किसी विशिष्ट अर्थ के साथ संगम या संयोग को शब्द कहा जाता है।

शब्द में अर्थतत्त्व निहित रहता है। ‘प्रत्येक शब्द में अर्थ का कोई चित्रात्मक रूप या संकेत निहित रहता है। इस संकेत की प्रक्रिया मानसिक या बौद्धिक होती है। किसी वस्तु को देखकर उसकी चित्रात्मक रचना मानस-पटल



पर अंकित होती है। और इस तरह शब्द और अर्थ में पारस्परिक संबंध स्थापित होता है।

ध्वनियों का समूह शब्द है और उसे सुनकर हम जो समझते हैं वह अर्थ है। परन्तु यह व्यक्ति, परिवेश आदि पर निर्भर करता है। हर स्थिति में शब्द का कोई निश्चित अर्थ नहीं होता। शब्द के अर्थ का निर्धारण अनेक आधारों पर आश्रित है। यथा वक्ता, श्रोता, परिवेश, काल बोलने की शैली, लहजा। वक्ता कैसे बोल रहा है?; काकु और चेष्टाद्ध बोलने का प्रसंग। उदाहरणार्थ एक दो वाक्यों को देखें – ‘फमैने आपसे कहा था न।’ ‘बोलिए न चुप क्यों हैं?’ आदि। आम तौर पर ‘न’ का अर्थ नहीं के अर्थ में हम ग्रहण करते हैं पर यहाँ ‘न’ का अर्थ निषेध नहीं है। इसीलिए संस्कृत में एक उक्ति है **‘सर्वे सर्वार्थवाचकाः— अर्थात् सभी शब्द सभी अर्थों के वाचक होते हैं।’** किसी स्थान विशेष में कोई विशेष शब्द किसी विशेष अर्थ के रूप में स्थिर हो जाते हैं। स्रोत की दृष्टि से शब्दों के तत्सम, तद्भव, देशज, विदेशज आदि भेद हैं। अनेक विदेशी शब्दों को हिन्दी ने उदारता से अपने में पचा लिया है। फिर भी कार्यालय के कार्य सम्पादन में हमारे पदाधिकारी अंग्रेजी के जिन प्रशासनिक भाषा (शब्दों) का प्रयोग करते हैं उससे आज भी भारत के 90 प्रतिशत लोग परिचित नहीं हैं। प्रजातंत्र की यह एक अजीबोगरीब स्थिति है। प्रशासनिक सेवा या (सिविल सर्विस) **लोक सेवा के पदाधिकारियों को लोकोन्मुख होना चाहिए तभी वे समाज और राष्ट्र के प्रति सच्ची निष्ठा निभा पाएंगे। यही नहीं भारतीय भाषाओं में कार्य करने से उनकी कार्य दक्षता भी बढ़ती है और अधिक समाजोन्मुख भी हो पाती है।** अंग्रेजी से कोई टकराव नहीं है। अंग्रेजी को भाषा रूप में सीखना अलग बात

है किन्तु काम काज का माध्यम जब अंग्रेजी बनता है तो हम भारतीय आम नागरिकों के साथ न्याय नहीं कर पाते हैं।

शिक्षा मंत्रालय के द्वारा गठित एक विशेषज्ञ समिति ने अपने एक रिपोर्ट में टिप्पणी की है कि ‘शिक्षा के माध्यम में परिवर्तन तबतक नहीं होगा जब तक की आर्थिक, व्यावसायिक कार्यकलाप के विभिन्न क्षेत्रों में प्रशासन के भाषा में भी बदलाव नहीं आएगा।’

प्रशासनिक कार्यों में भारतीय भाषाओं के व्यवहार को सहज बनाने तथा उसमें एकरूपता लाने की दृष्टि से **वैज्ञानिक तकनीकी शब्दावली आयोग** ने प्रशासनिक शब्दावली का निर्माण किया है जो वै.त.श. के वेबसाइट पर भी उपलब्ध है। कई बार शब्दावलियों के निर्माण को लेकर शंकाएं जतायी जाती हैं। उसके द्वारा सुझाए गए शब्दों पर प्रश्न उठाया जाता है। एक दृष्टि जब हम शब्दों की व्युत्पत्ति पर डालें तो हमें आश्चर्य होगा कि अंग्रेजी के कई ऐसे शब्द हैं जिनका व्यवहार आज हम जिस अर्थ में करते हैं उसका वास्तविक मूल अर्थद्ध का आज के अर्थ अथवा उस काम से कुछ लेना देना नहीं है। केवल एक विशेष अर्थ में व्यवहृत होते रहने से वह शब्द चल पड़ा है। कभी-कभी कार्य करने के क्रम में अथवा संचिकाओं पर टिप्पणी लिखने के क्रम में हमें सहज ही उपयुक्त शब्द नहीं सूझता है ऐसी स्थिति में हम उससे मिलते-जुलते शब्दों का व्यवहार करते हैं। यह स्थिति हिन्दी और अंग्रेजी दोनों भाषाओं में लिखने समय उपस्थिति होता है ऐसी परिस्थिति में हम हिन्दी का ही व्यवहार क्यों न करें।

पंडित जवाहर लाल नेहरू ने कहा था कि यदि भाषा शक्तिशाली और जोरदार होती है तो उसको इस्तेमाल करने वाले लोग भी वैसे



ही होते हैं।

भारत में हिन्दी एक शक्तिशाली भाषा के रूप में उभरी है। और यह एक वैज्ञानिक भाषा है। इस भाषा की विशेषता यह है कि जो हम बोलते हैं वही लिखते हैं। अर्थात् कार्य के क्रम में जो टिप्पणी अथवा आदेश आप लिखते हैं उसका वही अर्थ ग्रहण कर कार्य किया जाएगा, उसका दूसरा अर्थ लगा पाना सहज नहीं है। आज बैंक भी हिन्दी में चेक लिखने को प्रोत्साहन देती है। इसका एक बड़ा कारण यह है कि हिन्दी में लिखे आकड़ों में फेर बदल करना कठिन है।

यह ठीक है कि कार्यालय की अपनी आवश्यकता, प्रवृत्ति और परम्परा होती है। आज हिन्दी उसके अनुरूप अपनी सामर्थ्य और क्षमता को विकसित कर चुकी है। कार्यालयी भाषा की कुछ विशिष्टताएं होती हैं। जिन पर हम संक्षेप में प्रकाश डालना आवश्यक समझते हैं।

पहली विशेषता जो कार्यालयी भाषा की होती है वह है **निर्वैयक्तिकता**। सरकार के निर्देशों के अनुरूप कार्य संचालन करवाने की जिम्मेवारी सरकारी पदाधिकारियों, कर्मचारियों पर होती है। किन्तु वे सरकार नहीं होते। इसीलिए सरकारी काम काज में संचिकाओं पर टिप्पणी लिखते समय वे विज्ञापनों में वैयक्तिक भाषा का प्रयोग नहीं करते हैं। अतः **कार्यालयी भाषा में निर्वैयक्तिकता का होना स्वाभाविक है उदाहरण के लिए—‘सर्व साधारण को सूचित किया जाता है।’ अथवा ‘इसे आवश्यक समझा जाए’, ‘ऐसा देखा गया है’, ‘आपको चेतावनी दी जाती है’ ;देता हूँ नहीं** आदि वाक्यों का प्रयोग होता है।

दूसरी जो विशेषता है वह संक्षिप्तता है। कार्यालयी भाषा में संक्षिप्तता की प्रवृत्ति होती है।

अतः कुछ निश्चित शब्दों के कुछ निश्चित अर्थवत्ता बन जाती हैं कभी-कभी एक ही संक्षिप्त शब्द पूरे वाक्य का अर्थ ध्वनित कर देने में सक्षम होता है—

यथा प्रस्तावित। स्वीकृत, अस्वीकृत, अनुमोदित, अनुमोदनार्थ, आवश्यक, अत्यावश्यक अथवा अनुच्छेद ‘क’ के अनुरूप। आदि संक्षिप्तीकरण की प्रक्रिया में कुछ संकेतिक शब्दों का भी व्यवहार होता है। जैसे प्रखण्ड विकास पदाधिकारी के लिए प्र.वि.प., उच्च श्रेणी लिपिक— उ.श्रे.लि., आकस्मिक छुट्टी— आ.छु., दैनिक भत्ता— दै. भ.।

कार्यालयी टिप्पणी में तथ्यों की पूर्णता और स्पष्टता होना अनिवार्य है। भाषा का एकार्थक होना आवश्यक है। इसके लिए भाषा की सरलता और बोधगम्यता जरूरी है। और यह हिन्दी के माध्यम से ही सम्भव है।

एक और गुण जो कार्यालयी भाषा का है वह **अभिध्यात्मकता** है। भाषा की अविद्या शक्ति का ही प्रयोग कार्यालयी कार्यों में होता है। लक्षणा और व्यंजना से अर्थ ग्रहण करने पर तो अनर्थ ही होगा। टिप्पणी ऐसी होती है कि संदेश प्राप्त कर्ता उसका वही अर्थ निकाल सके जो उसमें अभिव्यक्त है। टिप्पणी निरर्थक नहीं हो।

कार्यालयी भाषा के उक्त गुणों के लिए समुचित समर्थ शब्दों का होना अनिवार्य है। हिन्दी की प्रशासनिक शब्दावली इस दृष्टि से सम्पन्न है। हिन्दी ने विभिन्न स्रोतों से उदारता पूर्वक शब्दों को आत्मसात किया है। संस्कृत और भारतीय भाषाओं के शब्द तो हैं ही अंग्रेजी, उर्दू, फारसी, अरबी, तुर्की, पश्तो, फ्रेंच आदि भाषाओं के शब्दों के साथ ही हिन्दी ने अपने को काम काज की भाषा के



प्रयोग की दृष्टि से सहज सुगम बनाया है। दस्तावेज, जमानत, मुचलका, अमीन, हिरासत, हाकिम, दफा, मुकदमा, फ़ैसला, किताब, कलम, कागज, जैसे शब्द अरबी फ़ारसी से आए हैं। वहीं कैंची, चाकू, कुली, दरोगा, सुराग, आदि शब्द तुर्की से हिन्दी में आये हैं।

पश्तो अफगानिस्तान की भाषा है वहाँ के शब्द भी हिन्दी में पच गए। यथा मटरगश्ती, गुण्डा, गड़बड़, लुच्चा, खर्चाटा आदि। इसी प्रकार पुर्तगाली के कई शब्द हिन्दी में समाहित हुए यथा—आलमारी, आलपिन, इस्पात, गोदाम, चाबी, चाय, कापफी, गमला, तौलिया, पपीता, पावरोटी, पिस्तौल, बन्दूक, बाल्टी, बिस्कुट, बोटल, सन्तरा आदि।

कारतूस, कूपन आदि फ़्रेंच के शब्द हैं वही बम डच से आया है।

सिगार, सिगरेट, स्पेनी भाषा से।

ट्रेन, बैगन, सेमिनार आदि जर्मन से।

अब रिक्सा को ही लें। कितना सहज शब्द है, नाम उच्चारित करते ही रिक्सा मन के सामने आकर खड़ा हो जाता है परन्तु यह एक शब्द है। जापानी से हिन्दी में आया है।

अंग्रेजी की तो कोई बात ही नहीं। कहने का तात्पर्य है कि हम 'डच' नहीं जानते 'पुर्तगाली' नहीं जानते, 'फ़्रेंच' नहीं जानते पर उसके शब्दों का बखूबी, पफ़रार्टे से प्रयोग करते हैं। क्यों? क्योंकि हम उसका व्यवहार करते चले आए हैं। और हमारी भाषा ने उसे पचा लिया है। कार्यालय के काम काज में अंग्रेजी के प्रभाव स्वरूप हमने हिन्दी में काम करना बन्द कर दिया तो आज हमें ऐसा लगता है कि हिन्दी के शब्द, कठिन है। जबकि हम हिन्दी जानते हैं। इस प्रकार

अनजान भाषा के शब्द हमें सहज सरल लगने लगे और जानकार भाषा, अपने मिट्टी पानी की भाषा, अपने संस्कार की भाषा के शब्दों की कमी पर गई। इससे यह सिद्ध होता है कि हम जब शब्दों को व्यवहार करेंगे तो वे प्रचलित होंगे और जब शब्द प्रचलित हो जाएंगे तो स्वतः सहज और बोधाम्य लगने लगेंगे। यहाँ मैं साहित्य सम्राट प्रेमचंद का उल्लेख करना चाहूँगा।

प्रेमचंद ने कहा था कि जिस प्रकार तोता अपने मालिक की भाषा सीख लेता है। अर्थात् जब एक तोता यदि बंगाली के यहां है तो वह बंगला सीख जाता है और भोजपुर में भोजपुरी उसी प्रकार हम भी अपने मालिक की भाषा सीख गए हैं। प्रेमचंद ने एक और बात कही थी कि बाज, तोता तो मालिक की भाषा के इतना पारंगत हो जाता है कि वह टेंटे करना भी भूल जाता है। हमारी हालत भी कुछ ऐसी ही है। हम अंग्रेजों के गुलाम रहे तो उनकी भाषा सीख बैठे। स्वतंत्रता मिली पर मन की पराधीनता नहीं गई खास कर जो ऊँचे ओहदे पर बैठे हमारे अधिकारी थे वे अंग्रेजी ही लिखते रहे। दासता की भाषा। सत्ता की भाषा। अंग्रेजी में एक रोब दिखता है। हिन्दी तो सहृदयता की भाषा है आत्मीयता की भाषा है उसमें उन्हें वह रोब नजर नहीं आई।

किन्तु आज स्थितियाँ बदल रही है। हिन्दी ने अपनी सम्प्रभुता स्थापित कर ली है। एक बात यह कि राजभाषा नीति के अनुसार हिन्दी को बाध्यता न बनाते हुए अंग्रेजी के प्रयोग की भी छूट दी गई थी। किन्तु हिन्दी में काम करने से रोका तो नहीं गया था। पिफर कौन—सी ऐसी मजबूरी थी जिसके चलते हम अंग्रेजी का व्यवहार कार्यालय में करते रहे। अतः प्रश्न बाध्यता की नहीं प्रश्न मानसिकता की है। प्रश्न शब्दों



के कमी की नहीं प्रश्न इच्छा शक्ति की है।

हमें यह समझना होगा कि हिन्दी का प्रश्न केवल भाषा का प्रश्न नहीं है हमारी अस्मिता का प्रश्न है। प्रशासनिक कार्यों के लिए वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग ने अत्यंत उपयोगी 'प्रशासनिक शब्दावली' का निर्माण किया है जो आयोग के वेब साइट - www.csstt.nic.in पर उपलब्ध है। यह शब्दावली अंग्रेजी से हिन्दी तथा हिन्दी से अंग्रेजी दोनों रूपों में उपलब्ध है। अपनी ग्रहण क्षमता के कारण यह शब्दावली अत्यंत लोकप्रिय भी सिद्ध हुआ है। कुछ शब्दों का उदाहरण यहाँ देखा जा सकता है—

अब एक शब्द का व्यवहार प्रशासन में किया जाता है 'पैज' जिस संचिका को पूर्णतः बन्द न कर उसे यथावत छोड़ दिया जाता है। ऐसे में हम कहते हैं फाइल 'फ्रिज' कर दिया गया। यहाँ 'फ्रिज' का अर्थ हम 'हिम' से लगा सकते हैं। यहाँ 'जड़ी भूत' शब्द अधिक उपयुक्त होता है। जड़ अवस्था में संचिका पड़ी हुई है। अर्थात् संचिका को जड़ी भूत अवस्था में रख दिया गया। जिन शब्दों का समुचित हिन्दी तत्काल नहीं मेलें उसके लिए देवनागरी में अंग्रेजी के उस शब्द का भी व्यवहार किया जा सकता है।

वस्तुतः आधुनिक शिक्षित भारतीयों के मस्तिष्क में अंग्रेजी भाषा गहरी जड़ जमा ली है। हमें अंग्रेजी शब्दों के व्यवहार करने से स्वयं के आधुनिक होने का बोध होता है। उधर की भाषा पर उधर के शब्दों पर हम यदि गर्व अनुभव करते हैं तो यह हमारी गुलामी मानसिकता का ही द्योतक है।

परिस्थिति तथा वक्ता की आवश्यकता के अनुसार शब्दों के तात्पर्य को समझना तात्पर्याख्य कहलाता है। कहने वाले का तात्पर्य क्या है

यह जानकर और उसके अनुसार हम अर्थ ग्रहण करते हैं। इस दृष्टि से भारतीय भाषाओं के शब्द अधिक उपयुक्त सिद्ध होंगे क्योंकि उस शब्दों में हमारा परिवेश हमारे मिट्टी पानी का गंध सन्निहित है। भारतीय चिंतन में पाण्णी और पातंजलि काल की अवधारणा भी यही है।

जिस प्रकार आवश्यकतानुसार भाषा में परिवर्तन होता है उसी प्रकार शब्द में भी परिवर्तन होता है और आवश्यकतानुसार नए शब्द स्थान ग्रहण करते हैं। प्रचलित होते हैं। हम यदि हिन्दी के शब्दों का व्यवहार नहीं करेंगे तो शब्दों का लोप होगा और शब्द हमें दुरुह लगने लगेंगे। शब्दों की भी विकास यात्रा होती है। प्रत्येक विषय के विकास में कहीं-कहीं तत्संबंधी उपयुक्त शब्दावली का भी विकास होता है।

यहाँ निर्मल वर्मा जी का एक कथन मैं उद्धृत करना चाहूँगा— 'भाषा मनुष्य की देह का अदृश्य अंग है, जो उसे आत्मदृष्टि देता है। भाषा और आत्मबोध का यह संबंध मनुष्य को समस्त जीव जंतुओं से अलग, एक अद्वितीय श्रेणी में ला खड़ा कर देता है। किसी भी संस्कृति की पहचान महज उसके यथार्थ तक सीमित नहीं रहती, वह अपने स्वप्नों द्वारा भी अपनी विशेषता उजागर करती हैं, इसीलिए उनकी बनावट में भाषा का इतना महत्वपूर्ण योगदान है।'।

भारतीय भाषा विज्ञान में शब्द अपने वाक्यात्मक अर्थ से भी भी एक लघुतर भाषिक इकाई के रूप में प्रयुक्त हुआ है। यह वाक्य से स्वतंत्र तो है पर इसका बीज रूप भी है। किसी विद्वान ने कहा है कि शब्द एक जादू है जो वस्तुओं को प्रकट और विलीन कर देता है। आईए हम इस जादू का प्रयोग करें। शक्ति



‘जीवनचर्या का मार्मिक पाठ है जिन्दगीनामा’ : कृष्णा सोबती

‘जिन्दगीनामा’ जिन्दगी के गहरे बुनियादी लगावों का मार्मिक आख्यान है। दूध भरी छातियों से अब दूध नहीं खून टपकता है—कहने का कुछ अर्थ तो है जो अतीत मोह या नास्टेल्लिया से मुक्त करता है। जीवन मर्म की सार्थक अभिव्यक्ति है ‘जिन्दगीनामा’।



डॉ० कृष्णा सिंह

हिन्दी विभाग, ए.एन.कॉलेज

अ दम्य जिजीविषा और रचना जीवट के लिए प्रसिद्ध हिन्दी की सबसे वयोवृद्ध रचनाकार कृष्णा सोबती का निधन हिन्दी कथा साहित्य की एक धारा का अंत है। नारी-स्वतंत्रता की मुखर पक्षधर, मशहूर साहित्यकार, हिन्दी की सबसे वोल्ड कही जानेवाली लेखिका कृष्णा सोबती 25 जनवरी 2019 को 93 वर्ष की उम्र में विदा हो गई। लेखन के जरिए खुद से संवाद को महत्व देने वाली लेखिका ने एक व्यक्तिगत साक्षात्कार में स्वीकारा है—“स्त्री जब स्त्री के बारे में, उसकी स्वतंत्रता, अस्मिता, समान अवसरों और अधिकारों के बारे में लिखती है तो व्यवस्था के लिए खतरे पैदा करती है” मैंने अपने जीवन में जो सिद्ध किया वह मेरी स्वायत्तता है, लेकिन इसके लिए मुझे बहुत बड़ी कीमत चुकानी पड़ी है। ‘हम हशमत’ में उनके अनुभव हैं कि ‘मित्रों मरजानी’ की मित्रों का व्यक्तित्व उनसे जोड़कर देखा जाने लगा, ‘यारों के यार’ के बाद बातचीत करते लोगों को बोलचाल में गालियों के नगीने का इंतजार रहने लगा और ‘सूरजमुखी अंधेरे के पुरुष-पात्रों को उनके आस-पास खोजा जाने लगा। पुरुष लेखन के साथ ऐसा नहीं होता।

किसी युग, किसी भाषा में विरल रचनाकार हीं

ऐसे होते हैं जिनकी रचनाएँ साहित्य और समाज में घटना की तरह प्रकट हैं। ‘जिन्दगीनामा’ की रचनाकार कृष्णा सोबती ऐसी ही विरल लेखिका हैं जिन्होंने अपनी भावात्मक उर्जा, कलात्मक उत्तेजना के लिए प्रबुद्ध पाठक वर्ग को सदैव आश्वस्त किया है।

‘जिन्दगीनामा’ महाकाव्यात्मक उपन्यास है जिसके लिए सोबती जी को 1980 में साहित्य अकादमी पुरस्कार मिला था, जिसे उन्होंने असहिष्णुता के विरोध में साहित्यिक विरादरी की ओर से आवाज उठाते हुए वापस कर दिया था।

‘जिन्दगीनामा’ उपन्यास के आरम्भ में कृष्णा सोबती ने कविता के से टुकड़ों में कुछ संकेत दिए हैं—

इतिहास/जो नहीं है
और इतिहास/जो है
वह नहीं है
जो हुकूमतों की
तख्तगाहों में
प्रमाणों और सबूतों के साथ
ऐतिहासिक खातों में दर्ज कर
सुरक्षित कर दिया जाता है।
बल्कि वह
जो लोकमानस की



भगीरथी के साथ-साथ
बहता है।

पनपता और फैलता है
और जन सामान्य के
सांस्कृतिक पुख्तापन में
जिन्दा रहता है।

जन सामान्य का सांस्कृतिक पुख्तापन यह
वह मुख्य बीज सूत्र है, जिसे पूरे उपन्यास में जड़े
फैलाते देखा जा सकता है। आरम्भिक कविता की
सी पंक्तियों में उपन्यास के जीवन मर्म का
पूर्वाभास मौजूद है—

कहाँ गलबहियों सी / उमड़ती / मचलती /
दूधभरी / छातियों सी / चनाव / और
जेहलम / की / धरती / माँ / बनी / कुरते / के /
बंद / खोलती / दूध / की बूँदे / ढरकाने / को.....
और कहाँ—दूध / भरी / छातियों / से / अब /
दूध / नहीं / खून / टपकता / है!

समय और इतिहास का बीतना—बदलना
अनिवार्य नियम है। वह क्या जिसे भूला देना अच्छा
और वह क्या जिसे स्मृति से वर्तमान में और
वर्तमान से भविष्य में बचाकर रखना मानवीय
जिजीविषा की सार्थक पहचान है। कृष्णा सोबती
दोनों में फर्क पाती है। वे शिल्प सजग है पर यह
उनकी सीमा नहीं। 'जिंदगीनामा' में वर्णन और
बिम्ब का साख एक पूरे अंचल की जीवन पद्धति,
लोक रीति, मानवीय संबंध, राग और आसक्ति को
प्रत्यक्ष करने वाला है। एक अंचल की कथा को
जगह—जगह सृष्टि कथा के अभिप्राय से जोड़ने
की युक्ति अकारण नहीं है। स्त्री—पुरुष,
सृष्टि—रुख, भू—लोक, आकाश, अग्नि।
लोक—सामान्य जीवन व्यापार में निहित किसी
गहरे जीवन मर्म की पहचान अंतर्दृष्टि के अभाव में

सम्भव नहीं है। जातीय गौरव के इस आख्यान में
शाह परिवार को जरूर ही महिमामंडित किया गया
है पर यह महज सामंती संस्कृति का गौरव गान
करने वाला उन्हास नहीं है, वह हर दिन की जीवन
चर्या का एक ऐसा मार्मिक पाठ है जिसे गहरे
जीवनधर्मी लगाव का सच्चा प्रमाण मान सकते हैं।
सूत कातने और गाने से लेकर अर्थमय
हास्यविनोद तक स्त्री संवेदनाओं की यह बड़ी
पूँजी गहरी जीवनशक्ति का ही प्रमाण है।
आंचालिक भाषा, बोली—बानी, मुहावरों में यह
संवेदना ऐसी रची—बसी है कि वही यहाँ समग्र
कथा रस का पर्याय बन गयी है।

'जिंदगीनामा' में एक और जीवन की स्वीकृति
का सहज रंग है—सहज जीवन राग—जो वर्गों और
श्रेणियों के भेद को धुंधला कर देता है या मिटा
देता है। शाहनी पुत्र लाली को दीक्षा दी जा रही है
कि सभी वर्गों और श्रेणियों में उसके पूज्य जन हैं
जिन्हें आदर देना और जिनसे आशीष प्राप्त करना
ही उसे गौरव देने वाला है। दूसरी ओर साहों का
प्रच्छन्न आतंक स्मृति से वर्तमान तक छाया हुआ
है। शाह गणपत ने चाची महरी को उसके पति के
घर से ही उठा लिया था क्योंकि वह उसे पसंद आ
गई थी।

'तन—बदन की मीठी आँच' कहकर इसी
आतंकपूर्ण अपहरण को कहीं छूट देने की मंशा तो
नहीं है। कृष्णा सोबती से यह सवाल अक्सर किया
जाता रहा है और उनके पास कोई प्रबल
विश्वसनीय बचाव तर्क नहीं है। राबयों के रूप
सौन्दर्य का विस्तृत वर्णन है पर उस पर किसी प्रेमी
की निगाह पड़ी ही नहीं। 'अराइयों की धियों' के
रूप ऐसा कि देख रेख तिरस मिटे जी की। यही
रूप फतेह में वह प्रेमोन्माद जागता है कि शेर और



वह एक दूसरे के लिए तड़पते दिखते हैं पर राबयां का रूप जैसे एक कल्पनानीत विस्मयकारी घटना है जिसे प्रेम या विवाह से कुछ लेना-देना नहीं है। चाची महरी के इस कथन में क्या अर्थ छिपा है—‘बस री, तू शादी ब्याह से परे! तू इन सबसे अनोखी’। जैसे राबयाँ को सम्हालकर रखा जा रहा है अंतिम प्रसंग के बड़े शाह के स्वतः स्फूर्त वरण के लिए। अनाघात। अक्षत। शाहनी का मन भी कहीं चंचल होता है इस रूप से। पर हर बार शाह जी की निगाह में उभरते उसके रूप पर एक दार्शनिक आध्यात्मिक आवरण सा डाल दिया जाता है।

शाहों के आतंक, शोषण, अन्याय, अत्याचार के किस्से कम नहीं हैं पर शाहनी जैसा कोई प्रभामण्डल उन सबको सुरक्षा देने वाला है। तारेशाह—बरकती—प्रसंग अलग ही उदाहरण है। तारेशाह का विधवा बरकती को उठा लेना और बरकती के भाईयों का भयानक हमला। यानी, शाहों के आतंकप्रद प्रभामंडल को चुनौती देने वाले सर भी हैं। पर दबे-दबे।

शाहों की सामंती व्यवस्था में सब कुछ सुन्दर, प्रीतिकर और मानवीय ही नहीं है। जो है वह बीतने वाला है। एक दिन उसकी स्मृति हीं शेष रहेगी। कृष्णा सोबती जिसे गौरवान्वित कर रही हैं, उसके एक दिन लुप्त हो जाने का खतरा है। यह करुण भाव भी उपन्यास की संगीतिक लय में मौजूद है। ‘जिन्दगीनामा’ चक्राकर गति वाला उपन्यास है। सृष्टि कथा की मिथकीयता, मुगलकाल और ब्रिटिस सत्ता की ऐतिहासिकता और संस्कृति का वह सघन लोक रंग, जिसमें श्रृंगार, कौतुक, विनोद, राग सब कुछ समाया है—इस उपन्यास को संगठित करते हैं।

‘जिन्दगीनामा’ में ब्योरे बहुत हैं पर मुख्य कथावृत्त सीमित है। ताराशाह—बरकती। चाची महराँ—गणपतशाह। फतेह—शेरा। राबयाँ—बड़े शाह। इनके बीच की प्रेम—कथाएँ। कथा के समूचे परिदृश्य में कत्ल और अपहरण के कई किस्से हैं दंगे—फसाद आम हैं। सौताँ से डाह या जलन की कई कहानियाँ हैं। हबीबा और रेशमाँ जैसी सहेलियों का खिलंदड़ापन/नूरी और शीरी/विधवा ब्राहमणी और अवैध मातृत्व/नट कंजराँ के खेल—तमाशे/अवैध प्रेम में भी मर मिटने की उमंग/प्लेग की महामारी/ गदर—विप्लव/अंग्रेजी सत्ता का दमन—चक्र। प्रकृति का प्रकोप। अन्धविश्वास। आर्यसमाज का बढ़ता प्रभाव। कहीं यह मनोविज्ञान भी, कि मर्द बच्चे को हजार तरह की छूट, स्त्री को नहीं। सारी चेतावनी उसी के लिए—“तू घी ध्यानी धरती”। कृष्णा सोबती के लिए जीवन—मर्म ऐसी तमाम चेतावनियों से बड़ा है। ‘मित्रो मरजानी’ से ‘जिन्दगीनामा’ तक उनका लेखन कृत्रिम नैतिकता की धज्जियाँ उड़ानेवाला है। यहाँ भी उनकी निगाह जिन्दगी पर है—ऊँच—नीच से परे, वर्जनाओं से हटकर, डर और आतंक से अलग। ‘जिन्दगीनामा’ जिन्दगी के गहरे बुनियादीं लगावों का मार्मिक आख्यान है। कृष्णा सोबती ने शाह—परिवार की जीवन—शैली को गहरे मोह से अंकित किया है पर वे इस भ्रम में नहीं है कि यह सारा ठाठ ऐसे ही रह जाने वाला है।”। दूध भरी छातियों से अब दूध नहीं खून टपकता है—कहने का कुछ अर्थ तो है जो अतीत मोह या नास्टेल्लिया से मुक्त करता है। जीवन मर्म की सार्थक अभिव्यक्ति है ‘जिन्दगीनामा’।

●



Cooking Chemistry and Carcinogens

The highly processed /heated stuff tend to be more dangerous, including potato chips, French fries, commercial breakfast, grilled meats, fast foods, etc.



Dr. Tripti Gangwar

Prof., Dept. of Chemistry
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

Higher cooking temperature can create chemical reactions among amino acids, creatines and sugars reactions that may produce dangerous compounds which can damage DNA.

Cooking Creates Chemical Compounds:

1) Heterocyclic Amines (HCAs) and Polycyclic Aromatic Hydrocarbons (PAHs):

HCAs are made when creatins and aminoacis (both found in meat) react together in heat. PAHs include over 100 different compounds formed by the incomplete burning of organic matter at temperature higher than

392 °F. Thus raw food does not have HCAs nor PAHs. Most concentrated sources include grilled/charred meat and fish. However ready to eat commercial breakfast cereals, processed carbohydrates, fats and oils and tobacco smoke also contain high amount of PAHs. PAHs in vegetables and fruits occur mostly due to environmental contamination of air and soil.

Four factors influence HCAs formation:

- o Type of food o Cooking method
- o Temperature o Cooking duration

PAHs formation is influenced by:

- o Temperature of cooking
- o Duration of cooking
- o Type of fuel
- o Distance from heat source

o Fat content of the food

Essentially, the hotter and longer a meat is cooked, the more HCAs and PAHs. Direct heating methods like frying and grilling produce more than direct heat methods like stewing, heating or poaching. Studies estimating the take of HCAs show an average 26ng/kg bodywt/day.

Why Should We Worry About Them:

HCAs are on official list of cancer causing agents published by NIH. There are 17 different HCAs have been identified. Intake of pickled, smoked, barbecued and processed meat is more related to cancer risk than total red meat intake alone. Other dense protein foods (milk, eggs, legumes, organ meats) have very little or no HCAs content naturally or when cooked.

What Can We Do About Them:

Changing our cooking methods. Opt for slower, indirect-heat methods of cooking. Consumption of more raw plants in our diets. HCAs and PAHs can be removed from the body via detoxification in the liver.

2) Advanced Glycation End Products (AGEs):

When we slap a burger on the grill and char it up good, pop a slice of bread into a



toaster or roast a marshmallow while camping, we are creating a reaction that lowers the nutritional value and create toxic/carcinogenic end products, including advanced glycation end products also known as glycotoxins. AGEs can be created in our body with aging and high blood sugar.

But we also eat AGEs. Adding dry heat to cooked food can increase that food's AGE content by 10 to 100 times. But AGEs can be produced by pasteurizing, drying, smoking, frying, microwaving and grilling. Diets with raw food typically contain minimal AGEs.

Why Should We Worry About Them:

Fewer AGEs circulating in our body means a lower risk of diseases like Alzheimer's, kidney, cardiovascular and diabetes.

AGEs contribute to:

- o Inflammation
- o Kidney damage
- o Neurodegenerative disease
- o Muscle loss
- o Insulin resistance
- o Oxidation
- o Alteration in cell receptors

It has been reported that 10% of dietary AGEs are absorbed and of this 10%, about 1/3 are excreted in the urine within three days.

What Can We Do About:

AGEs are ubiquitous and addictive, since they provide flavor to foods. But they can be controlled through simple methods of cooking, such as keeping the heat down and the water content up in food and by avoiding pre-packaged and fast foods when possible.

3) Acrylamide:

Acrylamide is another one type of toxic Maillard reaction end products, forming when asparagine reacts with naturally occurring sugars in carbohydrate/low protein foods subject to high cooking temperatures.

Reaction starts at 248° F. Most food that contain acrylamide are cooked commercially like French fries, potato chips, breakfast cereals, crackers, pastries, coffee etc. Diets rich in baked or fried home cooked food contain larger amount of acrylamide which excludes animal products and raw plants.. we can also inhale or absorb this stuff. Acrylamide is also found in body lotions, tobacco smoke, human breast milk (if mother is ingesting acrylamide).

Why Should We Worry About:

Acrylamide is considered as probably carcinogenic. Still, results from human studies indicate that ingestion at current levels fails to produce any measurable neurotoxicity or increase in cancer risk.. WHO recommended that adequate margin of safety at 1-4µg/kg bodyweight over a lifetime for humans.

What Can We Do About:

It is best to limit exposure err on the side of caution. The highly processed /heated stuff tend to be more dangerous, including potato chips, French fries, commercial breakfast, grilled meats, fast foods, etc.

When preparing food, consume items that are boiled, steamed, sprouted, fermented or poached. Reduce carcinogens by doing following:

- o Use leaner meats
- o Use an acidic marinade for meats
- o Use lower temperature and moist heat
- o Don't overcook
- o Include raw plants, vegetables in diet.

It would be impossible to eliminate all carcinogens in food, however high temperatures can create harmful compounds, it can also destroy harmful compounds.



स्त्री विमर्श / नारीवाद और जेंडर

“वो आवाजें जो अपनी जगह नहीं बना पाती जो अपनी चिंताओं को प्रस्तुत नहीं कर पाती हैं! वे वास्तव में सीधे सीधे दबाई नहीं जाती बल्कि बे जटिल सामाजिक सत्ता के संबंधों में उलझी होती हैं”



प्रो. विजय कुमार

राजनीति शास्त्र विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

स्त्री विमर्श एक जटिल सामाजिक परिचर्चा है। इस चर्चा के संबंधों में यह कहा जाता है की इस तरह के प्रश्नों पर स्त्री ही विचार कर सकती है, क्योंकि यह प्रश्न पितृसत्ता से जुड़ा है जिसका संवाहक पुरुष है। एक लेखक या समाजशास्त्री मनुष्य की दृष्टि से इस प्रश्न को उठा सकता है ऐसा समझकर मैं आपके सामने इस विषय पर अपना विचार रखना चाहता हूँ। महान ग्रंथ महाभारत जो ३१०० ईशा पूर्व वेदव्यास के द्वारा लिखी गयी और रामचरित मानस जिसकी रचना बाल्मीकि ने ५ वीं सदी ईशा पूर्व में किया था को लीजिए हमें अनेक स्त्री पात्र दिखाई देते हैं। महाभारत में भीष्म अपने भाई के लिए काशी नरेश की बेटियों को जीत कर अम्बिका और अम्बालिका रख ली गयी परन्तु अम्बा को उसके प्रेमी सत्व को लौटा दिया गया जिसे न भीष्म ने न प्रेमी सत्व स्वीकारा। माता कुंती जो अपने पुत्र कर्ण को अपना न सकी। अपने पति पाण्डु के लिए अपनी शक्ति से देवताओं का आह्वान कर तीन पुत्र प्राप्त किये और फिर पाण्डु की दूसरी पत्नी माद्री ने देवताओं का आह्वान कर दो पुत्र प्राप्त किए। पाण्डु के मृत्यु पर माद्री उनकी चिता पर सती हो गई और कुंती अपने पुत्रों के लालन पालन करते हुए हस्तिनापुर आकर रहने लगी। अर्जुन द्रौपदी को स्वम्बर में लक्ष्य भेद कर जीत कर लाये पर माता के आदेश पर उसे पाँच पांडवों की पत्नी बनी। सभी पांडव की अपनी

अपनी पत्निया भी थी। गांधारी हैं जिन्हें बलपूर्वक गांधार के पराजित राजा से अंधे धृतराष्ट्र के लिए लाया गया। पांडव और कौरव की बहने हैं जो नेपथ्य में ही। उसी तरह उनकी बेटियाँ।

रामचरितमानस में जिसमें त्रेता युग के राम की कथा है। इसमें राजा दशरथ की चार रानियां हैं जो दशरथ के मृत्यु के बाद विधवा का जीवन बिताती हैं, कैकयी हैं जो राजा को विवश करती हैं राम को वनवास भेजे जाने के लिए मंथरा है जो करीब करीब क्रीत दासी है परन्तु सत्ता का महत्व जानती है। सीता है जो राम की अनुगामिनी हैं, लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला माताओं की सेवा के लिए घर में रहती है, सूर्यनखा है जो राम और लक्ष्मण के रूप पर मोहित होकर प्रणय निवेदन करती है और अपनी नाक कटवा बैठती है मंदोदरी है जिसके मन्तव्य की अवहेलना करता है राजा लंकापति मारा जाता है।

भगवान बुद्ध ने ब्राह्मण धर्म की बहुत सी बातों का विरोध किया उन्हें बीमार, वृद्ध और मृत्यु का दुःख उद्घेलित करता है। मुक्ति का मार्ग खोजने जब वे निकलते तब आधी रात को उनकी नींद खुली देखा रंगमहल में औरतें लाशों की तरह पड़ी हैं। पत्नी अन्तः पुर में, उनकी और पीठ किया और चल दिए ज्ञान की खोज में। ज्ञान प्राप्त करने के



बाद न तो ज्ञान की बातें से उन्हें भोजन देकर मरने से बचाने वाली सुजाता को उपकृत किया न जब वापस पुत्र को ले जाने आये तब यशोधरा को।

वैसे तो संसार के जन्म के साथ स्त्री पुरुष सम्बंध और परिवार का जन्म हुआ है हिंदुओं में परिवार की कल्पना मनुष्य जन्म से पूर्व देवों एवं देवलोकों में भी है। ब्रम्हा ने जब मनुष्य बनाई तब उसके लिए स्त्री भी बनाई यह प्रतीत होता है की उसके स्वतंत्र अस्तित्व की कोई कल्पना नहीं की पर सभी धर्मों में मान्यता है स्त्री बच्चे को जन्म देने, बच्चों और पुरुष की सेवा करने के लिए पुरुष की सहचरी बनाई गयी। मनुष्यों के जन्म से पूर्व भगवान विष्णु को सागर में सोते और पत्नी लक्ष्मी को उनकी सेवा करते दिखाया गया है इन्द्र अदि की कथाओं के विस्तार में जाने की आवश्यकता नहीं है। सिर्फ हिंदुओं में ही नहीं ईसाईयों के यहाँ भी जो कथा बुक ऑफ जेनेसिस में है कहती हैं की भगवान ने आदम के लिए इव को बनाया और स्त्री के द्वारा वर्जित फल खाने के लिए प्रेरित कर स्वर्ग से धरती पर भेजे जाने के लिये कलंकित हुई। परन्तु कैथोलिक चर्च ने स्त्री के लिए पुजारी बनना भी वर्जित रखा। इस्लाम तो दास स्त्री और और युद्ध में जीती स्त्रियों को पुरुषों का गुलाम ही बना डाला।

स्त्रियों की जिस स्थिति के दर्शन इन लोक कथाओं में दीखता है जो आदि काल से हजारों वर्षों तक बनी रही जिसने स्त्रियों को घर के अंदर जनम देने लालन पालन करने पुरुष और बच्चों की सेवा करने एवं गृह कार्य में लगा दिया गया और उसी के लिए तैयार किया गया। जिन स्त्रियों ने सम्पूर्ण मानवजाति को अपने गर्भ में पाला है सामाजिक उत्पाद में उनके साथ न्याय नहीं हुआ। मानव परिवार में स्त्री ने जो स्थान प्राप्त किया वह

समता और साहचर्य पर आधारित नहीं होकर पुरुष का पक्षधर और पितृ सत्तात्मक दीख पड़ता है। इस सामाजिक श्रम विभाजन ने उनकी स्थिति को दोयम बना दिया इसी सामाजिक स्थिति को पितृ सत्तात्मक या पुरुष प्रधान समाज कहते हैं सभ्यता के आरम्भ से मनुष्य परिवार में रहता आया है परन्तु मिथक और मान्यताओं को देखें तो पाएंगें की आरम्भ से पुरुष, स्त्री को सहचरी नहीं बल्कि उसका रक्षक और स्वामी ही रहा।

परिवार में पत्नी के अलावा औरतों को हासिये पर रखे जाने और परिवार के बहार स्त्री की कोई पहचान न होने के कारण स्त्रियों के लिए विकल्प और भी कम हो गए। श्रम विभाजन ने स्त्रियों को घरेलू कार्य बच्चों के लालन पालन तक सीमित कर दिया गया घर के बहार के कार्यों को पुरुषोचित माना गया।

हम देख पाते हैं कि स्त्रियों ने अपनी इस स्थिति के प्रति कोई उग्र विरोध हजारों वर्षों से नहीं किया न ही न पुरुषों ने अपनी मानसिकता पिछली शताब्दी तक बदली। हाँ भारत में और यूरोप में यदा कदा व्यक्तिगत रूप से परिस्थिति के प्रति असंतोष प्रगट किया गया। १७वीं शताब्दी में गौरवशाली क्रांति १८ वीं शताब्दी की अमरीकी क्रांति और फ्रांस की क्रांतियों ने अन्तोगत्वा मनुष्य के स्वतंत्रता समता और लोकतान्त्रिक अधिकारों को यूरोप में स्थापित किया तब जाकर लोगों का ध्यान स्त्रियों की स्थिति की ओर गया स्वयं स्त्रियों ने भी इस ओर ध्यान देना शुरू किया विश्व इतिहास की अनवरत यात्रा जारी है, जिसमें अलग-अलग युगों में अलग-अलग भूभाग अलग-अलग समुदाय का विकास क्रम भिन्न भिन्न रहा हैं। यूरोप पुनर्जागरण (रिनेसां), प्रबोधन (एज ऑफ



एनलाइटेनमेण्ट) और पूँजीवादी जनवादी क्रान्तियों का रंगमंच बना। पुनर्जागरण—प्रसूत मानववाद और प्रबोधन काल—प्रादुर्भूत यथार्थवादी तर्कणा और जनवाद ने स्वतंत्रता—समानता—भ्रातृत्व के त्रिसूत्र का प्रतिपादन किया मध्यकालीन धर्मकेन्द्रिकता (थियोसेण्ट्रिज़्म) और पारलौकिकता के स्थान पर मानव—केन्द्रिकता (एन्थ्रोपोसेण्ट्रिज़्म) और इहलौकिकता के विचारधारात्मक वर्चस्व को स्थापित किया। एक ओर जहाँ पुनर्जागरण के मानववाद ने सामाजिक व्यवस्था की तमाम दैवी स्वीकृतियों पर प्रश्नचिन्ह उठाकर और इहलौकिकता के मूल्यों—मान्यताओं को स्थापित करके प्रकारान्तर से स्त्रियों की पराधीनता के विधानों को भी चुनौती दी। प्रबोधनकालीन तर्कणा और जनवाद के राजनीतिक दर्शन ने अमेरिकी और फ्रांसीसी बुर्जुआ जनवादी क्रान्तियों की पूर्वबेला में स्त्रियों में समान नागरिक अधिकारों के लिए संघर्ष की चेतना को जन्म दिया, इस ऐतिहासिक तथ्य से इन्कार नहीं किया जा सकता कि स्त्रियों की सामाजिक आज़ादी और स्त्री—पुरुष समानता की माँग की वैचारिक पूर्वपीठिका पुनर्जागरण और प्रबोधन की सैद्धान्तिकी ने ही तैयार की थी।

फ्रांसीसी क्रान्ति के अधिकांश नेताओं ने स्त्री—पुरुष समानता के विचारों को खारिज कर दिया, पर साथ ही स्त्रियों की शिक्षा और तलाक लेने में आसानी सहित उन्हें कई नागरिक अधिकार भी इसी दौरान प्राप्त हुए। बुर्जुआ क्रान्तियों के काल में स्त्री आन्दोलन का सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेज मेरी वोल्सटन क्राफ़्ट की पुस्तक 'स्त्री अधिकारों का औचित्य प्रतिपादन' थी, जो ओलिम्प द गाउजेस के दस्तावेज़ के प्रतिपादनों को ही उन्नत रूप में प्रस्तुत करती थी।

स्त्रियों ने कहा जिस समानता स्वतंत्रता के अधिकारों की बात इस प्रबोधन के युग में किया जा रहा है उससे स्त्रियों को वंचित नहीं रखा जा सकता। एक लम्बे संघर्ष के बाद १८७० में जाकर उन्हें विश्वविद्यालय में प्रवेश की अनुमति मिली, १८७५ में डाक्टर बनने की, १९०० में वकील बनने की। विवाहित स्त्रियाँ १९०७ तक अपनी आय खुद इस्तेमाल नहीं कर सकती थीं। १९६५ तक बिना पति के अनुमति के न बैंक खाता खोल सकती थीं न ही चिट्ठी या सन्देश प्राप्त कर सकती थीं। १८७० में जब फ्रांसीसी पुरुषों को सार्वभौम मताधिकार मिला तब से ही महिलाओं ने मताधिकार के लिए संघर्ष शुरू किया। १९२८ में लगभग १०० वर्षों के संघर्ष के बाद स्त्रियों को भी व्यस्क मताधिकार प्राप्त हुए। वही अमरीका में १९२० में जाकर महिलाओं को मताधिकार प्रदान किया गया। १९वें शताब्दी के आरम्भ में औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप एक बड़े सम्पत्तिशाली वर्ग का उदय हुआ जो राजनितिक प्रक्रिया में बड़ी हिस्सेदारी चाहता था समाज की बदलती हुई स्थितियों ने स्त्री के जीवन की परिस्थितियों को भी बदलने में सहायक हुआ।

जब मध्य युगीन विशेषाधिकार की जगह सामान नागरिक अधिकार की मान्यता को मूर्त रूप दिया जा रहा था स्त्रियों ने भी सामान नागरिक अधिकारों की माँग की। रूसी क्रान्तिकारी जनवादियों में अग्रणी, नारी मुक्ति के सर्वाधिक प्रखर पैरोकार चेर्नोशेव्स्की ने 'क्या करें' उपन्यास में पहली बार अपने समय से काफी आगे का एक ऐसा स्त्री चरित्र प्रस्तुत किया जिसने संकीर्ण पारिवारिक दायरे से मुक्त होकर अपनी स्वतंत्र सामाजिक—आर्थिक स्थिति बनायी थी और जो सामाजिक सक्रियताओं में भी संलग्न थी।



1953 में अंग्रेजी भाषा में सिमोन द बोउवा की प्रसिद्ध कृति 'द सेकेण्ड सेक्स' का प्रकाशन हुआ जिसमें पुरुष-वर्चस्व वाले सामाजिक परिवेश द्वारा स्त्री मानस के अनुकूलन और नारी उत्पीड़न के कई सूक्ष्म पहलुओं को उद्घाटित करते हुए यह प्रस्तावना दी गयी थी कि स्त्रियों की मुक्ति में ही पुरुषों की भी मुक्ति है जो स्वयं पुरुष स्वामित्व की मानवद्रोही मानसिकता के दास हैं। इस सटीक प्रस्थापना के बावजूद, इस पुस्तक में स्त्री-पराधीनता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, सामाजिक-आर्थिक विश्लेषण, स्त्री-मुक्ति की ठोस परियोजना और स्त्री आन्दोलन के सुस्पष्ट कार्यक्रम का अभाव था।

उस दौर में हमारा देश लम्बे समय से गुलामी झेल रहा था यहाँ जैसे मैंने ऊपर लिखा है स्त्रियों ने अपनी स्थिति का कोई मुखर विरोध भी नहीं किया। हलाकि थेरी गाथाओं में बौद्ध भिक्षुणियों ने संघ में शामिल होने से पूर्व की स्थिति का वर्णन करते हुए स्त्रियों की दयनीय दशा का वर्णन किया था। शायद यूरोप के प्रभाव में स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में अपनी जातीय अस्मिता की पहचान और जनता के अधिकारों के माँग के साथ-साथ जो स्त्री मुक्ति चेतना निर्मित हुई थी, उसके परिणाम स्वरूप 19वीं शताब्दी के आरंभ से ही महिलाओं की समस्याओं ने समाज सुधारकों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। उनके प्रयासों से सती प्रथा उन्मूलन विधवा पुनर्विवाह, बाल विवाह उन्मूलन, पर्दा प्रथा उन्मूलन, एवं स्त्री शिक्षा के लिए अनेक कानूनी संसोधन और सामाजिक परिवर्तन को पूरा करना संभव हुआ ! भारतीय समाज में महिलाओं की स्थिति बहुत निम्न थी। सती, बाल विवाह एवं बहुविवाह प्रथा का व्यापक प्रचलन था। परम्पराओं

एवं धर्म के नाम पर महिलाओं के साथ जो अन्याय हो रहा था, उसके बारे में सबसे पहली आवाज़ राजा राममोहन ने उठाई। उन्होंने 1818 में सती प्रथा के विरोध में एक पुस्तिका लिखी। उन्होंने बहुविवाह प्रथा पर भी प्रहार किया तथा स्त्रियों के सम्पत्ति के अधिकारों की वकालत की। ईश्वरचन्द्र विधासागर ने विधवाओं के उद्धार का बीड़ा उठाया। उनके प्रयासों से 1856 में विधवा पुनर्विवाह अधिनियम पारित हुआ। बम्बई के एक पारसी सुधारक बेहरामजी मालाबारी ने 10 वर्ष से 12 वर्ष के विवाह करने के विरुद्ध एक अखिल भारतीय अभियान आरंभ किया। कुछ वर्षों बाद मालाबारी द्वारा प्रस्तावित विवाह अधिनियम संबंधी सम्मति.वय को 1891 में पारित कर दिया गया। कवि रविन्द्रनाथ टैगोर की बहन स्वर्णकुमारी देवी अपनी शैली की लेखिका एवं भिन्न उपन्यासकार थीं। उन्होंने 1882 में सखी समिति की स्थापना की। पूना की एक विख्यात महिला पंडित रमार्बाई सरस्वती ने आर्य समाज की खोज की तथा मुम्बई महान्त्र के विभिन्न शहरों में अनेक महिला संस्थाओं की स्थापना की। उन्होंने महिलाओं को विशेषकर युवा विधवा स्त्रियों को रोजगार एवं शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से शारदा सदन की भी शुरुआत की। रमार्बाई रानाडे ने सेवा सदन की स्थापना की। वर्ष 1908 में अहमदाबाद में गुजराती स्त्री मण्डल की शुरुआत हुई तथा 1913 में मैसूर एवं 1916 में पूना में महिला सेवा समाज की खोज की गई। प्रारंभ में, इन संस्थाओं को गलियों अथवा शहरों तक ही सीमित रखा गया। प्रथम अखिल भारतीय महिला संगठन, 'भारत स्त्री महामण्डल; 1901 को प्रारंभ करने का श्रेय स्वर्णकुमारी देवी की प्रतिभाशाली पुत्री सरलादेवी चौधरानी को जाना चाहिए। परन्तु बाद में इसका



प्रचार केवल 1917 में मद्रास शहर में एनी बेसेंट, डोरोथी जिनाराजडासा एवं मारगरेट बंधुओं के द्वारा एक भारतीय महिला संघ के साथ संयुक्त रूप से किया गया। अपने राजनीतिक अधिकारों के प्रति जागरूकता एवं पश्चिमी लोकतांत्रिक मूल्यों से प्रभावित होकर इन सभी महिलाओं ने प्रारंभिक दशकों में समकालिक महिलाओं के भीतर राजनीतिक चेतना जगाने के उद्देश्य से सक्रिय होकर कार्य किया। महिलाओं के लिए शिक्षा संबंधी सुधारों के प्रयास विभिन्न क्षेत्रों में सुधार आंदोलनों जैसे कि ब्रह्मा समाज, प्रार्थना समाज, थियोसोफिकल सोसाइटी ने स्त्री शिक्षा पर बल दिया तथा इसके लिए सर्वसम्मति बनाने एवं विकास की दिशा में भी महत्वपूर्ण कार्य किया। उत्तरी भारत में सबसे बड़ी उपलब्धि तब हासिल की गई जब आर्य समाज के सदस्यों ने जालंधर में आर्य कन्या पाठशाला एवं कन्या महाविद्यालय का शुभारंभ किया। बंगाल में, ब्रह्मा समाज ने स्त्री शिक्षा एवं महिलाओं के प्रगतिशील संगठन का समर्थन किया। मद्रास में, थियोसोफिकल सोसाइटी ने बाल विवाह, बाल वैधव्य एवं सती की समालोचना की तथा भारतीय इतिहास की उस महानता को उजागर करने का प्रयास किया जहाँ महिलाओं को उच्च शिक्षा एवं यथेष्ट स्वतंत्रता प्राप्त थी। 1930 के दशक में, विवाह एवं संपत्ति से संबंधित हिंदू महिलाओं के लिए संपत्ति एवं अन्य हिंदू कानून पास किए गए। महिलाओं के समर्थन में जो अन्य कानून पास किए गए, उनमें शामिल हैं — मुसलिम पर्सनल ला (शरियत) विनियोग अधिनियम ;1937 तथा मुसलिम विवाह.विच्छेद अधिनियम ;1939।

19वीं शताब्दी में, महिलाओं की शिक्षा एवं सुधार के आंदोलन का संचालन पुरुषों ने अपने

हाथों में ले लिया। 20वीं शताब्दी में, चूँकी अधिक से अधिक महिला साक्षर होने लगी थीं, इसलिए अब उन्होंने अपनी संस्थाओं का निर्माण करना शुरू कर दिया एवं उसके नेतृत्व की बागडोर भी अपने हाथों में ले ली। अपने प्रारंभिक चरण में इसने पंचम को अपने आदर्श के रूप में देखा। घर की सीमाओं से बाहर निकलकर बाहर की दुनिया में कुछ कर दिखाने का अवसर रवोजा। (अपर्णा बसु, भारती राय : 1990)।

श्रृंखला की कड़ियाँ के निबन्धों में महादेवी वर्मा स्त्री प्रश्न की एक प्रखर और सुलझी हुई विचारक के रूप में सामने आती हैं। इन निबन्धों में महादेवी जी ने स्त्रियों की आर्थिक-सामाजिक-सांस्कृतिक-पारिवारिक गुलामी का सन्तुलित विश्लेषण करते हुए स्त्रियों के सामाजिक चेतना का विस्तार, आर्थिक स्वावलम्बन और सामाजिक रूढ़ियों के प्रतिकार पर विशेष बल दिया है। निस्सन्देह इन निबन्धों में उन्होंने राष्ट्रीय जागरण काल की नारी-प्रबोधन की जनवादी मुक्ति चेतना को एक प्रतिनिधि स्वर दिया है।

भारत में नारीवाद, भारतीय महिलाओं के लिए समान राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक अधिकारों को परिभाषित करने, स्थापित करने, समान अवसर प्रदान करने और उनका बचाव करने के उद्देश्य से आंदोलनों का एक समूह है। यह भारत के समाज के भीतर महिलाओं के अधिकारों की संकल्पना है। दुनिया भर में अपने नारीवादी समकक्षों की तरह, भारत में नारीवादी लैंगिक समानता, समान मजदूरी, काम करने का अधिकार, स्वास्थ्य और शिक्षा के लिए समान पहुंच का अधिकार और समान राजनीतिक अधिकार चाहते हैं। भारतीय नारीवादियों ने भारत के पितृसत्तात्मक समाज के भीतर संस्कृति-विशिष्ट



मुद्दों के खिलाफ भी लड़ाईयाँ लड़ी है। भारतीय नारीवादी आंदोलनों द्वारा की गई प्रगति के बावजूद, आधुनिक भारत में रहने वाली महिलाओं को अभी भी भेदभाव के कई मुद्दों का सामना करना पड़ता है। भारत की पितृसत्तात्मक संस्कृति के दुष्परिणाम सामने दीख पड़ते हैं। परन्तु दलित विमर्श और आदिवासी विमर्श ऐसा विमर्श है, जो हिंदुस्तान में ही चला, किस वैश्विक आंदोलन या विचारधारा का अंग नहीं बन पाया। लेकिन स्त्री-विमर्श एक वैश्विक विचारधारा है। लेकिन विडंबना कि बात यह है कि हिंदी में जो स्त्री विमर्श चल रहा है, उसका इस वैश्विक विचारधारा से बहुत कम लेना-देना है, नहीं के बराबर है। एक-दो अकादमिक लोगों की बात नहीं करता हूँ, जो इस चीज के बारे में ज्यादा जानकारी रखते हैं। हिंदी में जो स्त्री-विमर्श चलता है, जिसमें मैत्रेयी पुष्पा और लता शर्मा और मनीषा और रोहिणी अग्रवाल जैसे लोगों को हम पढ़ते रहते हैं। ये लोग सबसे ज्यादा मुखर हैं स्त्री विमर्श पर, तो लगता है कि स्त्री विमर्श से दयनीय कोई दूसरा विमर्श नहीं है हिंदी में। यानी एक तो इस स्त्री विमर्श का कहीं भी उस वैश्विक विचारधारा के विकास से, उसकी सैद्धांतिकी से जो इतने वर्षों से विकसित हुई है दुनिया में, कुछ भी लेना-देना नहीं है। हिंदुस्तान में स्त्री-मताधिकार के लिए 1918 ई. में कांग्रेस ने एक बैठक बुलाई और एक प्रस्ताव पारित कर दिया कि स्त्रियों को भी मताधिकार दिया जाएगा और पारित हो गया, यहां किसी स्त्री में यह चेतना जगाने की जरूरत ही नहीं पड़ी कि तुम्हें मताधिकार हासिल करना है और इसके लिए तुम्हें लड़ना है। बैठे-बैठा सब मिल गया। रावण मरा, न लंका जली, खुद घर लौट आई जनकनंदिनी। स्त्री विमर्श का एक बहुत बड़ा सवाल है मर्दवाद।

इसकी क्या आलोचना है हिंदी में? अच्छे-अच्छे नारीवादियों ने मर्दवाद को कैसे आत्मसात कर रखा है। मर्दवाद जो स्त्री प्रश्न की एक सबसे बड़ी बुनियादी विरोध की अवधारणा है और उसके साथ स्त्रीत्व के सवाल पर आऊंगा। मर्द को मुक्त समझना और मर्द के जैसा बनने की कोशिश करना नारीवाद नहीं है। मर्दवाद अपने आप में घृणित चीज है। पुअर बॉयज़ डॉट क्राई— लड़के रोते नहीं हैं। हममें से कोई नहीं होगा, जिसने बचपन में एक-दो बार ये वाक्य न सुना हो। खेल से लौट के या झगड़े से घर जब भी हम आते थे, हमारी मां बहने कोई न कोई हमसे जरूर कहता था— ए लड़का होके रोता है। लड़कियों की तरह से रोने बैठ गया। हमें जो मर्द होना सिखाया जाता है बचपन से। ये मर्दवाद सबसे ज्यादा खतरनाक अवधारणा है, नर को मर्द बनाना, मादा को स्त्री बनाना, ये हमारे समाज की संस्कृति की बहुत बुनियादी समस्या है। न लड़के रोते हैं, न लड़कियां रोती हैं, मनुष्य रोता है। मनुष्य होने के कारण हम रोते हैं। ये स्त्री पुरुष का विभाजन सबसे झूठा और मिथ्या विभाजन है। ये उतना ही मिथ्या विभाजन है जितना मिथ्या विभाजन जाति का विभाजन है। “तुम हर जगह स्त्रियों और पुरुषों को देख रहे हो, मैं तो सिर्फ मनुष्यों को देख पा रहा हूँ।” —रामकृष्ण परमहंस

स्त्री पुरुष की अवधारणा एक झूठी अवधारणा है। दोनों मनुष्य हैं, दोनों ही की जरूरत एक है। दोनों की भावना एक है। शरीर की बनावट से इस चीज में कोई फर्क नहीं पड़ता। इसलिए मैं समझता हूँ कि हमारे देश में और पूरी दुनिया में संस्कृति को बदलने की जो लड़ाई है, उसका एक बुनियादी मुद्दा होना चाहिए स्त्री और पुरुष के विभाजन को खत्म करना। जहां भी स्त्री और



पुरुष का विभाजन आप देखें, उसका विरोध करें। जिस प्रकार मर्दवाद एक झूठी अवधारणा है, जो नर को खूंखार बनाती है, उसी प्रकार स्त्रीत्व की अवधारणा भी इतनी ही गलत और बेबुनियाद अवधारणा है, जो स्त्री को घुटनाटेकु बनाती है। उन्हें स्त्री-पुरुष बना के हम उनकी मनुष्यता को उनसे छीन लेते हैं।

लेकिन ये पुरुषार्थ की अवधारणा हमेशा ऐसी खूंखार नहीं होती है। जो लोग बलात्कार की बात नहीं करते हैं, जो लोग यौन हिंसा की बात नहीं करते हैं, वे भी उतने ही मर्दवादी हैं। समाज में ऐसी संस्थाएं हैं, बहुत सी संस्थाएं, भद्र लोग, हमारे घर के लोग, वो थोड़े कहते हैं कि स्त्रियों से बलात्कार करो या उन पर हिंसा करो। वो कहते हैं— स्त्रियों के साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिए। मर्यादा का पालन करना चाहिए और स्त्रियों को भी मर्यादा में ही रहना चाहिए। सबको अपनी मर्यादा का पालन करना चाहिए। ज्यादातर पुरुष समाज जो है यही बात करता है, इससे मर्दवाद में कोई फर्क नहीं पड़ता। ये भी वही बात कह रहे हैं लेकिन बहुत दूसरे तरीके से। मर्दवाद का मतलब ये नहीं कि वो जो बलात्कार करेगा और हिंसा करेगा, खूंखार रूप में तभी वो मर्दवाद होगा, नहीं, वो स्त्री से बहुत अच्छा बर्ताव करते हुए भी।

तुम घर में रहो, काम करो, बाहर भी जाओ, समय पर आ जाया करो बेटे। ज्यादा अंधेरे में बाहर नहीं रहना और देखो दोस्तों के साथ ज्यादा नहीं जाना, तुम आ जाओ घर में, हमलोग सब तुम्हारे साथ हैं। ये भी उसी चीज को बहुत अच्छे ढंग से कह रहे हैं। और बाहर जाओगी तो फिर.. अगर ये हमारी बातें नहीं मानोगी, इस मर्यादा को नहीं मानोगी, तो फिर वही होगा जो बाहर होता है

और यह तो एक ही सिक्के के दोनों पहलू हैं। इसी प्रकार से मैं कहना चाहूंगा कि स्त्रीत्व की धारणा भी उतनी ही बेबुनियाद है, जिसमें बहुत सारी स्त्रियां स्वाभाविक रूप से विश्वास करती हैं। स्त्रियों के अंदर करुणा होती है, स्त्रियां ममतामयी होती हैं। उनके अंदर अपने बलिदान की भावना भरी होती है— ये सब स्त्रियों को बनाया जाता है। इस प्रकार से उनकी मनुष्यता को, उनकी स्वाभाविक आकांक्षाओं को, उनकी स्वाभाविक प्रकृति को उनसे ही छीन लिया जाता है। उनको स्त्री के रूप में ढाला जाता है। तो यह मनुष्य की संस्कृति की बहुत बुनियादी समस्या है। संस्कृति की लड़ाई बहुत लंबी लड़ाई है। जब तक आप विचारधारात्मक संघर्ष इस पर नहीं चलाएंगे, आपसे वो कभी हल होने वाली नहीं हैं। माओत्से तुंग का जो आखिरी इंटरव्यू एडगर स्नो ने लिया था 72-73 के आसपास, उसमें उन्होंने माओ से पूछा— चीन में समाजवाद तो आ गया, ये बताइए स्त्री और पुरुष की बराबरी चीन में कब तक आएगी, आपको क्या लगता है? माओत्से तुंग ने कहा— चार-पांच सौ साल से पहले नहीं आने वाली।

मैं समझता हूं कि उसे आप चार-पांच सौ साल से भी ज्यादा सोच सकते हैं। क्योंकि यह संस्कृति की लड़ाई है। स्त्री विमर्श पूरे समाज के लोकतांत्रिक रूपांतरण और समाजवाद की भी एक बहुत बुनियादी लड़ाई है। अगर स्त्री विमर्श इस सवाल का सामना नहीं करता है, दो-चार नहीं होता, तो वो कितना संकीर्ण रह जाएगा, हम समझ सकते हैं।

फेमिनिज्म या स्त्री विमर्श का प्रचलन १८६० के आस पास फ्रांस में हुआ। यह शब्द उस



राजनीतिक आंदोलन से अपने आप को जोड़ता है जो महिला अधिकारों के लिए संघर्ष से अपने आपको जोड़ता है और जिसका लक्ष्य स्त्री की मुक्ति से है। वर्जीनिया वुल्फ ने इससे जुड़ी महिलाओं को पढ़े लिखे लोगों की बेटियाँ कहा। अपने प्रारंभिक दौर में इन नारीवादियों ने माना स्त्री और पुरुष को ऐतिहासिक और सांस्कृतिक प्रयासों से गढ़ा गया है अर्थात् यह प्रकृति नहीं है जिसने स्त्री को अबला बनाया है। उन्होंने अपना ध्यान उस ओर डाला जिसे हम "जेन्डर" कहते हैं। किसी भी विचारधारा के अपने कुछ सिद्धांत होते हैं, जिनकी मदद से हम उस विचारधारा को अच्छी तरह समझ सकते हैं। अब हम जिक्र करेंगे नारीवाद से जुड़े कुछ प्रचलित सिद्धांतों का, जिन्हें कई बार नारीवाद का प्रकार भी माना जाता है। राष्ट्रपति बराक ओबामा का खुद को 'फेमिनिस्ट' कहना वाकई काबिले तारीफ है। अपने जन्मदिन के दिन 'गैल्मर' मैगजीन के लिए उन्होंने एक लेख लिखा, जो दुनिया की राजनीति या अर्थव्यवस्था से परे केंद्रित था। दृ महिलाओं पर। उन्होंने अपने लेख में लिखा—“औरत होने के लिए ये एक अच्छा समय है। ऐसा मैं अमेरिका के राष्ट्रपति के तौर पर ही नहीं, एक फेमिनिस्ट होने के तौर पर कह रहा हूँ। अपनी बेटियों साशा और मालिया को पालते हुए मैंने यह महसूस किया है कि लड़कियों के ऊपर समाज का कितना प्रेशर रहता है। यह हमें दिखता नहीं। पर हमारा कल्चर चुपके-चुपके उनके दिमाग में यह भर रहा होता है कि उन्हें कैसा दिखना है, किस तरह का बर्ताव करना है। यहां तक कि किस तरह सोचना है। हमें यह सोच बदलनी होगी, जिसके चलते लड़कियों को चुप-चाप रहना और लड़कों को मर्दाना होना पड़ता है, जो हमारी बेटियों को खुलकर बोलने

और लड़कों को आंसू बहाने से रोकता है। हमें खुद को बदलना होगा।”

मनुष्य के जीवन में समानता स्वतंत्रता एवं सामान अधिकारों की उदारवादी धारणाएं और महिलाओं के जीवन की विश्वव्यापी वास्तविक स्थिति के बीच व्याप्त अन्तर्विरोध को प्रखरता से सामने रखा था वे महिलाओं के लिए ज्यादा सार्वजनिक भूमिका के पक्षधर थे। बल्कि एक व्यक्ति के तौर पर महिलाओं को स्वतंत्रता समानता एवं नागरिक अधिकारों के पक्षधर थे। स्वतंत्रता समानता के नागरिक अधिकारों के आदर्श जो १७वीं १८वीं सताब्दी की क्रांतियों के आधार बने आधुनिक समय में लोक तांत्रिक क्रांतियों में सहभागिता के परिभासित सिद्धांत बन गए! वंशगत उत्तराधिकारी राजाओं के हाथ से सत्ता छीनने में व्यक्तियों के जिस प्राकृतिक अधिकार एवं सम्प्रभुता का सहारा लिया गया उसके बारे में जॉन लोड्स कहती हैं क्रांति महिलाओं के खिलाफ की गयी उनके बिना नहीं। नारीवाद का सबसे बड़ा योगदान है “सेक्स” और “जेन्डर” में भेद स्थापित करना है। सेक्स एक जैविक शब्दावली है, जो स्त्री और पुरुष में जैविक भेद को प्रदर्शित करती है। वहीं जेन्डर शब्द स्त्री और पुरुष के बीच सामाजिक भेदभाव को दिखाता है। जेन्डर शब्द इस बात की ओर इशारा करता है कि जैविक भेद के अतिरिक्त जितने भी भेद दिखते हैं, वे प्राकृतिक न होकर समाज द्वारा बनाये गये हैं और इसी में यह बात भी सम्मिलित है कि अगर यह भेद बनाया हुआ है तो दूर भी किया जा सकता है।

नारीवाद, राजनैतिक आन्दोलनों, विचारधाराओं और सामाजिक आंदोलनों की एक श्रेणी है, जो राजनीतिक, आर्थिक, व्यक्तिगत और



सामाजिक लैंगिक समानता को परिभाषित करने, स्थापित करने और प्राप्त करने के एक लक्ष्य को साझा करते हैं। इसमें महिलाओं के लिए पुरुषों के समान शैक्षिक और पेशेवर अवसर स्थापित करना शामिल है। दरअसल, नारीवाद एक ऐसा दर्शन है, जिसका उद्देश्य है— समाज में महिलाओं की विशेष स्थिति के कारणों का पता लगाना और उनकी बेहतरी के लिए वैकल्पिक समाधान प्रस्तुत करना।

आधुनिक स्त्रीवादी विमर्श की मुख्य आलोचना हमेशा से यही रही है कि इसके सिद्धांत एवं दर्शन मुख्य रूप से पश्चिमी मूल्यों एवं दर्शन पर आधारित रहे हैं। हालांकि जमीनी स्तर पर स्त्रीवादी विमर्श हर देश एवं भौगोलिक सीमाओं में अपने स्तर पर सक्रिय रहती हैं और हर क्षेत्र के स्त्रीवादी विमर्श की अपनी खास समस्याएँ होती हैं

मनुष्य, स्त्री – पुरुष और परिवार के साथ ही समाज में सामाजिक सत्ता का उदय होता है यह सामाजिक सत्ता आदिकाल से परिवार के अंदर आसमान रूप से वितरित है सत्ता की यह अवधारणा सामाजिक स्वरूप के जन्म के साथ उन्हें स्तरों में समायोजित स्थिति से हमें अवगत कराती है।

औद्योगिक क्रांति ने पण्य—पूजा (कमोडिटी फेटिशिज़्म), और श्रम विभाजन जनित अलगाव (एलियनेशन) मानवीय समबन्धों को विरूपित करके, उसे सौन्दर्यात्मिकता, औदात्य और मानवीय सारतत्त्व से रिक्त करके पाश्चिक यौन—तुष्टि मात्र बना डालते हैं। सार्वजनिक जीवन में वस्तुकरण (रीइफिकेशन) और पण्यपूजा की संस्कृति स्त्री श्रम शक्ति को ही नहीं, सदेह स्त्री को ही एक पण्य या माल समझने की पुरुषवर्चस्ववादी संस्कृति को सर्वव्यापी बना देती

है

मार्क्स ने नृतत्वशास्त्र और इतिहास की खोजों के आधार पर स्त्री—पुरुष के बीच असमानता और स्त्री की अधीनस्थता के प्राकृतिक कारणों की धारणा का तर्कसंगत निर्मूलन करते हुए यह सिद्ध किया कि स्त्री की पराधीनता और पुरुष स्वामित्व का जन्म आदिम समाजों में निजी स्वामित्व के जन्म और वर्गों के उद्भव की प्रक्रिया के साथ हुआ जो अलग—अलग सामाजिक—आर्थिक संरचनाओं में रूप—परिवर्तन के साथ बना रहा। इस प्रस्थापना की एक तार्किक निष्पत्ति यह थी कि स्त्री की पराधीनता की पूर्ण समाप्ति निजी स्वामित्व और वर्ग—विभेद की समाप्ति के साथ ही सम्भव हो सकती है। मार्क्स के अनुसार, औद्योगिक क्रांति ने स्त्रियों के बड़े हिस्से को घरों से बाहर सामाजिक उत्पादन के क्षेत्र में लाकर वस्तुगत तौर पर एक प्रगतिशील काम किया। इसने समाज की आर्थिक इकाई होने के एकल परिवार के स्वरूप को बदल दिया। स्त्रियों के जनवादी अधिकार आन्दोलन स्त्री समुदाय के लिए नागरिक अधिकारों के साथ ही स्त्री—मजदूरों की कम मजदूरी, कार्यस्थल पर उत्पीड़न, प्रजनन अवकाश, बच्चों के लालन—पालन की सुविधा जैसी उन माँगों को भी उठा रही थीं।

उत्तर आधुनिकतावाद के पुरोधा मिशेल फूको ने यह स्थापना दी कि सत्ता (पावर) पोर—पोर में समायी होती है, दैनन्दिन जीवन में सर्वव्याप्त होती है, विकेंद्रित होती है और लोगों द्वारा आभ्यन्तरीकृत (इण्टर्नलाइज़) कर ली जाती है। अतः यह अप्रतिरोध्य है। लोग यदि सामाजिक रूपान्तरण के लिए कोई सामूहिक प्रतिरोध करते भी हैं, तो उससे सिर्फ 'सत्ता का नया रूप' पैदा होता है, जो स्वयं दमनकारी होता है। अतः सत्ता



का कोई भी संगठित सामूहिक प्रतिरोध व्यर्थ है। आगे फूको बताते हैं कि सत्ता और दमन के मूल में भी सार्विकीकरण, मानकीकरण, सामान्यीकरण की अवधारणा होती है, अतः आप सिर्फ यह कर सकते हैं कि व्यक्तिगत जीवन में हर प्रकार के 'नार्म' और 'यूनिवर्सल' का खण्डन करते हुए सत्ता और दमन का प्रतिरोध करें, निजी जीवन में जाति, जेण्डर, धर्म आदि से जुड़ी अस्मिता से सम्बन्धित हर 'नॉर्म' का विरोध करें। यहाँ हम दो महत्वा पूर्ण बिंदुओं को नजदीक आते देखते हैं एक है सत्ता सम्बन्ध और दूसरा उनका आभ्यन्तरीकरण। तब मार्ग क्या है मार्ग है की हम बातों से अवगत हों इनके प्रति संवेदनशील हों उन स्थितियों के प्रति सजग हों जो हमारे सामने से सत्य को ओझल करती हैं जो हमारे मनो जगत का निर्माण करती है। The perception of real self and the other will change -It is not easy until we struggle against many things without any meta narratives-

चूँकि क्रान्तियों के 'महाआख्यान अविश्वसनीय हैं', वे विसर्जित हो चुके हैं और चूँकि दमनकारी सत्ता के एकजुट, संगठित प्रतिरोधों ने दमनकारी सत्ताओं को ही जन्म दिया, इसलिए अब छोटे-छोटे विखण्डित, परिधिगत, अस्मिता आधारित संघर्षों का समय है। जैसे स्त्रियों का संघर्ष, दलितों का संघर्ष, आदिवासियों का संघर्ष, मूल निवासियों का संघर्ष आदि। विकल्प एक है और वह यह कि इसी व्यवस्था के भीतर इन परिधिगत अस्मिताओं के लिए स्वायत्त स्पेस बनाना है।

उत्तर नारीवाद की दूसरी उपधारा फूको की इस स्थापना से निकलती है कि हमें निजी जीवन में हर प्रकार के जेण्डरगत, जातिगत, धार्मिक

आदि अस्मिताओं से सम्बन्धित मानक ('नॉर्म') और सार्वभौम ('यूनिवर्सल') के विरुद्ध विद्रोह करना है क्योंकि लोगों द्वारा आभ्यन्तरीकृत, पोर-पोर में समायी सत्ता का इसी प्रकार विरोध किया जा सकता है। इसे उसने 'क्वियर थियरी' का नाम दिया। स्त्री प्रश्न के सन्दर्भ में इसे मुख्यतः जुडिथ बटलर ने और उनके अतिरिक्त श्रनसपं तपेजपअं ग्लारिया अंजाल्दुआ, ईव कोसोफस्की, सेडविक इस्तेबान मुनोज, जोस तथा लॉरेन बर्लान्त आदि ने लागू करते हुए यह स्थापना दी कि जेण्डर किसी व्यक्तित्व का सारभूत स्व ('एस्सेंशियल सेल्फ') है और सेक्स (यानी सेक्सुअल क्रियाएँ और अस्मिताएँ) सामाजिक निर्मिति ('कंस्ट्रक्ट') हैं। समाज में कुछ सेक्सुअल व्यवहारों को मानक और कुछ को विचलनशील ('डेविएंट') मानने की धारणा ही दमनकारी और वर्चस्ववादी है। अतः इस सन्दर्भ में भी हमें 'मानक' और 'सार्वभौम' का विरोध करना चाहिए।

उत्तर नारीवाद की जो तीसरी उपधारा फूटती है, नाम 'दनेंत चूँकि आधुनिकता की हर सोच पश्चिमी वर्चस्ववादी परियोजना का अंग है, इसलिए स्त्रियों को परंपरा एवं आधुनिकता द्वारा आरोपित सत्ता के वर्चस्व और पुरुष वर्चस्व का सामना करते हुए अपना स्वायत्त स्पेस बना और बचा सकने के लिए प्रयास करना होगा।

परम्परा और आधुनिकता—बोध पर स्त्री-प्रश्न-सन्दर्भ में हमारा विमर्श तबतक अधूरा रहेगा, जबतक हम अपने देश के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य और सांस्कृतिक सामाजिक पारिस्थितिक सन्दर्भों में इसकी चर्चा न करें। स्त्री के प्रश्न हाशिए के नहीं बल्कि जीवन के केंद्रीय प्रश्न हैं। किंतु हिंदी साहित्य की मुख्यधारा जिसे वर्चस्वशाली पुरुष लेखन भी कहा जा सकता है, में



स्त्री प्रश्नों अथवा स्त्री मुद्दों की लगातार उपेक्षा की जाती रही है। इसका अर्थ यह नहीं है कि स्त्री अथवा स्त्री प्रश्न सिरे से गायब हैं बल्कि यह है कि स्त्री की उपस्थिति या तो यौन वस्तु (Sexual object) के रूप में है या यदि वह संघर्ष भी कर रही हैं तो उसका संघर्ष बहुत हद तक पितृसत्तात्मक मनोसंरचना अख्तियार किए होता है संघर्ष करने वाली स्त्री की निर्मिति ही पितृसत्तात्मक होती है। साहित्य की पितृसत्तात्मक परंपरा में लगातार स्त्री प्रश्नों का हास होता क्यों दिख रहा है? क्या स्त्री विमर्श को देह केंद्रित विमर्श के समकक्ष रखकर स्त्री-विमर्श चलाने के दायित्वों का निर्वाह किया जा सकता है? यदि साहित्य का कोई सामाजिक दायित्व है तो हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के नाम पर स्त्री देह को बेचने व स्त्री को सेक्सुअल आब्जेक्ट अथवा मार्केट

के उत्पाद के रूप में तब्दील कर दिए जाने की जो पूँजीवादी पितृसत्तात्मक बाजारवादी रणनीति काम कर रही है उस मानसिकता से यह मुक्त क्यों नहीं है? उसको पहचान कर उसके सक्रिय प्रतिरोध से ही वास्तविक स्त्री विमर्श संभव है। क्यों सत्तर के दशक में नवसामाजिक आंदोलन के रूप में समतामूलक समाज निर्माण के स्वप्न को लेकर उभरे स्त्रीवादी आंदोलनों की चेतना एवं उनके मुद्दों को जाने-अनजाने नजरअंदाज करने का प्रयास किया जा रहा है? स्त्री मुक्ति अकेले स्त्री की मुक्ति का प्रश्न नहीं है बल्कि यह संपूर्ण मानवता की मुक्ति की अनिवार्य शर्त है। दरअसल यह अस्मिता की लड़ाई है। इतिहास ने यह साबित भी किया है कि आधी आबादी की शिरकत के बगैर क्रांतियाँ सफल नहीं हो सकतीं।

“पड़ोसी का महल देखकर अपनी झोपड़ी तोड़ डालने वाला महल तो बना नहीं सकता, अपनी झोपड़ी भी खो बैठता है।”

सरदार वल्लभ भाई पटेल

“यह भारत के प्रत्येक नागरिक का कर्तव्य है कि वह अनुभव करे कि उसका देश स्वतन्त्र है और देश की स्वतंत्रता की रक्षा करना उसका कर्तव्य है। अब हर भारतीय को भूल जाना चाहिए कि वह सिख हैं, जाट है या राजपूत। उसे केवल इतना याद रखना चाहिए कि अब वह केवल भारतीय हैं जिसके पास सभी अधिकार हैं, लेकिन उसके कुछ कर्तव्य भी हैं।”

सरदार वल्लभ भाई पटेल

“मान-सम्मान किसी के देने से नहीं मिलते, अपनी योग्यतानुसार मिलते हैं।”

सरदार वल्लभ भाई पटेल



Somerset Maugham (1874-1965) himself writes that the subject of great art whether poetry or drama is

the common vicissitudes of humanity, birth, death, love and hatred, youth and age. "I venture to think that these are also the subject of great fiction," writes Maugham.

The stories in the novels of Maugham have been taken from day to day life. they are not ephemeral in nature. On the contrary they tell the tales of people who



were Stendhal, Balzac, Goncourts, Flaubert and Anatole France. He learnt the perfection of form from them. The French novels were

more exact in their demands of form when compared to the English novel. Among the English, he tried to emulate Henry James. Maugham has a natural flair of telling things. He wrote twenty novels which became famous due to their theme.

Most of the stories of Maugham were based on passion. This passion was the

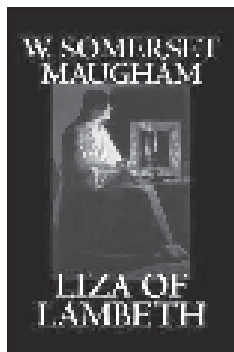
A Thematic Study of Somerset Maugham's Novel

Most of the stories of Maugham were based on passion. This passion was the driving force in a man's life which instigated him to do things life that forced him to lead a secluded life.

Dr. Namita Singh
Professor, Dept. of English
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

are full blooded individuals, who laugh, weep and smile in life. His characters are from the middle class of society. He never tells tales of kings, aristocrats and super rich people as he had not seen them from vicinity. He derived inspiration from the French author Maupassant in his formative years. However, besides Maupassant there were also other French writers who had influenced him. They

driving force in a man's life which instigated him to do things life that forced him to lead a secluded life. Perhaps this passion in Maugham is nothing, but the fate of man itself. His literary career can be divided into two phases. In the first phase, he wrote novels like The Liza of Lambeth, Mrs. Craddock and Of Human Bondage. All these novels were written under the influence of one writer or



the other. For instance, *Liza of Lambeth* was written under the direct influence of Maupassant, while *The Making of a Saint* was written under the influence of Andrew Lang. Lang believed that a novel must have historical perspective besides its entertainment value. Maugham followed the footsteps of his ideals and wrote many pot-boilers like *The Magician* and *Loaves and Fishes*.

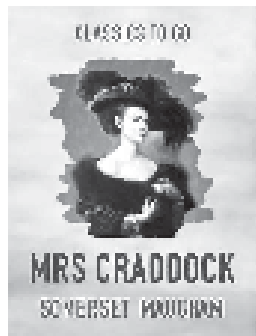
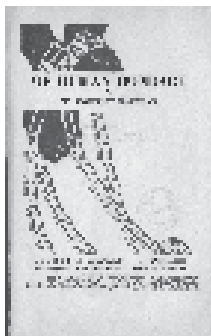
Maugham's most remarkable novel of his career is *Of Human Bondage*. It is a semi autobiographical novel that tells the story of Philip Carey. It is an epic novel and a chronicle and covers the period of twenty years. The novel opens with the life of Philip when he is eight years old and closes when he attains the age of thirty. During this period the hero comes in the contact of a number of people who have been mentioned in the novel. The hero Philip is a theist in the first part of the novel with strong faith in God. He prays daily and keeps fast on the prerogative of his uncle. However, his faith is shaken when his lame foot does not get cured even after incessant prayers. He turns into an atheist. After he loses faith in God, he finds himself free and more joyous as he comes into contact

with various kinds of people. He also releases himself from the passionate love for Mildred.

The central story of the novel revolves round the passionate love of Philip for Mildred. It covers about half of the novel. The story begins with the boyhood of Philip and his education at the king's school, Tercanbury. The second period covers his education at Heidelberg and his love affair with Mrs. Wilkinson. The third deals with the story of his life as an accountant in the firm of carter in London. The fourth deals with his training as a painter in Paris. The fifth deals with his acquaintance and later marriage with Sally. The novelist comes to the conclusion that it is passion that drives man to do insane things in life. Perhaps passion at the moment is the face of fate itself. That is why, life in a way becomes the passion of man. The hero turns into a philosopher and assesses life as meaningless in nature. He contemplates for hours and arrives at the conclusion that beauty alone is the driving force that keeps life worth living. It soothes the senses from within, otherwise all human beings are in bondage, with no rhyme or reason to live for. Beauty is the utmost source that gives pleasure to the senses:

Life had no meaning on the earth, satellite of a star spending through space, living things had arisen under the influence of conditions which were part of the planet's history. Life was insignificant and death without consequence (61).

Further, he writes how beauty is the life force that excites men to live. "It was beauty alone that gave any significance to life" (36).



Maugham was a naturalist who believed in the theory of devil in man rather than angel in man. That is why the stories weave a picture of the world which is somewhat base in nature. In the novel *Liza of Lambeth*, Liza is the central character whose passion for Jim Blackstone, a middle aged married man is unflinching. It opens with the descriptions of the formidable Veer street of Lambeth. The novelist gives a hint of events that are going to follow: "Everything in the street is ugly and commonplace. Men and women are talking of their pretty affairs and engagements, and boys and girls are playing cricket in their pathways" (47). Liza develops love for Jim Blackstone. The mere attraction changes into sinful love as she forms carnal relations with Jim one fine night. Liza turns down the proposal of Tom who is unmarried instead choosing a path for herself that is full of denunciation by the society and ultimately causes her demise. The purpose of the novelist is to show the defeat of good forces and the victory of evil forces,

In yet another novel *The Razor's Edge*, as in most of his novels, the theme is passion. However, it is a passion of a different kind. In other novels it is passion for the known and

“Life had no meaning on the earth, satellite of a star spending through space, living things had arisen under the influence of conditions which were part of the planet's history.”

the substantial, while here it is passion for the un-substantial and the abstract. Larry, the hero of the novel, wants to explore the mystery of good and evil, life and death, and also God and devil. He explains it to Isabel, his ladylove, the object of his life search:

I want to make up my mind whether God is or God is not. I want to find out whether I have an immortal soul or whether when I die it is the end (51).

For the first time, Maugham deals with one of those great topics which are of concern to every human being: the existence of God, the immortality of soul and the meaning and value of Life. Larry's story starts from the point at which Philip's story ends. In a nutshell, the theme and the story are intertwined and they present a throbbing story before the readers which has been written by heart. "A story," writes Gustave Flaubert, "that is written by heart is the best story. I express myself badly in telling you that one must write through one's heart."

WORKS CITED

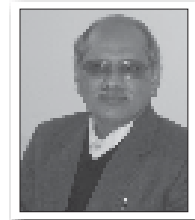
Flaubert, Gustave, and Francis Steegmuller. *The Letters of Gustave Flaubert: 1830-1880*. Picador, 2001.

Maugham, W. Somerset. *The Selected Novels of W. Somerset Maugham, Volume 1*. William Heinemann Ltd., 1961.



THE BIOLOGICAL CLOCKS OF THE FOETUS AND THE NEWBORN

Their "chronobiological retardation" and desynchronization causes disorientation, harming their learning process and mental development, and impairs their future as children and adults.



Arun Kr. Singh

University Prof. of Zoology
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

Rhythm is one of the fundamental characteristics of all biological systems. Periodic variations govern our lives without our being aware of it. The most obvious indication of our biological rhythms is the alternation of wakefulness and sleep. As a matter of fact most, if not all, our physiological and psychophysiological functions have a rhythmic pattern, following a cycle of approximately 24 hours (circadian rhythms). Muscular strength, body temperature, mental performance (memory, concentration, etc.) and hormonal secretions have their high and low points every day.

All these rhythms are controlled by biological clocks known as "pacemakers" or "oscillators". It is now admitted that in mammals there is not just one central biological clock but several. Most of them are found in the central nervous system, like the pineal gland, the convex nuclei and the neocortex. But the most obvious and best-known clock corresponds to the group of suprachiasmatic nuclei (SCN) of the hypothalamus, a neuro-endocrinal formation situated at the base of the brain.

The SCN control many circadian rhythms like body temperature, circulation, respiration, endocrinal secretions, etc., and their destruction in rats leads to the disappearance of these rhythms. The SCN, therefore, seem to be indispensable for the maintenance of our biological rhythms.

Biological clocks have to be readjusted lest they get out of tune. In the case of circadian rhythms the readjustment takes place daily. Actually, their spontaneous cycle is never exactly 24 hours, but closer to 25 hours in human beings. To readjust their biological clocks, both humans and animals unknowingly use periodic signals like dawn or dusk to synchronize their internal rhythms with environmental rhythms. These signals, called synchronizers of "Zeitgeber" (time-givers) in German, indicate the alternation between day and night, noise and silence, heat and cold, etc. In human beings, the synchronization is usually affected by the alternation between periods of activity and rest, determined by the schedules of a social system. In simpler terms our daily routine of



work and sleep synchronizes our biological clocks.

What happens in the case of the foetus and the newborn? Do they also have biological rhythms? If they do, what is the function of these biological rhythms? How do their clocks start working? In the absence of temporal indications provided by the environment, how are these clocks adjusted?

Present studies reveal that there is a proper development of rhythm right from the embryonic stage into adulthood. In the case of human beings the majority of circadian rhythms manifest only after the third week of life.

A foetal clock

The Japanese scientist T. Deguchi (1975) working at the Institute of Neurosciences, Tokyo, demonstrated the existence of a central biological clock in baby rats. This clock starts functioning even before the communication line of the central nervous system between the eyes and the hypothalamus is formed (which means that before any information about light can be received), and long before the establishment of the cycle of sleep and wakefulness, and the hormonal rhythms. He observed that an enzyme in the pineal gland (N-acetyl transferase) had a circadian rhythm regulating activity when the newborn was only four days old. He also observed that these rhythms in the baby rat and its mother were perfectly synchronized even when the

former was kept permanently in a state of darkness, or without any synchronizers. T. Deguchi concluded on the basis of these observations that the biological clock which starts functioning before the fourth day is synchronized by the mother.

Encouraged by these findings, S. Reppert and W. Schwartz (1983) of USA tried to determine the exact time when the clock starts functioning. To do this, they used deoxyglucose marked with a radioisotope. This is a sugar molecule having the same structure as glucose which accumulates in the brain without being completely degraded or metabolized. In 1977, by using this method W. Schwartz had already observed that the metabolism of SCN in adult rats was higher during the day (rest period) than during the night (active period). By injecting pregnant rats with deoxyglucose, Reppert and Schwartz discovered a circadian rhythm regulating metabolic activity of cells of foetal SCN. Rhythm makes its appearance on the third day before birth or immediately after the formation of these nervous structures.

The two research workers later gradually changed the duration of the periods of darkness and light until they had completely inverted the cycles within the 24 hour time-scale. The rhythms of the foetus's SCN remained synchronized to the mother's rhythms, which were regulated by the environment. In order to find out if the foetus' rhythms were synchronized with the mother's rhythms or with the cycle of



darkness and light, Reppert and Schwartz blinded the mother rats. They then changed the light phases once again and observed that the foetus' rhythms continued to be in perfect synchronization with the mother's. And being in tune with the mother's rhythms, the foetus' rhythms were completely out of tunes with environmental rhythms.

Even after birth, the mother continues to impose her rhythm on the litter. If the mother's place is taken by a "nurse" whose cycle of rest activity is different from the real mother's, the newborn's rhythms are regulated by the nurse's rhythms. The role of the mother (or adult who takes her place) as a major synchronizer ceases only after the first week of existence.

A study conducted in 1985 by N. Viswanathan and M.K. Chandrashekar of Madurai University reveals a complementary feature of the mother's role as a synchronizer of her offspring's rhythms. They studied the behavior of small nocturnal rodents (*Mus booduga*) to determine the periods of rest and activity in newborn mice whose mothers had been caught in a pregnant condition near the university campus. To remove the influence of the light synchronizer, the baby mice were kept for half the time in constant darkness and half the time in constant light. It was found that under these conditions it was the presence and absence of the mother's rhythm during a 24 hour cycle which determined the activity rhythm of the baby mice. When the mother was absent, they

became active and when she was there they went to sleep. It thus follows that the mother's presence was identified with the day, which is normal period of rest for this nocturnal species, and her absence signified night. This sense of rhythm arising from maternal contact undoubtedly prepares the baby mice for their subsequent entry into their natural environment outside the nest.

Do biological rhythms influence labour?

Coming back to pregnancy, we don't yet know the mechanism by which the signal for adjusting biological clocks is communicated by the mother to the foetus. Reppert (1985) explored several possibilities without being able to provide any definite answers. It is very important to know what is the role of foetal rhythm. Reppert believed that these rhythms determine the commencement of labour. In rats and other nocturnal animals the peak period for births is during the diurnal period of rest, whereas in human beings it is at night. The foetus' circadian rhythms may be responsible for the rhythm of the secretion of the cortex of the suprarenal gland which plays an important part in triggering off labour. This enables the parent animals to look after their young ones during the phase of activity following their birth, which in the case of rats is during the night.

In human beings only indirect arguments support the thesis that the foetus is provided with a biological clock. In 1974, R.E Ullner of T. Hellbrugge's group in Munich, analysed the diurnal variations in cardiac frequencies and



paradoxical sleep rhythms. In premature babies (generally born during the thirty third week of pregnancy) these two variables produce circadian rhythms immediately after birth. This circadian rhythm is replaced ten days later by predominantly ultradian periods of 90 minutes and later of 12 to 17 hours. The return of circadian and/or ultradian clock exists during a child's intrauterine life.

The development of biological rhythms in chronological order:

F.C Davis working in Los Angeles, USA, suggested a model for the development of biological rhythms in animals. According to him the first stage in development would be the setting into motion of a central biological clock mainly involving the SCN during the intrauterine period. During the second stage, the nerve fibres emanating from this clock probably develop and establish neurological links with the rest of the organism. Circadian rhythms may make their appearance at this stage. There is also a chronological order in the development of biological rhythms. In rats it is as follows : (1) reactions associated with alimentary behaviour; (2) activities of the pineal gland and the sympathetic nervous system; (3) activities of the pituitary gland; (4) all spontaneous activities and (5) the cycle of sleep and wakefulness. Similar phenomena were observed among newborn by Hellbrugge in terms of a certain number of physiological variables. He was able to show that in the same organ, like the kidney for example, the circadian rhythms of different

functions do not appear simultaneously. Hellbrugge has, therefore, suggested that in human beings too, circadian rhythms make their appearance in a particular sequence beginning with the tactile sensation (electric resistance of the skin during the first week of life) followed by acoustic and optical sensation. The rhythm of sleep and wakefulness is established after several weeks with marked individual differences. This is what has emerged from the observations of many researchers and can be easily verified by parents by observing the behavior of their children!

Studies of M. Hallek and A. Reinberg (1983, '84) on infantile epilepsy show what can happen when temporal adaptation mechanisms do not function in newborn babies. They often suffer from a complete desynchronization of their activity and sleep cycles, and the rhythm of their general behaviour. Handicapped by their mental retardation, they find themselves at a greater disadvantage since they are isolated from their surroundings, sleeping when others are awake and active when they are asleep, and vice-versa. Their "chronobiological retardation" and desynchronization causes disorientation, harming their learning process and mental development, and impairs their future as children and adults.





Indian Agriculture

after Globalization and Economic Reforms



Prof. (Dr.) Priti Kashyap

Dept. of Economics
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

The return of various crops have declined due to increase in cost of productions, slow growth of agriculture productivity, weak marketing mechanism, increase in input intensity and fall of water table.

We find that time and again agriculture has been known as the potential sector for industry. India is once considered as the “Ann data” of the entire world is struggling even to manage the own demand supply problem of various agriculture commodities. The farmers are committing suicides, are celebrating “Crop Holidays” and are fighting with Govt. for illegal acquisition of land for developing Real estate or other commercially viable projects at the coast of Agriculture. This paper aims to bring out the present scenario in Indian agriculture that leads to the minimum contribution of Agriculture in Indian GDP which was the main contributor once. This paper discusses the various issues like less technical support to farmers, poor quality seeds, and inappropriate storage. Minimum Support Price, irrigation the problem of credit availability and above all the impact of liberalization, Globalization and Privatization on the Indian Agriculture Sector. The issues related to the WTO and their impact on Indian Agriculture sector will be discussed.

Introduction

Agriculture in general and the small and

marginal farmers in particular have been the worst sufferers from the onslaught of globalization. With more than 40 per cent of agriculture lending even today coming from the non- immiserizing situation. They are committing one of the worst human tragedies suicides. Rural India without them definitely is not shining and with the woeful lack of infrastructure there is a gloom not a bloom in the countryside. A decline in the share of agriculture in the national income from over 550 per cent during the 50s to lessen by 20 per cent today may be a sign of structural transformation but the question today is whether Indian agriculture will be able to meet the new demands placed upon it by Liberalization, Privatization and Globalization(LPG).

1. Agriculture Reforms

A common criticism of India's economic reform is that they have been excessively focused on industrial and trade policy, neglecting agriculture which provides the livelihood of 60 per cent of the population. Critics point to the deceleration in agriculture growth in the second half of the 1990s as



proof of this neglect. However, the notion that trade policy changes have not helped agriculture is clearly a misconception. The reduction of protection to industry, and the accompanying depreciation in the exchange rate, has tilted relative prices in favour of agriculture and helped exports. The share of India's agriculture export in world export of the same commodities increased from 1.1 per cent in 1990 to 1.9 per cent in 1999, whereas it had declined in the ten years before the reforms.

But while agriculture has benefited from trade policy changes, it has suffered in other respects, most notably from the decline in public investment in areas critical agriculture growth, such as irrigation and drainage soil conservation and water management systems, and rural roads. As pointed out by Gulati and Bathla (2001), this decline began much before the reforms, and was actually sharper in the 1980s than in the 1990s. They also point out that while public investment declined, this was more than offset by a rise in private investment in agriculture which accelerated after the reforms. However there is no doubt that investment in agriculture-related infrastructure is critical for achieving higher productivity and this investment is only likely to come from the public sector. Indeed, the trend in private investment could easily be dampened if public investment in these areas is not increased.

The main reason why public investment in rural infrastructure has declined is the deterioration in the fiscal position of the state

governments and the tendency for politically popular but inefficient and even iniquitous subsidies to crowd out more productive investment.

Some of the policies which were crucial in promoting food grain production in earlier years, when this was the prime objectives, are now hindering agriculture diversification. Government price support levels for food grains such as wheat are supposed to set on the basis of the recommendations of the Commission on Agriculture Costs and Prices, a technical body which is expected to calibrate price support to reasonable levels. In recent years, support prices have been fixed at much higher levels encouraging overproduction.

1.2. Indicators of Crisis

- (i) The Government has been reducing the investment on agriculture.
- (ii) The fundamental difference between agriculture and industry is being ignored, viz whereas capital is elastic, land is inelastic. There is no level playing field. While the manufacturing and service sectors are virtually pampered the real/ rural sector that feeds the masses is practically disregarded.
- (iii) An All India phenomenon emanating largely from severe indebtedness has pushed Indian agriculture to a critical condition. The National Sample Survey Organization (NSSO) Report released in 2005 states that 1 in 2 farm households are in debt and only 10 per cent of the debt was incurred for non-production purpose. Also 32.7 per



cent of farmers still depend on money lenders. The National Crime Records Bureau reports that between 1997-2005, 1,56,562 farmers committed suicide.

2. Gross Capital formation in Agriculture and allied sector.

The share of agriculture & allied in total GCF showing a marginal increase during 1999-2000 to 2001-02 has been continuously declining. It stood at 10.2 per cent in 1999-2000, increased to 11.7 per cent in 2001-02. The value of acquisition of new or existing fixed assets by the Agriculture & allied sectors, which is known as Gross Capital Formation, as a proportion to the GDP in the Agriculture & allied sectors stagnated around 14 per cent during 2004-05 to 2006-07. Now, there is a marked improvement in this figure during the current Five Year Plan 2007-12.

3. Trends in India Agriculture

(i) Production of food Grains: In the earlier years of economic planning, food availability was the serious problem in India. The total food grain production was hardly 51 million tonnes in 1950-51 which increased to 198 million tonnes in 2004-05. The food grain production though increased but at a very lower rate from 2004 to 2009-10 as compared to the rate of growth before Liberalization.

(ii) Trends in Cropping Pattern: A change in cropping pattern indicates a shift in area under the cultivation of major crops. Since a long time the area under food grain crop cultivation has been declining, also

indicating that the cultivating of non-food grain crops has been increasing. This shift in cropping pattern was taking place due to remunerative prices being offered to commercial crops and better market access given to growers.

4. Indian Agriculture since WTO.

The Agreement on Agriculture (AOA) with its three broad areas viz, market access, export subsidies and domestic support was expected to improve India's agriculture trade under the new regime of multilateral, transparent and non-discriminatory trade. Although reduction in subsidies is a major feature under WTO, India had nothing to fear as agriculture subsidy was less than 10 per cent. Also the subsidy reduction was not applicable to consumer subsidies, thus keeping the Public Distribution System (PDS) and the weaker sections of society. Further, the reduction in terminal charges on agriculture produce would be advantageous for India because with the removal of tariffs, her exports would have a favourable competitive environment.

Experts began to opine that the international mantras being enforced by the developed countries to free the clutches of poverty and struggle of world farmers including India, was moving in the opposite direction (Pushap, 2007). For India it was not just a problem of slowing growth rate but a multifaceted problem with falling outputs, employment, investment, export etc. The annual compound growth rate in rice for instance showed a fall in crop area from 0.63



per cent in 1981-91 to 1.49 per cent in 2001 05 and its yield rate from 2.68 per cent to 1.60 per cent during the same period.

5. Suggested Policy Measures.

The crisis in agriculture is a crisis of the country as a whole and so needs urgent attention. Some of the suggestions are listed here.

- A revamping of the agriculture credit system pro-farmer approach is needed.
- Cooperative farming with coordination, particularly by small and marginal farmers needs to be revitalized.
- There is a need for periodic revision of the procurement prices for farm produces, making those account the genuine interests of the farmers.
- The issues regarding Special Economic Zones should be resolved at the earliest taking into accounts the genuine interests of the farmers.
- Our farmers must adopt modern practices of farming with a pinch of salt, not sailing on credentials of green revolution but implementing sustainable agriculture. Once cannot simply sail on the credentials of green revolution. Sustainable agriculture should be the objective. Eco- friendly techniques must be adopted.
- Indian agriculture has been hit hard during post WTO period (1995-2003). The return of various crops have declined due to increase in cost of productions, slow growth of agriculture productivity, weak marketing

mechanism, increase in input intensity and fall of water table. As a result farmers have become highly indebted and are resorting to suicides. In the near future also the total quantum of exports particularly agriculture and light manufacturing goods cannot be exported surplus and particularly their inelastic demand at world market.

References

- Government of India (2004) "Agriculture Statistic at a Glance 2007", Ministry of Agriculture, New Delhi
- Gulati, Ashok and Seema Bathla, "Capital Formation in Indian Agriculture : Revisiting the debate". Economic and Political Weekly May 19-25, 36:20 pp, 1697-1708.
- Hans, V Basil (2008) "Inclusive Strategies under Globalization Challenges and Opportunities for India". National Seminar on 'Social Exclusion. Poverty and livelihood of Marginalized Groups in India Need for Effective Strategies'. September 24-25, Centre for study of social Exclusion and Inclusive Policy (CSEIP), Mangalore University, Managalagangothri.
- Kunmaraswamy D.M. (2008) "Agriculture in Karnataka" (Keynote Address), State level Seminar on Agriculture in Karnataka: Issues and Challenges, Sri Dhavala College, Moodbidri.
- Puspa, P. (2007), "India's Backbone Industry and its plight in the wake Globalization", The Journal of World Intellectual Property Rights 3 (1-2): 159-183
- Reserve Bank of India (2006), "Hand Book on Indian Statistics," Dept of Economic Policy and Research, Mumbai.
- Sahu, G. B., and Rajshekhar, D (2005), "Banking Sector reform and credit Flow to Indian Agriculture". Economic and Political Weekly, vol. XL 53, Pp 5550-555
- Sahu, Gagan Bihari (2008). "Supply Analysis of Institutional Credit to Agriculture for Major State in India", Asian Economic Review, 52(2): 325-340.





The Best Learning Takes Place in a Child's Mother Tongue



Language can bridge cultural and ethnic divides. Learning another persons or community language opens a door to their soul.
Languages bring communities and the world together.



Dr. Hansa Gautam
A. N. College, Patna

Every committee that ever devised a curriculum has stated that the best learning takes place in a child's mother tongue. In present time our schools are doing their best to suppress this key to learning. India is a country of diverse culture, food, language and life style but we never talk about language ecology. Language Ecology! Does any text book lesson on India diversity show a linguistic map of even the top hundred languages most widely spoken in the land? Any such exercise only says that we have 22 recognized languages and that the Sahitya Akademi arranges awards for work in 24.

We have to go in the history for the

importance of mother language. We all 'inherit' a language by birth that is closer to our hearts than any other language. It is called native tongue or mother tongue. This is the language we learn to speak as we hear it all the time consciously or unconsciously. As we inherit property from our parents we inherit their "Jubaan" or mother tongue too because our parents and others nearby speak it every moment of the day. Native tongues are worth celebrating and perpetuating



because many of mankind's languages are becoming extinct. This is the idea behind the International Mother Language Day which is being celebrated worldwide on February 21 every year. International Mother Language Day was proclaimed by UNSECO General Conference in November 1999. 21 February is a red letter day in the annals of language history as it represents the day in 1952. When students of Dhaka University demonstrated for recognition of their language Bangla as one of the two natural languages of the East Pakistan (Now Bangladesh) they were shot and killed by police in Dhaka. Infact it was Bangladesh that proposed the very idea of having mother language day to UN.

In this small article I will try to encompass all the ideas and facts related to the need of speaking and why is learning mother tongue and so important. It has been scientifically proven too that the best learning can be done or given is in a child's own mother tongue. We need to recognize, protect and preserve different ethnic groups with their languages for the posterity. I will try to sight few examples taken from different states of India say for Chattishgarh, Uttarakhand, Odisha and Bihar. It shows how the step motherly treatment of one's own mother tongue/language led some languages on the verge of extinction.

I came across an article written by Krishna Kumar in December 2014 in which he said that the doctor who operated on the Baiga (of Chattisgarh) tribals had broken the law because it was illegal to sterilize that community. Why? Because their is a

dwindling ethnic group and their language and the world it carries would disappear if it was not protected. This might be the case of many other languages as well. Not because its speakers will dwindle or disappear but because they choose not to function in their mother tongue. Is this going to be the fate of some of our languages as they fade into great sun of English? I want to supplement with one more example of an extinct language called Raji which is a tribal language being spoken by tribes of Uttarakhand. It has been spoken of by some 1295 members sparsely spread over 11 villages of Pithoragarh , Champawat and US Nagar districts of Uttarakhand and Uttar Pradesh too. Because of their dwindling number, low literacy rate and unequal development, the Ministry of Tribal Affairs has classified them as a Particular Vulnerable Tribal Group (PVTG) and their language Raji is considered by UNESCO as 'severely endangered'. These all came in national daily and it led me to take interest in knowing the history and present position of endangered languages.

The Raji tongue belongs to the Himalayan group of the Tibeto-Burman family of languages. The root cause of Raji's extinction as language is that the speakers of this language start depending on the speakers of other language for their roti-kapda-makan, When a community depends on another one for roti, kapda, makan it can loose its own language because they must continuously communicate in the language of the dominant community for business. And it isn't just their language that is dying -



much of the Vanrawats (speakers of Raji is called as) traditional knowledge of medicinal plant is also on the decline. Theirs close proximity to flora and fauna helped the community discover the medicinal properties of plants and herbs in forests around their village. The sad part of the whole thing is that this knowledge has mostly diminished with the coming of hospital and medical stores in recent times. Nevertheless, researchers have attempted to document the unique ethno medical practices of the Raji's tribe before they fade into oblivion.

Positive steps are being taken by some states to preserve and protect the endangered language. Tribal communities in Odisha are speaking up to save their dialects. They fear that the extinction of mother tongue would sound the death knell for their identities therefore people take ownership of languages. I can take the example of Sora (Saura) a Odia tribal language in particular which shows how noble idea they have invented to save and promote the Sora language in some villages of Odisha's Rayagada district. Every time a woman of the Saura tribe cooks rice for the family she puts aside a handful of raw rice which is collected for a community fund from which 'special' teachers draw their paltry remuneration. What do these teachers do? They teach Sora the fading dialect of the tribe

to the young of the community. In the same way on every Thursday Oraon tribe makes it a point to converse with younger members in Kurux their mother tongue.

In our state too some positive steps can be taken by establishing a language commission. It can invite language interested people to document their research on extinct languages of Bihar and neighbouring states in particular. The Birjia tribe lives in the jungles and hills of the

“ In our state too some positive steps can be taken by establishing a language commission. It can invite language interested people to document their research on extinct languages of Bihar and neighbouring states in particular. ”

Champan and Chhotanagpur plateau in Bihar and Jharkhand. Kaithi is a script which went into oblivion. It was spoken in urban community of Patna and other districts. Birjia belongs to Austro-Asiatic family of languages.

Thus language can bridge cultural and ethnic divides. Learning another persons or community language opens a door to their soul. When we go anywhere in the world and just speak a word or two in the mother tongue of a native we can instantly see the difference it makes. It gives a lot of respect and gives us a lot of confidence as well in a alien country or region. Languages bring communities and the world together. In celebrating languages we are celebrating the very essence of humanity and life.



PERENNIAL QUEST FOR WATER

The early Hindu texts, written around 800-600 BC, reveal a certain knowledge of hydrological relationships. The Vedic hymns, particularly those in the Rig Veda, contain many notes on irrigated agriculture, river courses, dykes, water reservoirs, wells and water lifting structure.



Dr. Ratna Amrit

Associate Professor
Department of History
A.N. College, Patna.

With the first human settlements about 6,000 years ago, began a two-fold struggle with water. On the one hand, people had to protect themselves against floods, on the other, they had to ensure safe water supply for domestic use and irrigation. As a consequence, hydro-technical installations were among the earliest technological achievements of humankind.

Storage of water in cisterns was known by the time the first cities were built. The oldest known cisterns were discovered in Palestine and Greece. These cisterns were used to collect rainwater from roofs, from paved squares and sometimes also from water-bearing subsoil strata. The earliest cisterns were hewn into the rock. Masonry cisterns developed at a later date. From about 2000 BC did mortar begin to be used for sealing these cisterns.¹ By the middle of the first century AD, covered cisterns with storage volumes of up to 75,000 cubic metres (cum) were being built and all the fundamental elements of dam construction were known.

The earliest dams to retain water in large quantities were constructed in Jawa (Jordan) about 3000 BC and in Wadi Garawi (Egypt), about 2600 BC. Though probable, there is little known evidence to show that the science of dam construction emerged in a particular place from where it was taken to others. Several civilisations or states in the ancient world built dams and contributed to human experience and knowledge in this field. Gunther Garbrecht, a water management expert from Braunschweig Technical University, Germany, says there is no evidence to show that ancient dams were built on the basis of mathematical calculations. They were apparently built more by using empirical experience and rules, technical skills and an intimate comprehension of hydraulic forces.

The first great civilisations, in the valleys of the Nile, Tigris, Euphrates, Indus and Huang rivers, flourished only on the basis of water management systems. The Indus Valley Civilisation (3000 BC to about 1500 BC),



which became known with the excavation of Harappa and Mohenjodaro in the early 1920s, covered a vast area. The Indus Valley and Mesopotamian civilisations were connected by close trade relations and strongly influenced each other.² Excellent water supply and sewage disposal systems were the prominent features of these cultures. The standard of their hydro-technical infrastructure was not equalled even 2,000 years later by the Romans, whose supply systems are generally considered excellent. As in Mesopotamia, protection against annual flooding of the Indus river, irrigation to secure and increase crop yield and drainage of large alluvial areas, were prerequisite to the very existence of kingdoms in the Indus valley.

The early Hindu texts, written around 800-600 BC, reveal a certain knowledge of hydrological relationships. The Vedic hymns, particularly those in the Rig Veda, contain many notes on irrigated agriculture, river courses, dykes, water reservoirs, wells and water lifting structure. The Chandogya, one of the principal Upanishads (the philosophical reflections of the Veda, numbering 108 in all), point out:

"The rivers ... all discharge their waters into the sea. They lead from sea to sea, the clouds raise them to the sky as vapour and release them in the form of rain..."²

This is probably the oldest reference to natural processes within the hydrological cycle. It shows that as early as about 1000 BC attempts were being made to interpret and

explain recurrent natural phenomena on the basis of direct experience.

The link between environment and water systems was understood even at the time of the Greek philosopher Plato (427-347 BC), who has written a vivid description of the erosion he witnessed at Attica in Greece:

"... What now remains compared with what then existed is like the skeleton of a sick man, all the fat and soft earth having wasted away and only the bare framework of the land being left. But at that epoch, the country was unimpaired, and for its mountains it had high arable hills...and it had much forest land in its mountains, of which there are visible signs even to this day; for there are some mountains which now have nothing but food for bees, but they had trees not very long ago, and the rafters from those felled there to roof the largest buildings are still sound... Moreover, it was enriched by the early rains from Zeus, which were not lost to it, as now, by flowing from the bare land into the sea; but the soil it had was deep and therein it received the water, storing it up in the retentive loamy soil...it provided all the various districts with abundance of spring waters and streams..."³

This Perennial Quest for water continues. We must find alternative solution in Traditional water harvesting, which is now a dying wisdom.

•



The importance of discipline in life

Discipline is expressed in habits. It helps and governs a man both internally and externally and helps him to do his works according to rules. Children of today are called upon to head and manage government affairs tomorrow. They are the leaders of our country. It teaches us punctuality and sincerity. It teaches us obedience also.



Dr. Ramawatar Singh
P.G. Deptt. of Pol. Sc.
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

In fact, discipline means observing a set of rules of a society or Government. It is an important part of our character.

After freedom its importance has been realised by our leaders. Late Prime Minister Ms. Indira Gandhi gave us Twenty Point Programme. Discipline rightly got the first place in it. Without it we cannot prosper. Today it has become a hard problem. Indiscipline has become a headache for the authorities and the Government. This may well be formed in our youths. Schools and college are the centres of forming discipline in our students. Every now and then we hear trouble in Universities and colleges and schools. Students fighting with the police. Ticketless travel on railways and buses, using unfair means in examinations halls have become very common.

Discipline is very important in every walk of life more so in schools and colleges. School and college going boys are in a formative age. They would become either good or bad citizens according to their education. Discipline plays a very important part in our life. It is a part of our education. It can not be learnt by rote. It is practised and

expressed by way of acquired instincts. It helps in the maintenance of order and good Governance. It teaches us morality. It is necessary for the moral development of a child. It also helps in the formation of character. Character may be defined as a group of good habits. Good habits affect discipline. Habits are second nature. Discipline is expressed in habits. It helps and governs a man both internally and externally and helps him to do his works according to rules. The child is father of the man. Children of today are called upon to head and manage government affairs tomorrow. They are the leaders of our country. It teaches us punctuality and sincerity. It teaches us obedience also.

It may be connected with civic rights. Every student should live and act in such a manner that the school atmosphere is not ruffled. Students and teachers are responsible for the progress and prosperity of the school and college. It is not a set of restrictions imposed upon from outside but a kind of habits formed according to the atmosphere and social rules of a school and college. Well discipline students and



teachers form the tone of a school and college. Even Nature has discipline. It works in a disciplined way. That why we see a rule, order and discipline in Nature.

Indiscipline in schools and colleges takes many forms. It may be individual or in groups. (1) Individual acts of indiscipline are manifested in coming late to school and college, playing truants, spitting indiscriminately on the walls and benches, and writing on the walls and door shutters (2) Group indiscipline is evident in group behaviour in class rooms and at the end of school and college hours destroying school and college properties, fights and quarrels among themselves and with the public, rowdism in play grounds, at cinema gates and public meetings, in buses and at the Examination Centres.

Discipline develops with the development of a child. It may be instilled in them. The improvement in discipline is as much dependant on the teachers and guardians as on the students. Teachers and boys should do their duties earnestly. A school and college having disciplined staff is bound to have disciplined students. Through it boys are taught to work in a right manner. It helps the boys to acquire good habits. It helps a student to be a good citizen. The students

may well be taught to learn discipline and obey a set of rules. The boys must under and the utility of such rules. It should help in the formation of character.

The teachers should be sympathetic towards the boys. He should be active in his class. He should behave in the class in such a manner that the boys feel that they are scratched by the teachers. While teaching the teacher should see that every boy is attentive and active. He takes down what is given on the black board. The teacher should be careful in his dealings with the boys.

The role of guardian should not be neglected. He should see that his sons and daughters behave properly in or out of schools. He is more important than the teachers as the boys have to pass a greater of their time with their father and mother. In order to get the co-operation of guardians co-operation arrangements should be made for frequent meetings of parents. Members of the staff should meet the guardians at regular intervals and get a knowledge of the activities of the boys at home and tell him of any difficulty with the boys. They should also apprise the guardians of the progress and conduct of the boys in the schools and college.

The establishment of self-government



Discipline develops with the development of a child. It may be instilled in them. The improvement in discipline is as much dependant on the teachers and guardians as on the students. Teachers and boys should do their duties earnestly.



in the school and college is very necessary to ensure good discipline. The establishment of school and college Panchayat and School and college Cabinet in which the students play a prominent role is very helpful. The school and college cabinet should be formed from the students. Members of the school cabinet may be put in charge of different subjects in the school like health and cleanliness, Mass prayer meetings, debating societies, school and college games and sports etc.

In order to ensure discipline in schools and colleges political workers should in no case be allowed to contact boys in groups for

their own gains. It has become a habit with the political workers to attract school and college boys to carry flags in procession and stage a march against some authorities. No political meeting is successfully organised without the students. If discipline is to be desired politics should not be allowed in schools.

In schools and colleges group should be encouraged Co-curricular activities like Boy Scouts and guides, N.C.C. and Social Services will help and promote a proper sense of discipline. As such, discipline is a part and parcel of life. Its value is beyond description.

**"DISCIPLINE
DETERMINES
YOUR LEVEL OF
SUCCESS"**





Fullerenes : A Journey

Buckyball's ability to trap different atoms and molecules has successful application in medical and biomedical fields e.g. radioisotope encapsulated C_{60} has successful application in cancer therapy.



Dr. Anil Kr. Singh

Associate Professor
Dept. of Chemistry
A. N. College, Patna

C₆₀ fullerenes affectionately called as “Bucky ball”. The soccer ball shaped carbon molecule deemed to be the third crystalline allotrope of carbon after graphite and diamond. This particular molecule or cluster were made up of 60 carbon atoms (Figure 1). It was detected by Dr. Richard E. Smalley and Dr. Robert F. Curl of RIA University, USA and Dr. Herald Kroto, Sussex University, UK in the year 1985. They got “Noble Prize” in chemistry in the year 1996. It was a chance discovery like others.

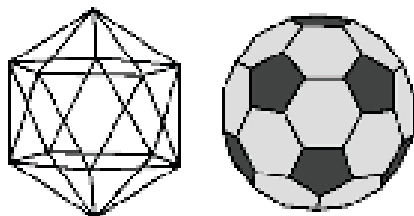


Figure 1: Resemblance in between Fullerene and Buckyball

Fullerene doesn't mean a separate molecule or cluster rather all the members of a special class of carbon clusters formed by laser vaporization of graphite in a helium atmosphere are

termed as Fullerene. So, it is better to term them together as Fullerene and term the individual molecules as C_{60} fullerene, C_{70} fullerene etc. These clusters differ from each other in the number of carbon atoms $C_{20, 32, 60, 70, 90, \dots, 540}$ as well as their configurations. But the important similarity in them is that all these structures are made up of combinations of pentagons and hexagons.

The difference in the configurations among the fullerene comes from variation in the number of pentagons and hexagons and the manner in which they are combined e.g., in C_{60} fullerene, 12 pentagons and 20 hexagons have combined to give rise to a perfect football like structure, in C_{70} 12 pentagons combined with 25 hexagons and the molecule has a rugby ball like shape (Figure 2). All these structures are similar to the famous 'Geodesic dome' invented by American engineer R. Buckminster Fuller. So

“ **Pioneer scientist trio named the new class of carbon molecules Buckminster Fullerene or Fullerene, in the honour of Dr. Fuller.** ”

the pioneer scientist trio named the new class of carbon molecules Buckminster Fullerene or



Fullerene, in the honour of Dr. Fuller.

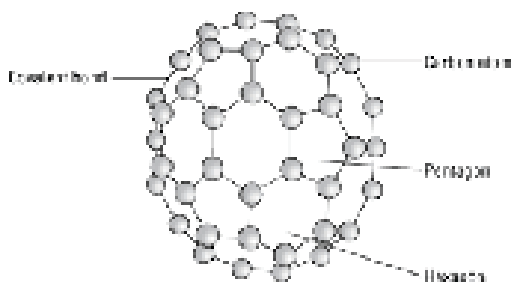


Figure 2: Arrangement of Pentagons and Hexagons in Fullerene

Among the number of fullerene family C_{60} has some unique structural feature, symmetry of this molecule is perfect. The relative position of each and every carbon atom of C_{60} is exactly identical to that of other 59 carbon atoms. Such a perfect symmetry which is the highest degree of symmetry is possible in 3 dimensional Euclidian geometry has gifted a unique stability to C_{60} . The eminent mathematician Leonard Euler one's proved mathematically that such a spheroid structure made up of 60 carbon atoms will require 20 pentagons and 20 hexagons to be built up. All the members of fullerene family do not possess equal stability; the more structure is away from the elegant configuration of C_{60} , the more it loses its stability. Even C_{70} which is the least deviated from that football shape is somewhat less stable than C_{60} . This elegant configuration and unique stability makes C_{60} the most abundant among the fullerenes.

Another important property of buck ball which rests on its configuration is its purity. It is the purest form of solid carbon. Dr. Smalley

and Dr. Curl have quoted in Scientific American in October 1991, "It is the only pure, finite form, the other two diamonds and graphite are actually infinite network solids. In the real world, one usually deals with hunks of diamond cut out of larger bulk crystals. Under normal conditions, the surfaces of such piece are instantly covered with hydrogen which ties up the dangling surface bonds. No piece of diamond therefore can ever be truly pure under normal conditions. Graphite is much same. The fullerene on the other hand, needs no other atoms to satisfy their chemical bonding requirements on the surface. In the sense, the fullerenes are the first and only stable forms of pure, finite carbon".

Joanne M. Hunter and her colleagues at Northern University, Evanston have explained as to how do sixty carbon atoms came together to give rise to a soccer ball like shape rather than any other one. They concluded that the carbon atoms at first form paired hexagonal rings around which a long chain of carbon extends. These paired structure close up in a process called "Bergman Cyclisation Process" thereby forming a fullerene fragment which serves as some seed studies. Around such seeds the gangling carbon chain links themselves into pentagons and hexagons. Finally chain spiral around the seed as zip up to form as spheroid fullerene structure. The whole transformation is driven by a very small amount of heat which accounts for the extra stability of this structure.

Fullerenes have made their way into the



world of chemistry through different route which rotates their properties with polymers. Bucky ball itself has been polymerized by the UV irradiation process in absence of oxygen or by plasma discharge into $(C_{60})_n$ where the value of n is around 20. But more interesting is to in seat buck ball cages into long polymeric chains of hydrocarbons like poly (1,3-butadiene) to make a pearl necklace structure. Starting from reactive hydroxyl group of extensively hydroxylated fullerenes same or different polymeric chains can be attached to C_{60} cage. These are called as “star burst” polymers or deridrimers. These polymer analogues of fullerenes have brought newer promises for the technological world and prospects for better utilization of fullerenes.

The novel electrical and electronic properties of fullerenes in different compounds are very interesting. In different compounds, fullerenes changes its property from being an insulator to turn into a superconductor. Buckyball is an insulator in its pure form (band gap=2.2 ev). But it becomes superconductor when suitably doped. This doping may involves putting a dopant atom or molecule inside the cage or some other appropriate route forming buckide salts. Fulleride or buckide salts conducts electricity. Conductivity increases with increased metal doping and reaches a maxima at C_{60} : metal ratio is 1:3, M_3C_{60} (where M is metal) is a high temperature superconductor with a T_c of 18K to 28K.

Buckyball is an insulator in its pure form (band gap=2.2 ev). But it becomes superconductor when suitably doped.

Mixed doping with Cs and Rb results in the formation of superconductor Cs_2RbC_{60} with a T_c at 33K. discovery of superconductivity in buckides has given a impact of fullerenes research.

Buckyball's ability to trap different atoms and molecules has successful application in medical and biomedical fields e.g. radioisotope encapsulated C_{60} has successful application in cancer therapy. HIV protease,

an enzyme essential for growth of AIDS virus HIV, has a diameter almost equal to that of C_{60} cage, therefore C_{60} 's capabilities to encapsulate HIV protease may have

immense importance in AIDS therapy.

Important applications of catalytic amounts of buckyball have been found. It can improve antiwear, antiseize, antifricition properties of lubricating oils. In petrochemical refining industries, efficient production of many hydrocarbon products are often hindered by undesirable polymerization of reactive olefins. Fullerene in ppm level can inhibit such thermal polymerization and thereby improves the refining efficiency. Dissolved fullerene inhibits coke forming on a catalyst and may therefore be used as an anticooling agent.

The boundary between theory and practice is becoming thinner as the world of fullerenes is being explored. So, a long journey still lies ahead before we can read the playground where we can really play with buckyball.





Exclusion and Inclusion in Indian Society

An Educational Perspective

True to the spirit of Right to Education (RTE) one may conclusively aver that the emancipation of the mind and the soul is a necessary preliminary for the social, economic, political as well as cultural expansion of the people.



Dr. Tanya Mukherjee

Associate Prof. & Head
Dept. of Philosophy
A. N. College, Patna

Indian society has grown in the midst of various inconsistencies, contradictions and strife. The establishment of democratic values like liberty, equality and fraternity is generally being advocated in all the civilised nations today. Indian constitution also sought to introduce such values in our society but to translate this agenda into concrete reality, revolutionary changes in our ideas and thought need to be engendered. While such initiatives must be undertaken by all the sections of our society, the intellectual class has to play a directive role to lead the society. Universities should be at the vanguard of the social movement called for the purpose because as Dr. B.R. Ambedkar has rightly observed:

"Coming as I do from the lower order of the Hindu society, I know what is the value of education. The problem of raising the lower order is deemed to be economic. This is a great mistake. The problem of raising the lower order in India is not to feed them, to clothe them and make them serve the higher order as is the ancient ideal of this country. The problem of the lower order is to remove from them that inferiority complex which has stunted their growth and made them slaves to others, to create in them the consciousness of the significance of their lives for themselves and for the country, of

which they have been cruelly robbed by the existing social order. Nothing can achieve this except the spread of higher education. This in my opinion is the panacea of our social troubles."

Earlier Mahatma Jyotiba Rao Phule, Dr. Ambedkar's mentor, had criticized colonial and Brahmanical education system stating that its sole purpose was to nourish caste and gender inequality, which in turn took away the students from reality. He writes : "(Brahmanical schools) teach them (shudratishudra students) only the basic letter and modi, some shlok in Prakrit relating to pretentious and false Puranas and few songs and teach them lavanis, making them educated enough to write such things. Never giving them sufficient knowledge even to keep account of expenses at home. So how would they enter into the mamaletdar's office and become even clerks".

The descriptive -memory based pedagogy did not impart any occupational or technical skills to students. It failed to respect student's ability of creative thinking and thereby treated them merely as means of education. Phule was against this tendency of conceiving education as a matter of merely



intellect and argued that intellect and physical labour are inseparable. By attacking the tendency of putting inferiority on labour he urged that schools should be aligned with industries in view to impart professional and technical education empowering Shudratishudra students in tackling the predicament of practical life and turning them into independent and thinking individuals.

Mahatma Phule considered social location of experience as the authentic ground for knowledge. He rejected Brahmanical knowledge because it doesn't possess concrete experience of women and caste subaltern. He cited Kabir's words *Jis tan lage wohi tan jane bija kya jane gavara re* (the affected body only can know the pain, others cannot know it)) to describe the day-to-day pathetic condition of peasantry and the harrowing experiences of women, including those of the Brahman caste.

Spearheading the attack on Brahmanical culture, Phule construed that the upper castes in India had established their dominance using both coercion and consent. They also cunningly took advantage of the British Rule. One of the objectives of writing *Slavery* was to "open the eyes of the Government" and advise the British to keep the Brahmins at bay.

Phule was the first to recognize the importance of education in democratic revolution. That is why he had stressed universalisation of education, particularly for the strishudratishudra, i.e. women, Shudra and ati-shudra castes. His proposal for compulsory primary education submitted to the First Indian Commission on Education,

popularly known as Hunter Commission, are relevant even today:

- 1) Spread of women's education on a large scale;
- 2) Spread of education among the Mahars and Mangs
- 3) Spread of education among the minorities like Muslims and
- 4) Spread of education among the rural areas.

The Sarwa Shiksha Abhiyan (A programme for Universalisation of Elementary Education) (henceforth, SSA) was started in 2000-01. Many inspirational programmes like mid-day meal, free textbooks, attendance allowance, stipend, teacher training were started. However, all such attempts failed to stop a high rate of drop out and continuously deteriorating quality.

Hence, true to the spirit of Right to Education (RTE) one may conclusively aver that the emancipation of the mind and the soul is a necessary preliminary for the social, economic, political as well as cultural expansion of the people. And to achieve the educational goals applauded in the Constitution of India, the major hindrance of caste-class-gender inequality in India has to be overcome.

REFERENCES:

1. B.R. Ambedkar, Dr. Babasaheb Ambedkar Writings and Speeches, Vol. 2, Bombay : The Education Department, 1982.
2. Pradeep Gaikwad (ed.) *Dalitanchi Shikshan* : Dr. Bhimrao Ramji Ambedkar, (1994). Nagpur : Kshitij Publications, 2008.
3. Jyotirao Phule, Keer-Malashe (ed.), *Mahatma Phule Samgra Wangmay*, Mumbai : Maharashtra Rajya Sahitya Sanskriti Mandal, 1980.



BIN PANI SAB SUN

The sources are fast drying out Some times there is excess and sometimes drought Life battle is to be taken care of and fought So the slogan 'save water, save life' is sought.



Dr. Subhash Pd. Singh

Associate Professor, Dept of Che,
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

Water is an integral part of life. Life without water is impossible. People must be made to realize that water was not something to be handled carelessly, like an inanimate object. Water was not merely H_2O , but a living organism with its own laws commanding respect from mankind, if the consequences were not to be fatal.

Water crisis pertains to a situation where there is a lack of access to potable and fresh water for drinking and sanitation. The concept of water scarcity may also refer to the difficulty in obtaining fresh water sources and the deterioration and depletion of the available water sources. Some of the contributing factors to water scarcity are deforestation, climate change, water overuse, sand mining, increased pollution and over extraction of groundwater. Unequal distribution of water over time and space resulted scarce of water. Much of it is wasted, polluted and unsustainably managed. About 2.8 billion people experience water scarcity each and every year. Many areas around the globe are affected by water scarcity. Based on the report of United Nations (UN) on 'water for life', it is expected that two-thirds of the world population may face water shortage by 2025. It started affecting each and every

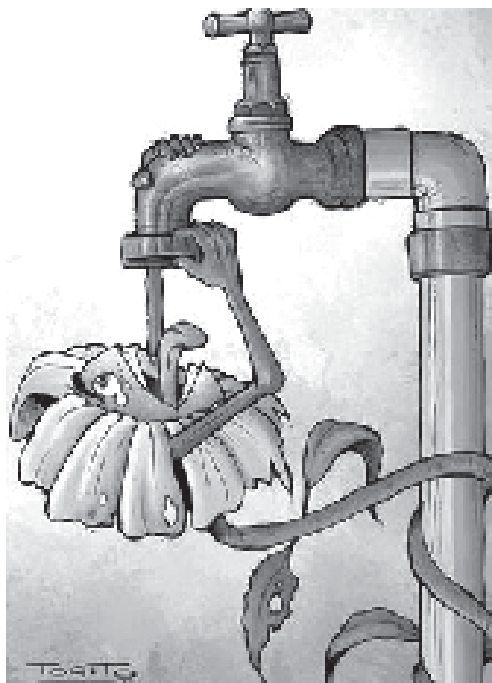


continent around the world at least 1-2 months out of every year. Not only in Rajasthan but Bundelkhand of UP and many other parts of India including Bihar is facing potable water these days. There is no Jal in Jal



Mahal of Jaipur. Mandakini of Chitrakut is dried. Holy rivers like Ganges, Yamuna, etc., are by now full of toxic sludge. People are blindly moving towards materialistic way of life ignoring the importance of precious water. In scarcity of water, lyrics of Sahir Ludhianvi from the film 'Pyasa' reminds us song sung by Md Rafi 'Ye duniya agar mil bhi jaye to kya hai'.

Learning is a continual process. Once we enjoyed with the green revolution in Punjab using groundwater but now we repent saying that green revolution is rather a curse. Blindly we gave up using open well and shifted to bore well. It resulted in fall of water table in aquifer. The same time, deforestation continued, sand mining carried over, ponds and well were filled up. The author would like to draw the attention of The Govt. of Bihar for one of the seven Nischay of Nitish led Govt 'Har Ghar Nal Ka Jal' to provide clean and secured water to every resident of Bihar by connecting all household with water pipeline connection. Under this scheme, it is targeted to remove all the hand pumps by which the people of Bihar depend on their water need. Drilling deep bore of 400 feet or more under this scheme to extract voluminous water from deep aquifer seems no way good for us in future. Rather it would have been better if water through Nal Ka Jal is provided to only those who have had provision of recharging the aquifer through their existing bore hole. Govt. may take serious initiatives to include recharging part in the locality with its 'Jalapurti Yojna. It is the high time to review this Yojna by the Govt.



The Waterman of India Rajendra Singh says that how one can extract groundwater ignoring the recharge of aquifer. Before to use, one has to fill it. It is appreciable on the part of Govt that ponds (a type of rainwater storage tank) are getting revived in the villages. Rajendra has brought water back to regions of Alwar, Rajasthan that were dry for years, and has brought rivers back to life after decades of being dry. It took 15 years the people of Alwar region now have a sustainable way to keep their groundwater levels high which will allow them to farm and keep their villages alive for centuries to come. Water not only important for our survival but it is symbolism of beauties in several facet of our life and emotion. It reminds me a song sung by Mukesh in the film 'Shor'



**Pani re pani tera rang kaisa, jisme mila do
lage us jaisa**

#Is duniya me jine vale aise bhi hai jite

Rukhi-sukhi khate hai aur thanda pani pite

Tere ek hi ghunt se milata jannat ka aram

**Pani re pani tera rang kaisa, bhukhe ki
bhukh aur pyas jaisa**

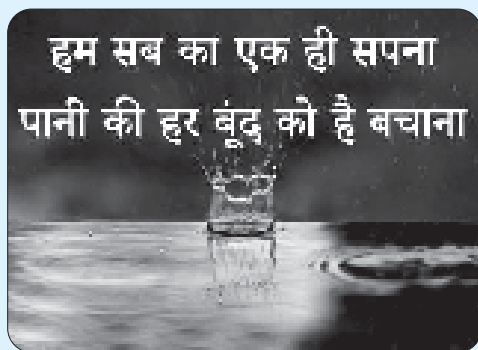
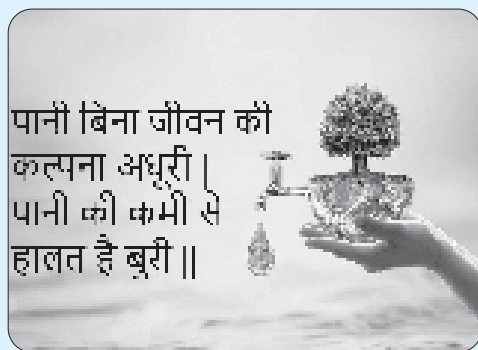
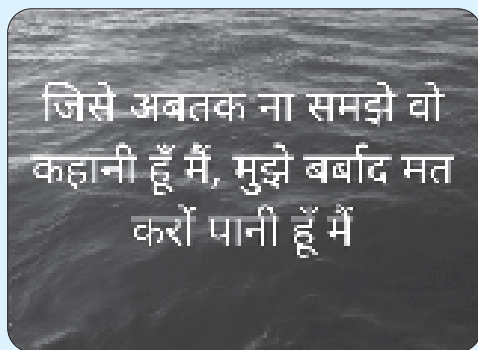
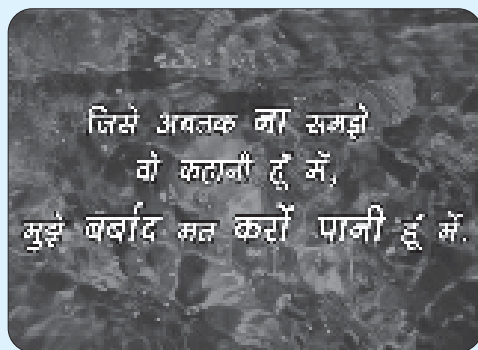
pani re pani o pani pani re pani

The song of film, Mohra, '**Tip tip barsa paani,
paani ne aag lagayi.....**' or the song of film,
Kala Bazar '**Rim jhim ke taraane leke aayi
barasaat, Yaad aaye kisi se vo pahali
mulaaqaat.....**' and many more are
symbolism of happiness in our life through
water.

Water nourishes and sustains the spirit
as well as our body. It purifies and uplifts the
individuals as has been mentioned in our
religion. But scarce of water is troubling. The
following lines of Hasmukh Amathalal
awakens us;

The sources are fast drying out Some
times there is excess and sometimes drought
Life battle is to be taken care of and fought So
the slogan 'save water, save life' is sought.

In nutshell, 'Bin Pani Sab Sun'. Plant more
Trees, Don't waste Water, Save Water,
Recharge Aquifer & Harvest Rainwater are
therefore, the only Key Mantras to save our





Declining Ground Water The Indian Perspective

The depth at which soil pore spaces or fractures and voids in rock become completely saturated with water is called water table. It is the depth from the surface at which ground water is found which may be shallow or may be very deep.

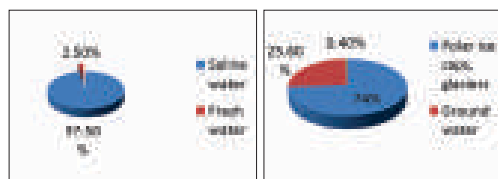


Dr. Sushil Kr. Singh
Associate Professor
Dept. of Botany
A. N. College, Patna

Ground water is the water present beneath the surface in soil pore spaces and in the fractured rocks. It is that water which percolates through soil and rocks and it is stored below the soil. The rock or an unconsolidated deposit when it can yield usable quantity of water is called aquifer. It is gravel, sand, sandstone or limestone which constitutes aquifers. Usually it is thought that ground water is the water which flows through shallow aquifers. But in the technical sense the ground water includes soil moisture, permafrost, immobile water in very low permeability bedrocks and deep geothermal or oil formation water. The depth at which soil pore spaces or fractures and voids in rock become completely saturated with water is called water table. It is the depth from the surface at which ground water is found which may be shallow or may be very deep. Rains can cause the water table to rise and extraction of the ground water can cause the level to fall.

Only 25.6 % of fresh water is ground water and the fresh water is only 2.5% of total water present on earth whereas 97.5% water is saline water. 74% of remaining fresh water

is present in polar ice caps and glaciers and only 0.4% fresh water is present in lakes, rivers and soil moisture. It is clear that the ground water is just one fourth of the total fresh water and in global term it is just over 0.5% of total water available on the earth. The salt concentration of water of marine system is so high that it is not readily usable. It is only the fresh water which is useful for human beings. The amount of fresh water is not only low its distribution is very uneven also.



Ground water is often cheaper more convenient and less vulnerable to pollution than surface water. Therefore, it is extensively extracted for domestic use, agriculture and industries.

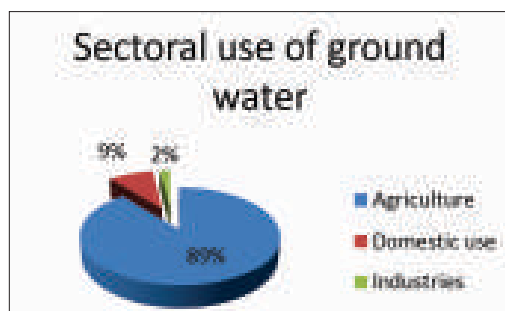
Since the ground water was abundantly available it was used in indiscriminate manner. It is still being used very indiscriminately where availability of ground



water it not an issue. But in large part of country depletion of ground water and decline in quality of water are being reported. It has another dimension also- the water as resource is not evenly distributed across the globe including India. Ground water has emerged as the lifeline of India's water supply with at least a billion using ground water every day of the year. On the annual scale India's usage of ground water is 25% of the global water extraction which is the highest in the world.

Ground water extraction and use:

In India the availability of surface water is more than that of groundwater. But it is ground water which is being more extensively used. 89% of total ground water is used in agriculture, 9% of the groundwater is used for domestic use. Only & 2% of the groundwater is used in industries. 50% of urban requirements and 85% of rural domestic requirements are fulfilled by ground water.



Over the years there has been a decrease in surface water use for irrigation and increase in ground water utilization for irrigation. The trend was catalyzed by green revolution which depended on intensive use of inputs such as water and fertilizers and use

of seeds of high yielding varieties.

Low power tariff or free power has led to excessive water usage, which has led to sharp fall in water table. Incentives like credit for irrigation equipment and subsidies for electricity supplies have further worsened the situations. Various schemes like free water or free electricity for a section of society is likely to accentuate the problem.

Declining Ground water availability:

The annual water availability of the country in terms of natural run off in rivers is approximately 1869 Billion cubic Metric (BCM)/year as in April 2015, whereas the usable water resources of the country is 1123 BCM/year only. The constraints of topography and uneven distribution in various river basins are main reasons for the inability to extract the entire available 1869 BCM/yr. Out of 1123 BCM/yr. the share of surface water and ground water is 690 BCM/yr. and 433 BCM/yr., respectively. The net annual ground water availability for the entire country is 398 BCM/year after deducing 35 BCM/yr. for natural discharge.

68% of ground water, resource is contributed by rainfall. Remaining 32% of ground water is contributed by canal seepage, return flow from irrigation, recharge from ponds, tanks and various structures meant for conservation of water.

Ground water consumption is assessed on the basis of ground water development which indicates availability of ground water for use. The Ground water development is a ratio of the annual ground water extraction to the net annual ground water availability.



Sources of ground water



Study of ground water development of two decades indicates that

- (i) In 1995, 92% districts were safe so far as ground water development was concerned. The percentage of districts declined to 71% in 2011.
- (ii) The percentage of districts which were in semi critical stage increased from 4% in 1995 to 10% in 2011.
- (iii) In 1995 only 1% districts were placed in over exploited category which increased to 15% in 2011.

If the level of ground water development is very high; it implies that annual ground water consumption is more than ground water recharge. It has been observed that there is increase in overall ground water development from 58% in 2004 to 62% in 2011. It has been observed that

problem of either availability of ground water or quality of ground water or both are present in nearly 60% of total districts of our country. There are some major reasons for depletion of ground water in India which are as follows:

- (i) Dependence of very large population on ground water,
- (ii) Inefficient irrigation system,
- (iii) Archaic human practices,
- (iv) Urbanization and land scape change without any proper strategy
- (v) 84% of the total addition to the net irrigated area has come from ground water,
- (vi) There is no correlation between cropping pattern and cropping intensity with availability of ground water in the area,
- (vii) Uncertain climate reliant recharge processes,
- (viii) India is among top 10 virtual water exporting countries (1995-99) and
- (ix) Due to poor efficiency in the usage of water for agriculture there is huge consumption of ground water in agriculture.

Our poor efficiency in usage of water for agriculture compared to that US and China is evident from following table:

grow crops in	Amount of water in cubic metre/ tonne to		
	India	China	US
Crop			
Rice	2800	1321	1275
Wheat	1654	690	849
Sugar cane	159	117	103

Source: National Water Footprint Account, UNESCO

Consequences of declining Ground water:

There are many consequences of declining ground table. These are as follows:



- I. As a result of excess extraction of ground-water levels of water table are declining rapidly. So, the depth of water level increases and the water must be lifted higher to reach the land surface. As the lift distance increases, greater amount of energy is required to run the pump. It increases power costs. With decline of ground-water levels it may be required to go for deeper boring for the pumps, it may necessitate deepening the well, or drilling a deeper replacement well.
- II. The surface water system and ground water systems are closely linked in most areas. Ground-water extraction has the potential to change pattern of movement of water between an aquifer and a stream, lake, or wetland. It would be done by either intercepting ground-water flow that discharges into the surface-water body under natural conditions, or by increasing the rate of water movement from the surface-water body into an aquifer. In either case, the net result is a reduction of flow to surface water.
- III. Under natural conditions the boundary between the freshwater and saltwater tends to be relatively stable, but excess extraction of ground water can cause saltwater to migrate inland, resulting in saltwater contamination of the water supply. For example, in Chennai overexploitation of ground water in the Minjur well field has resulted in rapid ingress of sea water. Withdrawal of good-quality water from the upper parts of inland aquifers can allow underlying saline water to move upward and degrade water quality. Additionally, where ground water is pumped from an aquifer, surface water of poor or differing quality may be drawn into the aquifer. This can degrade the water quality of the aquifer directly or mobilize naturally occurring contaminants in the aquifer.
- IV. Land subsidence is “a gradual settling or sudden sinking of the Earth’s surface owing to subsurface movement of earth materials.” Though several different earth processes can cause subsidence, large number of the subsidence is related to the withdrawal of ground water. For example, in Kolkata the reckless ground water exploitation has resulted in land subsidence in the central and southern part of the city.
- V. The decline of ground-water may lower ground-water levels below the depth that streamside or wetland vegetation needs to survive. The overall effect is a loss of riparian vegetation and wildlife habitat.
- VI. Ground water has got natural contaminants. It has arsenic, fluoride, nitrate and iron in an amount which is greater than permissible limit. These pollutants are geogenic in nature due to excessive extraction of ground water. It is posing serious health risks for millions of Indians across the country. The ground water has other contaminants also which include bacteria, phosphates and heavy metals. The source of



contamination includes leachates from landfills, septic tanks and from improper use of fertilizers and pesticides.

VII. Declining ground water may deprive marginalised and vulnerable communities the access to clean water which further pushes them towards a vicious circle of poverty.

How to reverse the trend?

The strategy to prevent decline of the ground water level should be two pronged: Firstly, there should be decrease in dependence on ground water, and secondly, serious effort should be made for artificial recharge of ground water.

The strategy to decrease dependence on ground water should include

- Replacing crops like rice and wheat which require high amount of water with other crops like maize, millets, sorghum which are suitable to geographies could reduce irrigation water demand by one-third. Choice of crop needs to be matched with ecology and the amount of water available in the area it is being produced in,
- India should rationalize export of ground water in form of virtual water. Our country is the third largest exporter of groundwater 12 per cent of the global total,
- Better price, support for pulses and oil seeds which would lead to diversification of cropping pattern,
- Dry season crop planning for specific area,

- Use of surface water system for irrigation,
- Use of more efficient irrigation system like drip and sprinkler systems and
- Regulations for use of ground water.

So as the artificial recharge of ground water is concerned it is essential component of any strategy to make ground water a sustainable resource. Artificial recharge is the process by which ground water is augmented at a rate exceeding that under natural condition of replenishment. Therefore, any man-made facility that adds water to an aquifer may be considered as artificial recharge. It aims at augmenting the natural replenishment of ground water storage by some method of construction, spreading of water, or by artificially changing natural conditions. It is useful for reducing overdraft, conserving surface run-off and increasing available groundwater supplies.

Conclusion:

The harsh reality is that India is currently ranked 120 among 122 countries in the water quality index. The report by WaterAid, a non-profit organisation, titled "Beneath the Surface: The State of the World's Water 2019", said India accounted for almost one-fourth of the total groundwater extracted globally, more than that of China and the US combined. It said India also used the largest amount of groundwater 24 per cent of the global total - and the country's rate of groundwater depletion increased by 23 per cent between 2000 and 2010. "In 2014-15, India exported 37.2 lakh tonnes of basmati. To export this rice, the country used around 10 trillion litres of water, meaning India



virtually exported 10 trillion litres of water," said the report released ahead of World Water Day. These are the facts which can not be put under the carpet, rather better water management practices should be adopted. There are a variety of reasons like- population growth, increasing affluence, expansion of business activity, rapid urbanization and climate change which are going to increase the demand of fresh water substantially which in turn would be obtained from ground water. Scientifically prudent, adaptive ground water management strategies and local practices are immediately required to secure, sustain and rejuvenate the accessible yet unpolluted ground water. A proper policy may transform our country from ground

water deficient country to ground water sufficient nation.

References:

1. Catch the Water Where It Falls- Toolkit on Urban Rainwater Harvesting published by Centre for Science and Environment
2. Facts and trends-water, World Business Council for Sustainable Development, www.unwater.org (accessed on 14th May 17)
3. <https://pubs.usgs.gov/fs/fs-103-03> (accessed on 24th April 19)
4. <https://www.instagram.com/ndtv/> (accessed on 15th April 19)
5. <https://en.wikipedia.org/wiki/Groundwater> (accessed on 15th April 19)
6. <https://www.prsindia.org/> Overview of Ground Water in Water (accessed on 15th April 19)
7. Water on earth, <https://www.tewa.org/story-of-water/html/earth.htm>. full (accessed on 15th April, 2019).

“Be yourself; everyone else is already taken.”
— **Oscar Wilde**

“Be the change that you wish to see in the world.”
— **Mahatma Gandhi**

“There are only two ways to live your life.
One is as though nothing is a miracle.
The other is as though everything is a miracle.”
— **Albert Einstein**

“I have not failed.
I've just found 10,000 ways that won't work.”
— **Thomas A. Edison**



Vertical Plantation & Vertical Farming

Vertical plantation is proved very useful in multistoried buildings. Vertical farms are modular and can be adjusted to fit any building, any house with small space to give greenery and flowers.



Dr. Shabana Karim

Associate Professor
Dept. of Botany
A. N. College, Patna

Nowadays in urban areas new concept of greenery can be seen and this makes eyes cool and fresh. In metro cities this type of farming can be seen on walls of Malls, long boundary walls on pillars of bridges and road side. What are they? Yes this is vertical plantation. When I saw, I was so curious to develop this on wall and boundary wall of my house. They are really very attractive and full of greenery and flowers and can be developed & maintained throughout the year.

What is vertical plantation : Vertical plantation is a good alternative farming. It is a new dimension of plantation which emerges nowadays mostly in urban areas. It is very useful in the areas where there is a concrete road, places where soil is less. It is an alternative way of greenery where plantation is not possible. It is an attractive idea to make greenery and a good environment to the area where vegetation is very less. Vertical farming is not only way of plantation but makes area good looking, full of greenery and flowers thus it is an eco-friendly concept.

We can opt varieties of ways to develop vertical gardening. We can choose plants like Asparagus, Begonia, exotic grasses, varieties



of money plants, Mentha, Dracaena, species of Aloe vera, succulents, cactus plants, climbers, seasonal plants, other exotic varieties of plants. In vertical plantation there is use of less soil, less amount of water, moderate temperature, humidity and carbon-di-oxide. Plants are tolerable to pollution heat and direct sun. Thus vertical plantation is a sustainable method of greenery as it lowers the water consumption upto 70-95% and saves space and soil as well. It will bring revolution in coming future.



Vertical plantation is proved very useful in multistoried buildings. Vertical farms are modular and can be adjusted to fit any building any house with small space to give greenery and flowers.

Plants on walls : Herbert is a wall mounted hydroponic plants which can grow in home. Simple and efficient to grow in pocket pot on walls, and this is also known as Urban Garden Web, Vertigro, Window Farm etc.

What is window farm : It is hydroponic urban greenery or gardening system. It is an indoor garden which allows for year-round growing in almost any window. Plants uses natural light climate of living space, organic liquid soil. Window farms with woolly pockets generally very useful and attractive for small space hocuses or flats of an apartments. It increases greenery floral attraction and useful even in growing tomato, chilies strawberries etc. Tomato Planter use window farms to grow tomatoes in woolly pocket pot.

The LED light allows to control shape, size, texture, colour, nutrition of the plant with increased yield. Thus LED light play an important role & it also use 50% less energy compared to traditional indoor growing systems. Vertical plantation is commercially viable due to low cost base, small scale business, LED costs and leafy plants. Besides



greenery & flowering plants vegetables and fruits like strawberries, tomato chilies etc. are also use to yield.

Nowadays in foreign countries vertical plantation is very popular. It emerges as vertical farming and become a kind of agricultural business and small scale industries in coming future. It is known by various names like Aerofarms, Infarm, Sundrop Farms, Vertical Greenery, Skyland, Vertical Farming, Vertical Garden, Windowfarm, Localize Vertical Farm, Vertical Harvest, etc.

Window farms with woolly pockets generally very useful and attractive for small space hocuses or flats of an apartments. It increases greenery floral attraction and useful even in growing tomato, chilies strawberries etc.

Tomato Planter use window farms to grow tom



In near future Shanghai is going to be the epicenter of vertical farming of vegetables and fruits. Most of the countries are following the paths of Shanghai. In the deserts of Port Augusta, Australia, this vertical farming produces tones of fruits and vegetables. In Japan a soil less and sunless robotic-operated vertical farming has been established plenty of lettuce per day.

About Vertical Farms : Vertical farms grow food without use of pesticides and fungicides, so the food is healthier and safer. This farming is reduces water consumption lesser than outdoor farming, so having a wet or dry season does not matter. Broadly speaking there is no impact of climate change on Vertical plantation or Vertical farming. Indoor farming can also control

plant fertilizing nutrients so the food becomes highly nutritious.

CEA (Controlled Environment Agriculture) Technology : Vertical farming based on CEA technology, which approach towards food production.

Aims of CEA:

- To provide protection and maintain optimal growing conditions throughout the development of the vertical crop.
- Production occurs within building or in green houses, plants are grown by hydroponic methods.
- Small amount but proper amount of water supply and nutrients to the root zone.
- CEA method optimizes the use of resources like water, energy, space etc.
- This technology includes use of hydroponics, aquaculture and aquaponics.
- Other variables like Temperature, Humidity, Carbon-di-oxide, light (intensity, spectrum, interval). Nutrient concentration, Fertilizers, Nutrient pH (Acidity).

This technology gives fully automated glass houses with computer controls for watering.

Thus vertical farming is a technique to produce fruits, vegetables and other food in

vertical farming is a technique to produce fruits, vegetables and other food in vertically stacked layers in apartments, multistoried buildings etc. The modern ideas of vertical farming use indoor farming techniques and CEA technology.



vertically stacked layers in apartments, multistoried buildings etc. The modern ideas of vertical farming use indoor farming techniques and CEA technology.



Vertical Farming is the practice of producing food in vertically stacked layers, such as in a skyscraper, used warehouse, or shipping container. The modern ideas of vertical farming use indoor farming techniques and controlled-environment agriculture (CEA) technology, where all environmental factors can be controlled. These facilities utilize artificial control of light, environmental control (humidity, temperature, gases) and fertigation. Some vertical farms use techniques similar to greenhouses, where natural sunlight can be augmented with artificial lighting and metal reflectors.

For the development of vertical plantation some modifications are required as:-

Soil: Fertile, good quality loamy soil.

Organic Fertilizers : Vermi-compost, waste of tea sometimes coconut coir, cereal husk, compost etc.

Pot : light weight hanging pot, stacked in layers.

LED lights: to maintain the growth of plants.

Benefits of Vertical plantation/ farming:

Vertical plantation or vertical farming can give attractive looks, healthy environment and good business of highly nutritious vegetables, fruits and other crops in near future. It proves very beneficial for people because food grows with the use of organic fertilizers, bio-fertilizers good quality soil, less water and with no use of chemical fertilizers, pesticides or fungicides.

References:

- Pati, Ranjan, Abelar, Michael (27 May, 2015)
- Glossary for vertical Farming (2016.01.06)
- Carroll Rory (18 July 2017)
- Grossman, David (3 December 2018)



National Digital Library of India



Dr. Abhishek Dutta

Assistant Professor
Dept of Economics
Nodal Officer, NDLI
A.N. College, Patna

Digital Library of India (NDL India) pilot project to develop a framework of virtual repository of learning resources with a single-window search facility.

National Digital Library of India (NDLI) is a project of the Ministry of Human Resource Development under the aegis of National Mission on Education through Information and Communication Technology (NMEICT). The objective of NDL is to make digital educational resources available to all citizens of the country to empower, inspire and encourage learning. National Digital Library of India is developed by IIT Kharagpur.

NDL is the Single Window Platform that collects and collates metadata from premier learning institutions in India and abroad, as well as other relevant sources. It is a digital repository containing textbooks, articles, videos, audio books, lectures, simulations, fiction and all other kinds of learning media.

National Digital Library is a 24x7 ubiquitous knowledge resource that is accessible to anyone with internet access and it is built to



enable the rise of Digital India. Anybody can access the digital library anytime and anywhere absolutely free of cost and can contribute greatly to the Government's commitment towards "Padhe Bharat Badhe Bharat". NDLI is a digital library that makes quality learning resources available to all learners and has 1.7 Crore content from more than 160 sources, in over 200 languages, everywhere and 30 lakh users are registered on NDL as on date and target is to increase the users 10 times in a year. National virtual Library of India as a massive online library with resources covering tens and hundreds of fields, ranging from arts, music, dance, culture, theatre, science and technology to education, archaeology, literature, museums, cartography maps, e-papers and manuscripts, among others, in all possible forms collated and made available on a single online platform. This programme is a part of the National Mission on Libraries of the Ministry of Culture.

Requirement to access NDL

Availability of Internet Connectivity:

No special hardware or accessories are required to access NDL. NDL can be accessed from devices like PC, Laptop, Mobile devices supporting any web browser. However you will need internet connectivity to access NDL.

Individual Membership

One has to type the URL (<https://www.ndl.gov.in>) of NDL and land on the Landing page of NDL, there will be a window on the right hand side saying 'Member Log-In'. Clicking on the 'Register' button a Registration form will open up. Fill up all the details on the form and submit. A validation link will be sent in mailbox. Click the link and validate and then one can start using NDL. From next time onwards, use the Log-In button on the Home page for accessing NDL.

References:

<https://ndl.iitkgp.ac.in/>
pib.nic.in/newsite/PrintRelease.aspx?relid=180048
 Government of India, Ministry of Human Resource Development



Corrosion-Necessary Evil

Corrosion is an undesirable natural phenomenon which destroys the lustre and beauty of the metallic objects and shortens their life. Corrosion is the deterioration of materials by chemical interaction with their environment.



Dr. Sheerin Masroor

Assistant Professor
Dept. of Chemistry
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

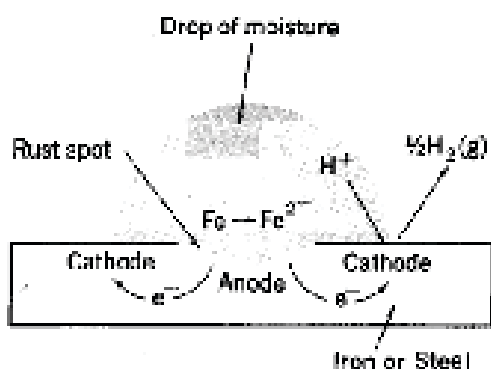
Corrosion is a kind of erosion process which occurs naturally. It happens on metal specifically. The definitions which came from different resources are:

- Corrosion is an **undesirable** natural phenomenon which destroys the lustre and beauty of the metallic objects and shortens their life.
- Corrosion is the **deterioration** of materials by chemical interaction with their environment. Plastics, concrete and wood also deteriorate, but corrosion generally refers to metals.
- So most important definition comes from metal as, "The inherent tendency of metals to revert from a processed, "metallic" state to their natural "ore" state". Aluminium, Copper, Zinc, Bronze and Iron (usually as Steel):

The schematic diagram depicts how corrosion can occur in metal such as Iron:

The chemistry behind how Corrosion proceeds is that when all the components of the "Corrosion Cell" are present, it happens. Different parts of cell includes:

- An Anode (Some part of metal where oxidation can occur).
- A Cathode (Some part of metal where



reduction can occur).

- An Electrochemical Connection between anode and cathode, which metal can act itself, and
- An Electrolyte or Medium to serve as a transport medium for ions.

The various examples from history around the globe which cause disaster and occurred due to corrosion are:

- Leakage in Bhopal Gas Tragedy, gas leak incident on the night of 23 December 1984 at the Union Carbide India Limited (UCIL) pesticide plant in Bhopal, Madhya Pradesh, India.



- b. Collapsing of Silver Bridge, present over the Ohio River, connecting Point Pleasant, West Virginia, and Gallipolis, Ohio.
- c. Oil spills in Santa Barbara / California dated 05/19/2015.
- d. The fall of railway traffic lights (Newbury / England) in 11/17/2014.
- e. The explosion of a gas pipeline (New Mexico) in 08/19/2000.

Due to these and many more major losses in the world history causes loss in economy of any country. So the environmental impact and economic losses have been the prime motive for any economy to be concerned and needs much of the current researches in the field of corrosion. It is approximately estimated that 25% of the total product of the metal and alloys go waste due to corrosion. These costs ranged from approximately 1 to 5 percent of the Gross National Product (GNP) of each nation per annum.

Types of Corrosion

The corrosion type can be classified on the basis of the appearance of the corroded metal. It is basically in to eight forms. Some of the forms of corrosion are different, but all of them are more or less interrelated. The eight forms of corrosion are:

- Uniform, or general attack
- Galvanic, or two metal corrosion
- Crevice corrosion
- Pitting corrosion

- Intergranular corrosion
- Selective leaching, or parting
- Erosion corrosion, and
- Stress corrosion

a. Uniform corrosion

It results due to general thinning of materials reducing their load capacity until the materials fail. The process behind involves the metal interacting with a particular environment on a macroscopic scale. For example, Magnesium alloys and low alloy Irons and Steels are most susceptible to it. For example, a piece of steel or zinc immersed in dilute sulphuric acid will normally dissolve at a uniform rate over its entire surface.

b. Galvanic corrosion or two-metal corrosion

It occurs when a metal or alloy is electrically coupled to another metal or non-metal in the same electrolyte. The three essential components for such corrosion to occur are materials possessing different surface potential, a common electrolyte and a common electric path. The galvanic current flow is due to the potential developed between the dissimilar metals. The percentage of corrosion resulting from galvanic coupling is affected by the following factors; the potential difference between the metals, the nature of the environment, the polarization behavior of metals or alloys and the geometric relationship of the component metal or alloys.

c. Crevice corrosion

The crevice corrosion is a kind of localized



corrosion of a metal surface at, or immediately adjacent to, an area that is shielded from full exposure to the environment because of close proximity between the metal and surface of another material. This kind of attack is mostly associated with small volumes of stagnant solution caused by holes, surface deposits, gasket surfaces, lap joints and crevice under bolt and rivet heads. The crevice gap width, depth and the surface ratios of materials can all affect the percentage of crevice corrosion. The extent of attack majorly depends upon the environment's exact constituents and concentration, as well as the humidity and temperature.

d. Pitting corrosion

Pitting generally occurs in desalination and power plants. In process plants approximately 90% of the metal damage by corrosion. It is a form of extremely localized attack that causes holes in the metal. These holes may be small or large in diameter, but in most cases they are relatively small. Pits are sometimes isolated or so close together that they look like a rough surface. Due to this, it causes equipment to fail because of perforation with only a small percent weight loss of the entire structure. Corrosion processes within a pit produce conditions which are both stimulating and necessary for the continuing activity of the pit. This process is self-stimulating and self-propagating.

e. Intergranular corrosion

Intergranular corrosion is a process occurring

mostly at grain boundaries, usually with little attack on the adjacent grains. During intergranular corrosion the alloy disintegrates and loses its strength. It can be caused by impurities at the grain boundaries, enrichment of one of the alloying elements, or depletion of one of these elements in the grain boundary areas. For example, many failures of 18-8 stainless steel have occurred because of intergranular corrosion. The most accepted theory for intergranular corrosion is based on depletion of chromium in the grain boundary areas. The addition of chromium to ordinary steel imparts corrosion resistance to the steel in many environments.

f. Selective leaching

It is a kind of corrosion in which one element is preferably removed from an alloy, leaving a residue/pores of the elements that are more resistant to the particular environment is called selective leaching. It is also called as Dealloying which affects many alloy systems, and the process is known by several very descriptive names that point to specific problems with particular alloying components, such as decarburization, decobaltification, denicklification and dezincification. One of the classic examples of dealloying is the dezincification of alpha brasses.

g. Erosion corrosion

Erosion corrosion is due to metal deterioration that results from the combined action of erosion and corrosion. Erosion corrosion is the acceleration or increase in



rate of deterioration or attack on a metal because of relative movement between a corrosive fluid and the metal surface. Mostly this movement is quite rapid, and mechanical wear effects or abrasions are involved. Metal is removed from the surface as dissolved ions, or it forms solid corrosion products that are mechanically swept from the metal surface. Sometime, movement of the environment decreases corrosion, particularly when localized attack occur under stagnant conditions, but this is not erosion corrosion because deterioration is not increased. Erosion corrosion is characterized by the appearance by grooves, gullies, waves, rounded holes, and valleys and usually exhibits a directional pattern.

h. Stress corrosion cracking (SCC)

The most prominent example of this type of corrosion is standard austenitic stainless steels such as AISI 304 and 316 are prone to stress corrosion cracking in chloride containing environments. The cracking process involves causes the simultaneous action of a corrodent and sustained tensile stress is referred to as stress corrosion cracking. This excludes the corrosion-reduced sections failed by fast fracture. The two classic cases of stress corrosion cracking are “season cracking” of brass, and the “caustic embrittlement” of steel.

i. Hydrogen damage

It is a general term for the embrittlement, cracking, blistering and hydride formation that can occur when hydrogen is present in

some metals is referred to as hydrogen damage. This damage is classified into four distinct types:

a. Hydrogen blistering

It is caused due to penetration of hydrogen into a metal.

b. Hydrogen embrittlement

Can occur due to penetration of hydrogen into a metal, which results in a loss of ductility and tensile strength.

c. Decarburization

It is also called as the removal of carbon from steel, is often produced by moist hydrogen at high temperatures.

d. Hydrogen attack

The disintegration of oxygen containing copper in the presence of hydrogen. Decarburization and hydrogen attack are high temperature processes.



“Life isn't about
finding yourself.
Life is about
creating yourself.”

— **George Bernard Shaw**



“Success is not final,
failure is not fatal:
it is the courage to
continue that counts.”

— **Winston S. Churchill**



ORGANOPHOSPHORUS COMPOUNDS

Organophosphorus (OP) compounds are derivatives of phosphorus that have at least one organic group attached to the phosphorus atom either directly or indirectly by means of another element (e.g. oxygen, sulfur or nitrogen).



Dr. Nisha Kumari

Assistant Professor
Dept. of Chemistry
A. N. College, Patna
Patliputra University, Bihar

Phosphorus is a ubiquitous element and its chemistry is of great importance. Until about 60 years ago, almost the entire field of phosphorus chemistry was dominated by inorganic phosphorus chemistry and the extent of known organophosphorus compounds was very limited. The use of the terms “inorganic phosphorus compound” and “organophosphorus compound” is traditional and very deep-rooted. Although no longer strictly desirable, because phosphorus chemistry now stands in its own right, these convenient terms still exist. Phosphorus chemistry can be defined as any transformation or structure involving phosphorus. Eight major classes of phosphorus compounds can be recognized as:

- (1) Oxyphosphorus compounds, which contain covalent P-O linkages.
- (2) Carbophosphorus (Organophosphorus) compounds which contain P-C linkages.
- (3) Azaphosphorus compounds which contain P-N linkages.
- (4) Metallophosphorus compounds which contain P-metal linkages.
- (5) Boraphosphorus compounds which contain P-B linkages.

- (6) Silaphosphorus compounds which contain P-Si linkages.
- (7) Thiaphosphorus compounds which contain P-S linkages.
- (8) Halophosphorus compounds which contain P-Halogen linkages.

Organophosphorus (OP) compounds are derivatives of phosphorus that have at least one organic group attached to the phosphorus atom either directly or indirectly by means of another element (e.g. oxygen, sulfur or nitrogen). The chemistry of organophosphorus compounds is a rapidly developing area of research because of their importance in industrial, agricultural, biochemical and medicinal applications. It is interesting to note that the variation in their physical, chemical and biological properties is governed by selection of the group attached to phosphorus atom.

The compound containing P-N-C & P-S linkage are important organophosphorus compounds possessing variety of applications such as insecticides, fungicides and herbicides. Some of the P-N & P-S compounds are direct and potent inhibitors



of acetylcholine esterase (AChE) and behave much like activated phosphates. Especially P-N linkage of compounds are important precursors for the synthesis of various other bioactive compounds serving as a motif for natural products, marine fish toxins, amino acid analogues, prodrugs and pharmacological agents. Thiophosphates are also important skeletons in biology and organicsynthesis.

Most of the organophosphorus compounds are manufactured from elemental phosphorus, obtained by the electro thermal reduction of calcium phosphate with coke in the presence of silica.



This phosphorus is then converted to phosphorus trichloride by direct reaction with excess of chlorine or phosphoryl chloride, POCl_3 formed by exposure of the phosphorus trichloride to air. PCl_3 , and POCl_3 , are then used as the starting materials for the preparation of most of the organophosphorus compounds.

The chemistry of organophosphorus compounds falls into two areas: reactions involving the phosphorus atom itself, which form the majority of the chemistry and reactions in which the presence of the phosphorus atom contributes to the reactions of the organic moieties present in the molecule. Phosphorus forms two series of compounds, in the first series phosphorus is in the +3 oxidation state where the phosphorus atom carries a lone pair of electron, which contribute significantly to the chemistry and stereochemistry of these

compounds. The lone pair of electrons enable phosphorus(III) compounds to undergo nucleophilic attack on a wide range of compounds. Phosphorus itself is a relatively electropositive element and so can also act as an electrophile; such reactions are particularly important for compounds of phosphorus in its higher oxidation state of +5. Phosphorus forms stable bonds to a wide range of elements. It forms particularly stable bonds to oxygen, so that whenever the opportunity arises phosphorus tends to form such bonds, often accompanied by oxidation. However, strong bonds to hydrogen, carbon, nitrogen, fluorine and chlorine give rise to a rich chemistry. As phosphorus atom has five valence electrons i.e. two electrons in 3s and three electrons in 3p orbitals and relatively low-lying empty 3d orbitals which contribute significantly to many aspects of phosphorus chemistry. In particular, the stability and high bond energies of phosphonium ylide system P-C, the strength of the P = O double bond in the phosphine oxides and the stability of radicals such as R_4P in which phosphorus is surrounded by more than eight valence electrons. The thermal stability of the P-C bond is quite high. The heat of dissociation of the 4-coordinated C-P bond is generally accepted to be about 65 Kcal/mole and there is never any difficulty in handling most of aryl and alkyl phosphorus compounds even at moderate temperatures.

The study of organophosphorus compounds began extensively by Michaelis in Germany, during the late 18th century and beginning of 19th century. He performed



many reactions and gave a foundation for this field particularly on the chemistry of P-N bonds containing compounds. Overlapping the latter stages of Michaelis, a Russian chemist, A.E. Arbuzov conducted extensive research, especially on the chemistry of trivalent synthesis of dialkylphosphoro fluoridates and their toxicity were studied by Lange and Krueger in 1932.¹⁴ Many view Carl Arnold August Michaelis in Germany and Alexander Erminingel'dovich Arbuzov in Russia as the founders of organophosphorus chemistry.

Organophosphorus group of poison exist since the 19th century. The first OP poison was discovered and reported by German scientist Philippe de Clermont and M Moschni ne in 1855, this compound was a monoester of organophosphorus compound and named tetraethyl pyrophosphate (TEPP). The first OP was developed as an insecticide for agriculture and now more than 100 kinds of OP pesticides are available in the market, each having different toxicity levels. Other OP compounds include Tabun, a deadly compound that was developed in 1936 by German scientists during World War II,

followed by Sarin (1938), Soman (1944), Cyclosarin (1949). However VX was developed in the UK (1952). These compounds are called nerve agents and warfare chemicals.

The first warfare use of Tabun was reported during the Iran-Iraq war in 1983, and then Sarin was used by Iraq in Halabjeh (Kurdistan) in 1988. The terrorist attack in Motosmoto in 1994 and Tokyo subway 1995 with Sarin and VX also caused many deaths and casualties. The Ghouta chemical attack in the Syrian civil war (2013), was also due to strike of rocket containing chemical agent sarin (Dolgin 2013). Recently in February 2017 Kim jong-nam the half-brother of North Korea's leader also died in two minutes after being poisoned by VX nerve agent. In 1982, a new type of phosphorus containing compound was isolated from dinoflagellate. This toxic metabolite proved to be a fish toxin and its novel structure attracted the attention of many investigators and its unambiguous and successful synthesis was also published in 1988. In the same decade, another type of phosphorus containing toxin was also isolated from dinoflagellates. ●

“Happiness is not something ready made.
It comes from your own actions.”

- : Dalai Lama XIV



“Failure will never overtake me if my
definition to succeed is strong enough.”

- : Dr. A.P.J. Abdul Kalam



रामचरितमानस में शक्ति का समावेश

ईश्वर की अपेक्षा ईश्वर की शक्ति का विशेष महत्व है। ईश्वर की इस शक्ति को स्त्री-रूपा कहा गया है। इसे मातृकाशक्ति से भी अभिहित किया जाता है। शक्ति की इसी शाश्वत परिकल्पना के पीछे भारतीय पारिवारिक जीवन में मातृशक्ति और मातृसत्ता का विशेष प्रचलन रहा है।



डॉ० संजय कुमार सिंह

हिन्दी विभाग

ए०एन० कॉलेज, पटना

भा

रतीय वाङ्मय के अनुशीलन से यह तथ्य स्पष्ट होता है कि ईश्वर की अपेक्षा ईश्वर की शक्ति का विशेष महत्व है। ईश्वर की इस शक्ति को स्त्री-रूपा कहा गया है। इसे मातृकाशक्ति से भी अभिहित किया जाता है। शक्ति की इसी शाश्वत परिकल्पना के पीछे भारतीय पारिवारिक जीवन में मातृशक्ति और मातृसत्ता का विशेष प्रचलन रहा है। 'रामचरितमानस' में कौशल्या आदि रानियों की पारिवारिक व्यवस्था के मध्य इस रूप को देखा जा सकता है। पुरुष और स्त्री जाति के परस्पर आकर्षण का मनोवैज्ञानिक आधार भी यही है। ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर सिन्धु घाटी की सभ्यता में मातृपूजा या देवीपूजा का प्रचलन लोकजीवन की शाश्वत परिकल्पना को उद्घाटित करता है। 'ऋग्वेद' के अदिति-सूक्त में मातृभाव, उषा-सूक्त में कुमारी-भाव, सूर्यादेवी-सूक्त में पत्नी-भाव, देवी-सूक्त और वाक्-सूक्तों में शुद्ध शक्तिवाद की व्याख्या है। इन सभी सूक्तों को पारिवारिक जीवन के मध्य सार-तत्त्व के रूप में 'रामचरितमानस' में व्यक्त किया गया है। वैदिक ऋषियों ने 'माता पृथिवी महियम' कहकर शक्ति के प्रति अपनी अभ्यर्थना निवेदित की है। सीता के साथ राम को संयोजित कर जगज्जननी के रूप में देखने का विधान तुलसी ने अकारण उपस्थित

नहीं किया—

"सिया राममय सब जग जानी।

करऊँ प्रनाम जोरी जुग पानी।"¹

पृथ्वी देवी और सीता का सम्बन्ध दिखाकर उन्हें विश्वजननी के रूप में उपास्य बताया गया है। सरस्वती, उमा, पार्वती, सती आदि शक्ति की शाश्वत परिकल्पना 'रामचरितमानस' में विवक्षित है। अन्य धार्मिक साहित्यों में इसी के शाश्वत परिकल्पित रूप को चण्डिका, काली, दुर्गा आदि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन सभी परिकल्पनाओं के अंतर्गत पारिवारिक संघटन में मातृकाशक्ति का महत्वांकन है। पत्नी के रूप में भी इस शक्ति की अपेक्षित विवक्षा है। तुलसीदास जब 'निगमागम सम्मत' की बात करते हैं तो उन सम्प्रदायों में विवेचित मातृकाशक्ति के महत्वांकन को सहज ही स्वीकारते हैं। यही शक्ति विभिन्न साधना-पद्धतियों के माध्यम से व्यक्त हुई हैं। जैन, बौद्ध, शाक्त मत, तंत्र आदि ग्रंथों में इस तत्व की पर्याप्त व्याख्या है। 'अगस्त्यसंहिता' में महाशक्ति के वर्णन क्रम में कहा गया है कि इसका रूप-वर्णन प्राकृतजनों के वश की बात नहीं। स्वयं भगवान ही उसका वर्णन करने में समर्थ हैं। उन्होंने स्वयं को शक्ति के अधीन बताया है :—



“चकराराधनं तस्य मन्त्रराजेन भक्तितः ।
कदाचिच्छ्रीशिवो रूपं ज्ञातुमिच्छुहैः परमः ॥”
दिव्यवर्षशतं वेदविधिना विधिवेदिना ।
जजाप परमं जाप्यं रहसि स्थिरचेतसा ।
प्रसन्नोऽभूत तदा देवः श्री रामः करुणाकरः ।
मन्त्राराध्येन रूपेण भजनीयः सतां प्रभुः ॥”²

दाम्पत्य—भावना का विकास भी शक्ति के इसी शाश्वत परिकल्पित रूप का औचित्य प्रस्तुत करता है। ‘रामचरितमानस’ के निदर्शन से जनमानस की भावनाओं को व्यवस्थित करने का अप्रतिम सुयोग स्थापित हुआ है। साधक या भक्त जब शक्ति की उपासना जिस लक्ष्य से करता है उसके अनुरूप देवी की आराधना करता है। सीता की आराधना तब होती है जब अन्य देवियाँ सहायक होकर स्वयमेव उपस्थित होती हैं। ठीक यही स्थिति सरस्वती आदि की आराधना करने के क्रम में विचारणीय है। इस आराधना पद्धति को देखकर मैक्समूलर तथा कतिपय पाश्चात्य विद्वानों ने भारतीय शक्ति तत्व के प्रति ‘बहुदेवीवाद’ का आरोप लगाया है। डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी ने उनकी भ्रान्तियों को दूर करते हुए लिखा है कि भारतवर्ष में शक्ति की आराधना लोकजीवन की शाश्वत अभिव्यक्ति है। यहाँ बहुदेवीवाद में एकदेवीवाद की सार्थक अभिव्यक्ति है। मोनिज्म इन पोलिथेइज्म की बात नहीं जानने के कारण ऐसी भ्रान्तियाँ उत्पन्न होती हैं। पराशक्ति की शाश्वत परिकल्पना को अक्षर ब्रह्म के साथ जोड़कर उपस्थित करने का विधान भारतीय साहित्य की अनुपम विशेषता है। इसमें सर्वव्यापकता का भाव है। ‘रामचरितमानस’ में इस सर्वव्यापकता के भाव को जगज्जननी सीता के रूप में अभिव्यक्ति मिली है। शाक्त मत में इसे त्रिपुरसुन्दरी भी कहा जाता है। शाक्तमत में यह

कामकला की जन्मदात्री मानी जाती है। यह भावना भी लोकजीवन की नैसर्गिक भावनाओं को अभिव्यक्त करती है। नाद, बिन्दु, माया तथा अन्य रूपों में इस शक्ति की विभिन्न अवस्थाएँ पाई जाती हैं। सती मोह का प्रसंग तथा पार्वती के रूप में तपस्या करते हुए पुनः शिव की प्राप्ति में माया रूपी शक्ति को ‘रामचरितमानस’ में अभिव्यक्ति मिली है। इसे प्रेमकला के रूप में परवर्ती साहित्यकारों ने भी किया है। ‘काव्य कला तथा अन्य निबंध’ में रहस्यवाद के प्रकरण में जयशंकर प्रसाद ने शक्ति का निर्वचन काम कला के रूप में किया है। उनके अनुसार

“यह काम प्रेम का प्राचीन वैदिक रूप है।
काम में जिस व्यापक भावना का समावेश है,
वह इन सब भावों को आवृत्त कर लेता है।
इसी वैदिक काम की, आगम शास्त्रों में, काम—
कला के रूप में उपासना भारत में विकसित हुई।”³
काम—कला के इस रूप को नैतिकता और मर्यादा का पुट देकर तुलसी ने दाम्पत्य—भाव पर पर्याप्त प्रकाश डाला है।

गोस्वामी तुलसीदास ने आदिशक्ति की परिकल्पना के लिए शास्त्रसम्मत प्रणाली और परम्परा को तो ग्रहण किया ही, साथ ही उसे लोकजीवन की शक्त्यात्मक अवधारणा के अनुरूप चित्रित करने का प्रयास किया। लोक अभिरुचि के कारण उनकी शक्त्यात्मक अवधारणा अनेक पौराणिक प्रसंगों को आत्मसात् करती हुई चलती है। इसमें सुन्दरम् के साथ—साथ शिवम् की भी अभिव्यक्ति हुई है। इससे काव्य—रस के साथ—साथ जीवनरस की भी अभिव्यंजना हुई है। कबीर ने अपने को बहुरिया मानकर शक्ति के आदि स्रोत को स्वीकारा



“पिउ मेरा राम मैं राम की बहुरिया।।”⁴

जायसी ने सौन्दर्यात्मक चेतना को विवर्द्धित करने के लिए पद्मिनी की अपार शक्ति को काव्य का विषय बनाया। सगुणवादी कवियों ने राधा और सीता के माध्यम से उसी शाश्वत परिकल्पित रूप को वाणी दी है। सगुणवादी तुलसी ने आवश्यकतानुसार इस शाश्वत रूप को जीवन के विभिन्न आयामों में देखने का प्रयास किया है। वे लौकिक एवम् आध्यात्मिक शक्तियों के विकास में सहायिका रही हैं। राम के साथ सीता वन-गमन का प्रस्ताव अकारण नहीं है। सीता शाश्वत शक्ति के रूप में समादृत होकर पल-पल पति के साथ रहने को इसलिए उत्सुक हैं कि जीवन के प्रत्येक पक्ष में सफलता के चरणों को राम चूम सकें। इसलिए शक्ति के हरण होने पर यदि वे बिलख-बिलख कर, फूट-फूट कर रुदन करते हैं तो आश्चर्य नहीं

“हे खग! मृग! हे मधुकर श्रेणी

तुम देखी सीता मृगनयनी?”⁵

वस्तुतः राम की यह मृगनयनी दाम्पत्य भाव के साथ जीवन की केन्द्रीयता भी निवेदित करती है। इस दाम्पत्य भाव को कबीर ने भी वाणी दी है :

“हम तुम तुम हम और न कोई।

तुहिं अस पुरुष हमहिं तोर जोई।।” तथा⁶

“एक जनी जना संसार।”⁷

कहीं-कहीं यह अविधा शक्ति माया के बंधन में बँधकर हमें दिग्भ्रमित भी करती है—

“माया महाठगिनी हम जानी,

तिरगुन फाँस लिये कर डोले।

बोलै मधुरी बानी।”⁸

तुलसी की सीता को भी मोह होता है

“जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि

नरि बिरउँ मति भोरि।

देखि चरित महिमा सुनत

भ्रमित बुद्धि अति मोरि।।”⁹

इसी सीता की लौकिकता जब आध्यात्मिकता के विभिन्न सोपानों को स्पर्श करती है तब शक्तिपात, महामिलन आदि की घटनाएँ अवघटित होती हैं। शक्ति की शाश्वत परिकल्पना के सुविकसित रूप को पारिवारिक, सामाजिक, नैतिक आदर्शों के अनुरूप जितना गोस्वामी तुलसीदास ने ढालने का प्रयत्न किया उतना किसी अन्य कवियों ने नहीं। पारिवारिक परिवेश के अन्तर्गत माता, भगिनी, पत्नी, पुत्री आदि का निजी एवम् विशिष्टतम स्थान है। कौशल्या, सुमित्रा तथा अन्य चार पुत्रवधुओं के रूप में इनकी पर्याप्त अभिव्यक्ति है। जीवन के केन्द्र में शक्ति को रखकर महाकाव्यात्मक औदात्य के साथ कथा रूपों का जो अन्यतम विकास तुलसीदास ने किया वह लोकादर्श सिद्ध हुआ। इतना ही नहीं, अत्यन्त वैज्ञानिक तथ्यों से ओतप्रोत होकर तुलसी ने वह भी दिखाने का प्रयत्न किया कि शक्ति के विघटित स्वरूप को ग्रहण करने क्षरण के अतिरिक्त अन्य कोई विकल्प नहीं बचता। रावण का अहंकार शक्ति के निषेधात्मक पक्ष का अन्यतम रूप है। मन्दोदरी के लाख समझाने पर भी जब रावण नहीं मानता तब शक्ति के परिकल्पित रूप को विघटन की ओर प्रसरण करते हुए दिखाया गया है। इस दृष्टि से शाश्वत परिकल्पना के रूप में शक्ति की प्रतिष्ठा करते हुए उसके परिवर्तित विच्छिन्न रूप को दर्शाने का प्रयत्न ‘रामचरितमानस’ में हुआ है।

शक्ति-तत्त्व की शाश्वत परिकल्पना को मनोवैज्ञानिक, समाजवैज्ञानिक तथा अन्यान्य संदर्भों के रूप में तुलसीदास ने विचार का विषय



बनाया है। शक्ति एक भावदशा है, जो कण-कण, अणु-अणु में व्याप्त है। जड़ से जड़ पदार्थ में सोयी हुई शक्ति निहित है। चेतन-तत्त्व में इसकी सक्रियता स्पष्ट लक्षित है। प्रत्येक व्यक्ति के भीतर यह सुप्तावस्था में है। भगवान शिव जब तपस्यारत होते हैं तो अपनी शक्ति को जगाते हैं। इसकी जागृति से स्व-कल्याण संभव है। जीवन के समस्त अभावों का नाश इस शक्ति तत्त्व के कारण होता है। सीता अशोकवाटिका में विलाप करती हैं परन्तु उनकी शक्ति सम्प्रेषित होकर राम के जीवन में ऊर्जा का संचार करती है। परिवार और समाज के लिए इसकी अपनी उपयोगिता है। वन-गमन के पूर्व राम ने शक्ति को जिस रूप में नियंत्रित रखा वह समाजोपयोगी सिद्ध हुआ। यह शक्ति जब संघ-शक्ति के रूप में क्रियाशील हुई तब समस्त आर्य और अनार्य संस्कृति को एकता के सूत्र में बाँधकर मानवता को विजयिनी बनाने के लिए आततायी रावण का वध किया गया। बालि-वध, सुग्रीव-मैत्री तथा अन्यान्य वानर-भालू, रीछादि से मित्रता स्थापित करना अकारण नहीं है। वह शक्ति का संघीय एकात्मक रूप का प्रदर्शित होना है। पुरुष में शक्ति के इस तत्त्व की अन्तर्हिता के कारण उसे अर्द्धनारीश्वर की संज्ञा दी गई है। विश्व मानवतावाद का उदय संघीय शक्ति से संभव है। 'रामचरितमानस' में महाकाव्यात्मक प्रणाली के रूप में ढालकर इस शक्ति का सानुपातिक उपयोग किया गया है।

शक्ति की अवहेलना अथवा दुरुपयोग से जीवन और जगत् में विसंगतियों का आगमन होता है। मंथरा की बुद्धि को सरस्वती द्वारा परिवर्तित किया जाना अकारण नहीं है। बुद्धि शक्ति का प्रतीक है। इसके सदुपयोग के लिए परिस्थिति

और मनःस्थिति का सम्यक् निरीक्षण अनिवार्य है। इसके अभाव में विघटन का इतिहास प्रारम्भ होता है। मंथरा को शापित बताने पर भी उसकी बुद्धि पर तरस खाने के लिए लोक चेतना विवश है।

“नामु मंथरा मंदमति चेरी कैकई केरि।

अजस पेठारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।”¹⁰
इसी संदर्भ में कैकयी का कोप-भवन में जाना भी विचारणीय है। इसके अवहेलक स्वरूप को भारतवर्ष के ऋषि-मुनियों और अनुभवकर्ताओं ने सूक्ष्मतापूर्वक पकड़ा और उसके निराकरण के लिए परिस्थितिजन्य मान्यताओं के अनुकूल व्यवहार करने का निर्देश दिया। राम आततायी रावण की शक्ति से जब सुपरिचित होते हैं तब उसी के अनुरूप आचरण करते हैं। शक्ति का प्रत्युत्तर शक्ति से देते हैं। युग की मान्यताओं को स्वरित करते हुए इसका सर्वाधिक सुन्दर रूप निराला की 'राम की शक्ति पूजा' में उद्घाटित हुआ है जहाँ एक सौ आठ इन्दीवर की आवश्यकता को दिखाकर शक्त्याराधन की बात कही गई है। तुलसीदास ने नैतिकता का सबल अवलम्ब ग्रहण करते हुए शक्ति की शाश्वत परिकल्पना को पारिवारिक, सामाजिक, राष्ट्रीय दृष्टि से स्वस्थ संस्कृति के निर्माण में सहयोग दिया है। अक्षर अनन्य ब्रह्म की इसी अह्लादिका शक्ति के कारण विश्व में समता का भाव उत्पन्न होता है। यही शक्ति जब नृशंस व्यक्तियों के हाथ में चली जाती है तब रावण जैसा प्रकाण्ड विद्वान भी दिग्भ्रमित होकर सीता को चुराने की योजना बनाता है। ऐसे विध्वंसक अहंवाद के नाम पर विश्व-उत्पीड़न को बढ़ावा मिलता है। शक्ति के इस विघटित और संघटित रूप का एकत्र



वर्णन—निरूपण 'रामचरितमानस' में हुआ है। शक्ति के इस चक्रीय क्रम को जीवन के वर्तुलाकार सिद्धान्त के रूप में समझा और स्वीकारा जा सकता है। यह संसार विश्वमोहिनी आद्याशक्ति का चरम विकास है। इसकी अवहेलना जीवन का क्रूर पक्ष है।

शक्ति रागात्मिका वृत्ति है। इस रागात्मिका वृत्ति के उत्कर्ष को 'रामचरितमानस' के पुष्पवाटिका प्रसंग में देखा जा सकता है। यहाँ राम और सीता का प्रथम मिलन हृदय से हृदय का मिलन—व्यापार है। दोनों ओर अनुराग पल रहा है। यह ऐसी पुरातन प्रीति है जिसे दूसरा नहीं समझ सकता। तुलसी ने इसकी उत्कृष्ट व्यंजना की है "सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत। चकित बिलोकति सकल दिसि जनु सिसु मृगी समीत।।"¹¹

सीता की दशा के साथ—साथ राम की दशा भी अवलोकनीय है। वे अनुज लक्ष्मण से अपने हृदय की बात कहते हैं :

"कंकन किंकिनि नुपूर धुनि सुनि।

कहत लखन सन रामु हृदयँ गुनि।।

मनहुँ मदन दुंदभी दीन्हीं।

मनसा विस्व विजय कहँ कीन्ही।।"¹²

रीतिकालीन कवि की मांसल सौन्दर्य चेतना में शक्ति—तत्त्व का अभाव होने के कारण ऐसा वर्णन संभव न हुआ। इसमें युगसापेक्षता की अनिवार्यता भी है। तुलसी ने शक्ति की विधायिका वृत्ति को पहचाना। परिणामतः जीवन में समरसता का आगमन हुआ। दोनों ओर हृदय—पक्ष की प्रधानता होने के कारण इसमें सर्वतोभावेन कल्याण की भावना निहित है। लोकजीवन के नैतिक मानदण्डों का स्थिरीकरण इसी शाश्वत परिकल्पित रूप से

संभव है। इस शाश्वत रहस्य का आभास मात्र जिसे हो जाता है उसे चमकीले प्रदर्शन अभिभूत नहीं करते। ऐसा व्यक्ति किसी बलवान की इच्छा का क्रीड़ा कन्दुक नहीं बन सकता। विभीषण का अपने भाई रावण को त्याग देना राम में छिपी शक्ति का सम्यक् मूल्यांकन है। उन्होंने अपने जीवन को शुभ प्रत्यय के अनुरूप ढालने का प्रयत्न किया।

इस प्रकार महाकवि तुलसीदास ने शक्ति के विधायक आयामों को जीवन और जगत की सम्पूर्णता में अभिव्यक्त कर उपयोगितावादी दृष्टिकोण से नैतिक मानदण्डों के अनुरूप विचार किया है। शक्ति के विघटित आयामों को प्रस्तुत कर उससे होने वाले दुष्प्रभावों की ओर संकेत भी दिया है। रावण की सम्पूर्ण इहलीलात्मकता का विनाश इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यह संकेत वस्तुतः इस उद्देश्य से किया गया है कि मानव जाति कभी भी शक्ति का दुरुपयोग नहीं करे। जब तक इस अभिशाप से मानव को मुक्ति नहीं मिलेगी जब तक विश्वमानवता का कल्याण असंभव है। निष्कर्षतः शक्ति सार्वभौम चेतना का पर्याय है।

संदर्भ ग्रंथ - सूचि

1. गोस्वामी तुलसीदास बालकाण्ड, 65वाँ सं० 2044 रामचरितमानस, गीताप्रेस
2. कल्याण : गीताप्रेस, वर्ष 61, अंक—1 पृ०सं०—601
3. जयशंकर प्रसाद : काव्य कला तथा अन्य निबंध, प्रसाद प्रका०, वाराणसी, पृ०सं०—37
4. डॉ० श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०सं०—238
5. गोस्वामी तुलसीदास, रामचरितमानस, पृ०सं०—628
6. जायसी, पदमावली, लोकभारती प्रकाशन, पृ०सं०—101
7. श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०सं०—174
8. श्याम सुन्दरदास, कबीर ग्रंथावली, पृ०सं०—280
9. तुलसीदास, रामचरितमानस, बालकाण्ड गीताप्रेस, पृ०सं०—55
10. तुलसीदास, रामचरितमानस, अयोध्याकाण्ड, गीताप्रेस, पृ०सं०—343
11. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीताप्रेस, पृ०सं०—213
12. तुलसीदास, रामचरितमानस, गीताप्रेस, पृ०सं०—213



वो बाती बनकर जली



डॉ० भावना शेखर
हिन्दी विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

बा अपने पुत्रों और पति के बीच एक मजबूत सेतु बनकर रहीं पर यह पुल सदा गांधी की ओर कुछ ज़्यादा झुका रहा। बहुधा एक स्त्री के पत्नीत्व पर मातृत्व हावी हो जाता है पर बा तो पूरे राष्ट्र की माता बन गईं। त्याग और राष्ट्रभक्ति की एक अनूठी मिसाल जो किसी मायने में बापू से उन्नीस नहीं थीं।

मो

हनदास करमचंद गांधी और कस्तूरबा इतिहास के पन्नों में राष्ट्र के पिता और माता के रूप में दर्ज हैं। ये दोनों चरित्र बढ़ती चन्द्रकला की तरह असाधारण रूप से उत्तरोत्तर विकसित हुए। तेरह साल की किशोरी कस्तूर से कस्तूर बाई और फिर कस्तूर बा बन गईं और मोहनदास गांधी— महात्मा, बापू और गांधी बाबा बन गए।

बा आजीवन बापू का अनुगमन करती दिखती हैं। पर क्या वे बापू की छाया मात्र थीं या उनका अपना भी कोई वजूद था। इसके लिए मणिलाल गांधी के पुत्र अरुण गांधी और उनकी पत्नी सुनंदा गांधी की बा के जीवन पर लिखी किताब और उसका शीर्षक 'द फॉरगटन वूमेन' ध्यान देने योग्य है। बापू के व्यक्तित्व के चुंधियाते प्रकाशपुंज में यह दीपशिखा अनदेखी सी रह गयी। मोहनदास बापू न बनते गर कस्तूर उनकी संगिनी न होती।

बा का जीवन माचिस की उस तीली के समान है जो आग सुलगा कर खुद बुझ जाती है। अपने दाम्पत्य के पैंसठ वर्षों में कितनी ही बार कस्तूरबा खुद को बापू के विराट व्यक्तित्व में समाहित करती दिखाई देती हैं।

किसी के महान बनने का मूल्य अक्सर उसका जीवनसाथी चुकाता है। यह बात महात्मा गांधी और उनकी पत्नी कस्तूरबा गांधी पर बखूबी चरितार्थ होती है।

गांधी के निजी सचिव महादेव भाई के शब्दों में, "गांधी का सचिव होना मुश्किल है मगर गांधी की पत्नी होना दुनिया में सबसे मुश्किल है।" जिन्हें हमने राष्ट्रपिता के ऊँचे आसन पर बिठाया वे एक पति के रूप में कई बार एक सामान्य व्यक्ति नज़र आते हैं, अनेक उदाहरण इसकी पुष्टि करते हैं।

मोहनदास के घर की ऊपरी मंजिल से कस्तूर का घर दिखाई देता है। दोनों साथ खेले थे।



कस्तूर मोहनदास से छह महीने बड़ी थीं, पर मोहनदास इस बात को मानने को तैयार नहीं होते थे। एक लड़का भला लड़की को कैसे अपने से बड़ा मान ले? विवाह संस्कार के समय मण्डप में जब दोनों के जन्म की तिथि, नक्षत्र आदि का उच्चारण हुआ तो उन्हें विश्वास करना पड़ा। कहीं न कहीं पितृसत्तात्मक विचारों की छाया से किशोर मोहनदास अछूते नहीं थे। उन्हें अपनी पत्नी का सजना, संवरना और घर से बाहर निकलना बिल्कुल भी पसंद नहीं था।

कस्तूरबा गांधी का शुरुआती गृहस्थ जीवन परेशानियों से भरा हुआ था। पति मोहनदास उनकी निरक्षरता के कारण अकसर ताने दिया करते थे। उन्होंने बा को शुरु से ही बंदिश में रखने की कोशिश की लेकिन वे इसमें सफल नहीं हो पाए। यह बात गांधी जी ने खुद अपनी आत्मकथा में स्वीकार की है। पति के विदेशप्रवास के समय कस्तूरबा ने पुत्र हरिलाल को अकेले पाला।

कस्तूरबा और गांधी की शादीशुदा जिंदगी में ऐसे कई मौके आए जब महात्मा गांधी तो जीत गए मगर पति मोहनदास अपनी जिम्मेदारियां पूरी नहीं कर पाए। पुत्र हरिलाल से उनके कटु सम्बन्धों का बोझ ताउम्र कस्तूरबा को ढोना पड़ा।

इस मतभेद के दो मुख्य कारण थे। हरिलाल को ब्रिटेन जाकर पढ़ने के लिए स्कॉलरशिप मिली। गांधी ने मना कर दिया। कहा गांधी के लड़के की जगह किसी ज़रूरतमंद को मिले ये जगह। इसके अलावा एक और बात हुई थी बा अफ्रीका में रहना

चाहती थीं और गांधी भारत आना चाहते थे। ज़ाहिर है कि गांधी की ही चली और बा को मन मारना पड़ा। इन दो घटनाओं के बाद हरिलाल और गांधी के बीच की दूरी बढ़ती चली गई, जो कभी खत्म नहीं हुई।

पत्नी बा की मृत्यु पर गांधी को विद्रोही पुत्र हरिलाल के हिकारत भरे शब्द याद आते हैं – “तुम बहुत बड़े हो... पर बा ने तुम्हें बड़ा बनाया “और मृत पत्नी से कहते हैं “उसने कितना सच कहा था,

जो वह जान गया था, मैं नहीं जान पाया। तुमने मेरे कारण उसे त्याग दिया... मां का सबसे बड़ा दुख उसके बच्चों का भटकना और बिछड़ जाना होता है। मैं उसे लाया नहीं... वह आया नहीं।”

पति और पुत्र के बीच पिसती कस्तूरबा का यह सन्ताप मर्मन्तक रहा होगा। पति के सत्याग्रह के चलते बा ने बेटे को खो दिया। इस पीड़ा को बापू सम्भवतः उनके जीवित रहते न

समझ पाए।

प्रोफेसर स्टेनले वोल्पार्ट ने अपनी किताब में लिखा है कि गांधी बा की मौत के बाद काफी टूट गए थे। लगभग अवसाद की स्थिति में वे खुद को थप्पड़ मारते और कहते “मैं महात्मा नहीं हूँ, मैं तुम सब की तरह सामान्य व्यक्ति हूँ और मैं बड़ी मुश्किल से अहिंसा को अपनाने की कोशिश कर रहा हूँ”

कस्तूरबा दृढ़ निश्चयी थी। मरणासन्न स्थिति में भी डॉक्टर के परामर्श पर मांस का शोरबा लेने

“कस्तूरबा और गांधी की शादीशुदा जिंदगी में ऐसे कई मौके आए जब महात्मा गांधी तो जीत गए मगर पति मोहनदास अपनी जिम्मेदारियां पूरी नहीं कर पाए। पुत्र हरिलाल से उनके कटु सम्बन्धों का बोझ ताउम्र कस्तूरबा को ढोना पड़ा।”



इसका एक उदाहरण है गांधी उड़ीसा के दौरे पर थे. उस ज़माने में पुरी के मंदिर में दलितों के प्रवेश पर रोक थी. गांधी का स्पष्ट मत था कि वो ऐसी किसी भी जगह नहीं जाएंगे जहां जाति का भेद-भाव होता हो. मगर कस्तूरबा, महादेव की पत्नी के साथ मंदिर चली गईं.

के लिए तैयार नहीं हुयी क्योंकि मांसाहार उनके वैष्णव संस्कारों में निषिद्ध था।

उन्होंने कभी दबकर रहना नहीं सीखा। वे निर्भीकता से अपना मत प्रकट करती थी। एक बार दक्षिण अफ्रीका में पॉट साफ करने के लिए मना करने पर गांधी जी ने उन्हें हाथ पकड़कर बाहर निकाल दिया। पति के इस दुर्व्यवहार पर उन्होंने सख्त ऐतराज जताया था। किंतु पति के व्यक्तित्व की रक्षा के लिए कितनी ही बार अपनी इच्छाओं का दमन करने से वे पीछे नहीं हटीं।

सैंतीस वर्ष की युवावस्था में बापू के कठिन ब्रह्मचर्य व्रत की प्रतिज्ञा में बा की सहमति उनके महान चरित्र का अनुपम उदाहरण है। बाद में बापू की विवादास्पद ब्रह्मचर्य परीक्षा में बा का अड़चन न बनना उन्हें महामानवी सिद्ध करता है। कोई दैवी शक्ति ही किसी स्त्री को यूँ तटस्थ रहने का संयम दे सकती है। बापू के सिद्धांत करोड़ों के लिए अनुकरणीय न होते यदि घर में उन्हें पत्नी का समर्थन न मिलता। इसके लिए बा ने कई बार समझौते भी किये और जब समर्थन नहीं किया तो बापू की प्रताड़ना भी झेली।

गांधी को बहुत बुरा लगा. उन्होंने खुद कहा कि उन्हें सदमा पहुंचा. वे कस्तूरबा पर इतना भड़क गए कि उन्होंने हाथ भी उठा दिया. बा ने खामोशी से बापू की इस हिंसा को झेला। बा एक कुशल गृहस्थन थी, उनकी देखरेख में ही गांधीजी के आश्रमों की व्यवस्था चलती थी। चार पुत्रों की माता कस्तूरबा को उनके वात्सल्यपूर्ण व्यवहार के कारण कशीब से जानने वाले गांधी से भी ज़्यादा सम्मान देते थे। जब बापू के विलक्षण प्रतिभावान सचिव महादेव देसाई का आकस्मिक निधन हुआ तब बा बार बार यही कहतीं – महादेव क्यों गया, मैं क्यों नहीं। बाद में महादेव देसाई का चितास्थान कस्तूरबा गाँधी के लिए एक मंदिर बन गया। वे प्रतिदिन वहाँ जातीं, दीप जलवातीं और समाधि की प्रदक्षिणा कर उसे नमस्कार करतीं।

1942 में जब गांधी जी ने 'भारत छोड़ो' का नारा दिया और सभी नेता पकड़ लिए गए, तब सवाल उठा कि गांधी जी की अनुपस्थिति में जनसभा को कौन संबोधित करेगा? तब कस्तूरबा ने ही सभा को संबोधित किया, उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया।

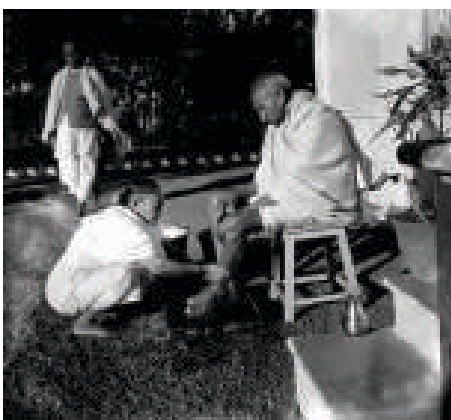


मर्जी से इलाज ले सकती हैं. गांधी के बेटे देवदास पेंसिलिन का इंजेक्शन लेकर भी आए. तब बा बेहोश थीं और गांधी ने उनकी मर्जी के बिना इंजेक्शन लगाने से मना कर दिया. बा के लिए पति के सिद्धांत पालनीय थे भले ही उन्हें अपने स्वास्थ्य का मूल्य चुकाना पड़ा हो।

दांडी यात्रा के समय ब्रिटिश सरकार के कहर की परवाह किए बगैर कस्तूरबा ने पति और बेटे के साथ पचहत्तर आश्रमवासियों को कुमकुम का टीका लगाकर विदा किया था। चंपारण आंदोलन में बा ने बिना क्षेत्रीय भाषा जाने, ग्रामीण औरतों को जागरूक करने में अद्वितीय योगदान दिया।

अंतिम दिनों में फेफड़ों के संक्रमण की रोगी बा को पेंसिलिन का इंजेक्शन दिया जाए डॉक्टर ऐसा चाहते थे, गांधी इलाज के इस तरीके में हिंसा मानने के कारण इसके खिलाफ थे. बा ने कहा कि अगर बापू कह दें तो वो इंजेक्शन ले लेंगी. गांधी ने स्वीकृति नहीं दी पर कहा अगर बा चाहें तो अपनी

गांधी के हरिलाल के अतिरिक्त मणिलाल, रामदास, और देवदास तीन और पुत्र थे। बा अपने पुत्रों और पति के बीच एक मजबूत सेतु बनकर रहीं पर यह पुल सदा गांधी की ओर कुछ ज़्यादा झुका रहा। बहुधा एक स्त्री के पत्नीत्व पर मातृत्व हावी हो जाता है पर बा तो पूरे राष्ट्र की माता बन गईं। त्याग और राष्ट्रभक्ति की एक अनूठी मिसाल जो किसी मायने में बापू से उन्नीस नहीं थीं। बापू के जीवन पर संशय और आपत्ति के कई प्रश्न दागे गए, अंत में तीन गोलियाँ भी पर कस्तूरबा का जीवन पहली बारिश की पाक साफ बूंदों सा निर्मल, निश्छल और अनिंद्य है।





युवाओं को सही मार्गदर्शन की अति आवश्यकता है जिससे उन्हें जीवन दर्शन की सही परख हो सके। युवा जो समाज तथा देश के भविष्य हैं वे भटकाव की स्थिति से बच सकें। इसलिए युवाओं को भटकाव तथा लक्ष्य के प्रति जागरूक करने का यथा संभव प्रयास होना अति आवश्यक है।



डॉ० विष्मी रानी 'क्षमा'

हिन्दी विभाग

ए.एन.कॉलेज, पटना

यु

युवावस्था जीवन की सबसे विशिष्ट अवस्था होती है। ऊर्जा से प्रफुल्लित, उमंग में झूमती और साहस से भरी हुई। इस वर्ग में प्रायः 14 से 40 वर्ष के आयु के लोगों को शामिल किया जाता है। ऐसे लोग शारीरिक तथा मानसिक दोनों स्तर पर मजबूत तथा सक्षम होते हैं। ऐसा नहीं है कि जीवन की अन्य अवस्था में ऐसा नहीं होता, परन्तु युवावस्था की बात ही कुछ और होती है... जैसा कि छायावादोत्तर काल के अग्रणी कवियों में विशिष्ट स्थान रखने वाले कवि गोपाल सिंह 'नेपाली' लिखते हैं :

‘सौ-सौ अंधियारी रातों से, तेरी मुस्कान
कहीं सुंदर

मुख से मुख-छवि पर लज्जा का, झीना
परिधान कहीं सुंदर।।

तेरी मुस्कान कहीं सुंदर।।

युवावस्था में व्यक्ति की सोच समझ विकसित होती है। जीवन की वास्तविकता से उनका परिचय होता है। व्यक्ति घर, परिवार से निकल समाज तथा दुनिया के समक्ष अपना भविष्य तलाशता है। इस अवस्था में अगर जीवन को सही दिशा मिल जाती है तो वह हर नामुमकिन को मुमकिन बनाने की कोशिश करता है, परन्तु अगर जीवन को सही दिशा नहीं मिल पाती है तो यही निर्माण की क्षमता विनाश का परिचय बन जाती है। इस अवस्था में न तो उर्जा की कमी होती है और ना ही साहस की.... कमी होती है। कमी होती है तो बस सही मार्गदर्शन की। प्रत्येक धनुर्धर को



अर्जुन बनने के लिए एक दोर्णाचार्य की आवश्यकता होती है और सम्राट बनने के लिए प्रत्येक चन्द्रगुप्त को चाणक्य की शरण लेनी ही पड़ती है।

युवाओं के भविष्य के लिए की गई मेहनत चाहे वो माता-पिता के द्वारा हो या गुरुजनों के द्वारा, व्यक्ति को मनुष्य बनने में मददगार होती है। उनकी दृष्टिकोण को विकसित करने में सहायक सिद्ध होती है।

आज समाज में रिश्तों के मानक बदलने लगे हैं। मान्यता, समझ और परम्परा भी अब नई धारा में ढल रही हैं। परन्तु जीवन की अब भी वही गति है जो कालचक्र से बंधी हुई है। जीवन रूपी नदी पर्वत से निकल झर-झर बहती सागर तक पहुँच जाती है। जैसा कि कवि आरसी प्रसाद सिंह अपनी कविता 'जीवन का झरना' में लिखते हैं :

**“निर्झर में गति है, यौवन है;
वह आगे बढ़ता जाता है।**

**धुन एक सिर्फ है, चलने की
अपनी मस्ती में गाता है।”**

युवाओं को अपने जीवन में लक्ष्य का निर्धारण अवश्य करना चाहिए। निर्धारित लक्ष्य विपरीत परिस्थितियों में भी आगे बढ़ने की प्रेरणा देता है। जीवन की भटकावों को लक्ष्य कम करता है जो कि आज के युवाओं के सामने सबसे बड़ी चुनौती के रूप में स्थित हैं। यदि सही मार्गदर्शन मिलता रहे तो युवा किसी भी परिस्थिति को बदलने की क्षमता रखते हैं। परिवार, समाज तथा देश के विकास में युवाओं का विशेष स्थान होता है। भारत में युवाओं की संख्या अधिक है। जो किसी भी क्षेत्र में चाहे तो अपनी योग्यता से एक सफल योगदान उपस्थिति कर सकते हैं। युवा किसी भी परिवार, समाज तथा देश के सबसे महत्वपूर्ण इकाई हैं। अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर युवा अपने जीवन को सफल बनाने के साथ-साथ देश के विकास में भी अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।



उन्नीसवीं शताब्दी में औद्योगिक क्रांति हुई। जिसका प्रभाव आर्थिक जगत के साथ ही सामाजिक स्तर पर भी देखा गया। सम्पूर्ण विश्व एक बाजार के रूप में परिवर्तित हो गया। जिससे आर्थिक जगत में व्यापक बढ़ोतरी हुई। इस तरह बाजारीकरण का अच्छा प्रभाव सामने आया। जिसने देश तथा समाज के विकास में अपना योगदान प्रदान किया। परन्तु इसका बहुत ही बुरा प्रभाव युवाओं में देखा जा सकता है। युवाओं में अपने लक्ष्य से भटकाव की स्थिति उत्पन्न करने में आधुनिक उपकरणों की महत्वपूर्ण भूमिका है। जो बाजारीकरण के कारण आज सरलता से सभी को उपलब्ध है। जिन्हें उनकी आवश्यकता है उन्हें भी और जिनको उनकी आवश्यकता नहीं है उन्हें भी अर्थात् बच्चों तथा युवाओं को। बच्चों तथा युवाओं पर बाजारीकरण का बुरा प्रभाव पड़ता है जो उनके कोमल मन मस्तिष्क को दिनानुदिन वित्त किये जा रहे हैं। आज के युवा इन उपकरणों तथा सुविधाओं के इतने आदि हो चुके हैं कि उनकी जीवन की गतिविधियों पर इसका पूर्ण प्रभाव देखा जा सकता है। जो युवा देश के भविष्य है तथा जिनके सामने उनका वर्तमान खड़ा है वे इस भटकाव से बच नहीं पा रहे हैं। जिसका बुरा प्रभाव उनके भविष्य पर तो पड़ रहा है साथ ही परिवार, समाज तथा देश भी इस आंतरिक क्षति से प्रभावित हो रहा है।

युवाओं के भविष्य के साथ हो रहें इस खिलवाड़ से बचाव के लिए आवश्यक है कि उन्हें मानसिक स्तर पर जागरूक किया जाये। सही गलत के अंतर को उनका मन समझ सके ऐसी विवेक शक्ति का उनमें विकास हो, इसका प्रयास

किया जाये। आधुनिक सुविधाओं का सही तथा सार्थक उपयोग के बारे में उन्हें जागरूक किया जा सके। युवाओं को आधुनिकता रूपी पंख तो अवश्य दिया जाये जो उनकी उड़ान को शक्तिशाली बना सके परन्तु साथ ही उनके पास जीवन के लक्ष्य रूपी मानचित्र अवश्य हो, जो उनकी उड़ान को सही दिशा प्रदान कर सके।

भारत जो सदा से ही परम्पराओं तथा संसति का संरक्षक रहा है। जहां विभिन्न जाती, धर्म तथा सभ्यता के लोग आए और यहीं बस गए। हमारी ये विरासत आज के युवाओं के लिए एक प्रेरणा होनी चाहिए जिससे वे मानवता के सही अर्थ को समझ सके। अपनी संसति पर गर्व कर सके। अपनी सांस्तिक धरोहर को बचाएं रखना अति आवश्यक है इस भावना का युवाओं में विकास हो। आज युवाओं की स्टिकोण को विकसित करने की आवश्यकता है जिससे वे अपनी जड़ों से जुड़ कर जीवन की 'वास्तविक सफलता' की सोपान तक पहुंच सके।

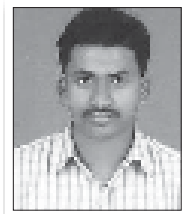
ऐसी स्थिति में युवाओं को सही मार्गदर्शन की अति आवश्यकता है जिससे उन्हें जीवन दर्शन की सही परख हो सके। युवा जो समाज तथा देश के भविष्य है वे भटकाव की स्थिति से बच सकें। ये हमारी सामाजिक जिम्मेदारी होने के साथ साथ नैतिक जिम्मेदारी भी है। इसलिए युवाओं को भटकाव तथा लक्ष्य के प्रति जागरूक करने का यथा संभव प्रयास होना अति आवश्यक है। जिससे युवा एक उज्ज्वल भविष्य की ओर आगे बढ़ सकें।





वर्तमान समाज एवं नैतिक मूल्य

समस्या तो बहुत विकृत है पर फिर भी यदि प्रत्येक भारतवासी खुद को नैतिकता के दायरे में बाँधने का चट्टानी संकल्प लेकर इस पर दृढ़ता से अमल करे तो गिरती नैतिकता बीते दिनों की बात होगी और भारत फिर से खुद के खोए गौरव को प्राप्त कर सकेगा।



डॉ० राजेन्द्र कुमार
समाजशास्त्र विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

संसार में मनुष्य ने अपनी पूर्ण विकसित चेतना के बल पर बाकी सारे प्राणियों को पीछे छोड़ा और सृजनात्मकता के कई मिसाल कायम किए जो आज भी अनवरत जारी है। एक ओर चैतन्य मनुष्य ने अच्छे कामों को अंजाम दिया तो वहीं दूसरी ओर उसने कई गलत और बुरे कार्यों की भी शुरुआत की। इन्हीं कर्मों के आधार पर नैतिकता और अनैतिकता की परिभाषा गढ़ी गई।

जहाँ तक नैतिकता की बात है तो इसमें कोई संदेह नहीं की नैतिकता हर व्यक्ति का आभूषण है जो उसे महानता प्रदान करता है। दूसरा पक्ष यह भी है कि सभी लोग नैतिकता को एक समान महत्व नहीं देते हैं, कुछ लोग इसका अधिकाधिक पालन करते हैं, कुछ आंशिक तो कुछ लगभग न के बराबर। दुर्भाग्य की बात तो यह है कि वर्तमान में नैतिक मूल्यों को महत्व न देने वालों की संख्या बढ़ती जा रही है।

आज के समाज को यदि हम देखें तो पाएँगे कि चाहे पिता हो या पुत्र, माता हो या पुत्री, भाई हो या बहन, दोस्त हो या रिश्तेदार, सबके नैतिकता में कमी आ रही है। एक दूसरे के प्रति अनादर, ईर्ष्या एवं द्वेष इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। पति और पत्नी के पवित्र रिश्ते भी अब अपनी पवित्रता खोते जा

रहे हैं, कारण साफ है कि लोगों में चारित्रिक पतन हो रहा है, विवाह पूर्व और विवाहेतर अनैतिक संबंध और दहेज के बढ़ते मामले इसके साक्षात गवाह हैं। यदि हम हिन्दी या संस्कृत के 'शब्द-कोष' में तलाक शब्द ढूँढ़ें तो चाहे हम अपनी आँखों को कितना भी थका लें। 'शब्द-कोष' के पन्नों को पलट-पलट कर चाहें हम अपने उँगलियों को कितना भी दर्द दे लें, तलाक का हिन्दी या संस्कृत शब्द मिलेगा ही नहीं। ऐसा इसलिए क्योंकि भारत की मूल संस्कृति में तलाक जैसी कोई चीज ही नहीं थी। ये सिर्फ बाहरी आक्रमणकारियों (जैसे— मुगलों, अंग्रेजों) की ही देन है।

आज का समाज इतना विकृत और संवेदनहीन हो गया है कि उसके लिए धन और भौतिक वस्तु ही सर्वोपरि है। दहेज की धिनौनी प्रथा इसे सिद्ध करने के लिए काफी है। कितनी बड़ी त्रासदी है कि चंद नोटों और समानों के लिए किसी कन्या को अग्नि का ग्रास बना दिया जाता है। समाज को अनैतिकता ने इतनी बुरी तरह जकड़ लिया है कि लोगों के हाथ किसी स्त्री के जान लेने के पहले जरा भी काँपते।

आज सड़कों, बाजारों, दफ्तरों, गाँवों, शहरों



समेत हर सार्वजनिक स्थान पर बालिकाओं और महिलाओं को ऐसे धिनौने और दरिन्दगी भरी नजरों से देखा जाता है जिससे पूरी मानवता लज्जित होती है। हद तो तब हो जाती है जब एक अधेड़ व्यक्ति भी अपनी पौत्री समान कन्या को घूरते नजर आता है। उसकी नजरें भी कहाँ—कहाँ तक प्रवेश कर जाती है, यह बताने की कोई आवश्यकता है ही नहीं। हर धर्म के कुछ धार्मिक स्थानों पर चंद लोगों द्वारा नित किए जा रहे काले करतूत नैतिक मूल्यों में तेजी से हो रहे क्षरण को ही प्रकट करते हैं।

सार्वजनिक जीवन एक ऐसा जीवन होता है जो पूरे देश और समाज को काफी हद तक प्रभावित करता है, या यूँ कहें कि आम लोग सबसे ज्यादा इसी से प्रभावित होते हैं। इसके अन्तर्गत नेता, अभिनेता, लोक-सेवक, समाज के हर उस वर्ग के लोग आते हैं जो किसी न किसी रूप में आम जनता से जुड़े रहते हैं।

यदि राजनीति की बात करें तो हम पाएँगे कि आज यह अपने विकृत स्तर पर पहुँच चुकी है, गाँधी, पटेल और जय प्रकाश नारायण के समय की राजनीति आज कलुषित और कलंकित हो चुकी है। नेताओं के आवरण तो आज भी सफेद हैं, पर आचरण उतने ही मैले। नित नए भ्रष्टाचार के नमूने सामने आ रहे हैं। ऐसा प्रतीत होता है, मानो भ्रष्टाचार राजनीति का सहचर बन चुका है। सत्ता प्राप्त करने और बचाए रखने के लिए जिस तरह के खेल खेले जाते हैं उसे देख कर यह सवाल बरबस उठ

यदि राजनीति की बात करें तो हम पाएँगे कि आज यह अपने विकृत स्तर पर पहुँच चुकी है, गाँधी, पटेल और जय प्रकाश नारायण के समय की राजनीति आज कलुषित और कलंकित हो चुकी है। नेताओं के आवरण तो आज भी सफेद हैं, पर आचरण उतने ही मैले।

खड़ा होता है कि वास्तव में यह लोकतंत्र है या धनतंत्र। राजनेता निजी स्वार्थ को इतना अधिक महत्व देने लग गए हैं, कि बाढ़ और अन्य आपदा पीड़ितों की सहायता राशि को भी अपने खजाने का रत्न बना रहे हैं और पीड़ित लोग और भी उत्पीड़न का शिकार हो रहे हैं। अनैतिकता की हद इससे ज्यादा क्या हो सकती है कि एक राज्य दूसरे राज्य द्वारा दी गई राशि को वापस लौटाने में खुद का और राज्य का गौरव महसूस करे। जबकि आपदा पीड़ित जनता आज भी जदोजहद में ही जीती रहे। गिरती नैतिकता के कारण निकृष्ट

होती राजनीति का यह एक दिल दहला देने वाली मिसाल है और आज की भ्रष्ट राजनीति का सबसे दुखद पहलू तो यह है कि भ्रष्ट नेताओं की भीड़ में वैसे नेतागण भी नजर नहीं आते हैं जो आज भी शुचिता को अपने निजी हितों से ज्यादा महत्व देते हैं।

यदि अभिनेता और अभिनेत्रियों की सोंचें तो मन में सीधा फिल्म और टी0वी0 (टेलिविजन) की छवि अंकित होती है। यहाँ भी

स्थिति निराश करने वाली है। आज की फिल्मों में जिस तरह गलत चीजों को महिमामण्डित किया जाता है, जिस तरह अश्लीलता और अपराध को बढ़ा-चढ़ा कर भड़काऊ से भड़काऊ रूप में पेश किया जाता है उसे देखकर ऐसा लगता है मानों आज के अधिकांश फिल्मकारों ने समाज से चरित्र और नैतिकता को पूरी तरह समाप्त करने की प्रतिज्ञा ले रखी हो। आज के समाचार चैनल और अखबार भी नैतिक पतन के शिकार होते जा रहे



हैं। निजी और आर्थिक हितों की खातिर आज गलत और भ्रामक समाचार गढ़े जा रहे हैं, जिनमें तथ्यों को तोड़-मड़ोर कर पेश किया जा रहा है, लोग भ्रमित हो रहे हैं। इन कारणों से आज पत्रकारिता भी कहीं न कहीं कटघरे में खड़ी है।

अगर हम सरकारी, गैर-सरकारी और अन्य लोक सेवकों की बात करें तो पाएँगे कि यहाँ भी अनैतिकता का ही बोलबाला है। सरकारी अधिकारियों और कर्मचारियों के रिश्तखोरी के कई मामले रोज सामने आ रहे हैं, जिससे आमजनों की कुंठा बढ़ती जा रही है। सरकारी अधिकारी भी आज भ्रष्टाचार की नई मिसाल कायम करते जा रहे हैं, हमारे देश में उत्तरी बिहार और दक्षिणी बिहार को जोड़ने वाला मात्र (37) वर्ष पुराना महात्मा गाँधी सेतु जो इतने कम समय में ही अपने अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहा है। इस बात को पूरी तरह सच साबित कर देता है। यह कोई इकलौता उदाहरण नहीं है, हर प्रदेशों में इस तरह के कई उदाहरण मिलेंगे। हम गिनती करते थक जाएँगे पर ऐसे मामले बढ़ते ही चले जाएँगे।

मुनाफाखोरों, कालाबाजारियों और जमाखोरों को खुली छूट उपलब्ध करा रहे हैं, जिनके कारण महँगाई, खाद्य पदार्थों में मिलावट की राक्षसी समस्याएँ हमें चुनौती दे रहीं हैं। बड़े दुख की बात है कि भारत जैसा महान देश भी दुनिया के भ्रष्ट देशों की सूची में अपना स्थान पा रहा है।

न्याय के मंदिर को भी कभी-कभी अनियमितता के कटघरे में खड़ा किया जाता है, तो ऐसी भयानक बात पर यकीन करना मुश्किल होता है पर यह भी सच है कि बिना चिन्गारी के धुआँ तो नहीं उठता। चन्द स्वार्थी तत्व अपने हितों को साधने में इस कदर व्यस्त हैं कि ये मुनाफाखोरों, कालाबाजारियों और जमाखोरों को खुली छूट उपलब्ध करा रहे हैं, जिनके कारण महँगाई, खाद्य पदार्थों में मिलावट की राक्षसी समस्याएँ हमें चुनौती दे रहीं हैं। बड़े दुख की बात है कि भारत जैसा महान देश भी दुनिया के भ्रष्ट देशों की सूची में अपना स्थान पा रहा है। समस्या तो बहुत विकृत है पर फिर भी यदि प्रत्येक भारतवासी खुद को नैतिकता के दायरे में बाँधने का चट्टानी संकल्प लेकर इस पर दृढ़ता से अमल करे तो गिरती नैतिकता बीते दिनों की बात होगी और भारत फिर से खुद के खोए गौरव को प्राप्त कर सकेगा। ऐसा मुश्किल जरूर लगता है, पर नामुमकिन नहीं है। जरूरी है तो सिर्फ अटल इच्छा शक्ति की।

“It is the mark of an educated mind to be able to entertain a thought without accepting it.”
— Aristotle

“An investment in knowledge pays the best interest.”
— Benjamin Franklin



भारतीय आर्य परम्परा

आर्यों के पश्चात भी अनेक जातियाँ यहाँ आयी हैं। कुछ ने आर्यों के धर्म-विश्वास को कुछ अंशों में स्वीकार किया है, कुछ ने दूर तक उसे प्रभावित किया और कुछ ऐसी भी आयी हैं, जो आर्यों के साथ एकदम नहीं मिल सकी है; फिर भी एक जगह रहने के कारण परस्पर प्रभावित हुई हैं। इन्हीं नाना जातियों का मिलन-क्षेत्र यह भारतवर्ष है।”



सुश्री चुन्नन कुमारी

शोधार्थी, हिन्दी विभाग
मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

कि

सी भी राष्ट्र के गंभीर चिन्तन को समझने के लिए उसकी परम्परा को समझना अत्यंत आवश्यक है।

परम्परा ही विरासत की संजीवनी होती है। भारत बहुत विशाल एवं पुराना राष्ट्र है। इसका इतिहास एवं परम्पराएँ भी उतनी ही पुरानी और महत्वपूर्ण है। अज्ञात काल से यहाँ विभिन्न जातियाँ आती रही हैं और अपनी संस्कृतियों से इसे समृद्ध करती रही हैं। आर्य, द्रविड़, नाग, मंगोल, शक, मुगल आदि का परस्पर संघर्ष एवं समन्वय का मिला जुला रूप भारत का साहित्यिक एवं सांस्कृतिक विरासत है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार—“आर्यों के पश्चात भी अनेक जातियाँ यहाँ आयी हैं। कुछ ने आर्यों के धर्म-विश्वास को कुछ अंशों में स्वीकार किया है, कुछ ने दूर तक उसे प्रभावित किया और कुछ ऐसी भी आयी हैं, जो आर्यों के साथ एकदम नहीं मिल सकी है; फिर भी एक जगह रहने के कारण परस्पर प्रभावित हुई हैं। इन्हीं नाना जातियों का मिलन-क्षेत्र यह भारतवर्ष है।”¹

हम सभी जानते हैं कि आर्य समाज की स्थापना आर्य ग्रंथों के द्वारा मनुष्य को सुशिक्षित करके उन्हें सभ्य मनुष्य बनाने के उद्देश्य से हुई है। कल्प के आदि से लेकर ईश्वरीय ग्रंथ वेदों के

मनत्वयों को स्पष्ट करने के लिए हमारे ऋषियों ने अनेकों शास्त्रों का निर्माण किया था। इन्में वैदिक साहित्य, संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद्, आगम, निगम, वेद, पुराण आदि आते हैं। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार—“पौराणिक हिन्दू-धर्म निगम और आगम, दोनों पर आधारित माना जाता है। निगम वैदिक विधान है। आगम प्राग्वैदिक काल से आती हुई वैदिकेतर धार्मिक परम्परा का वाचक है।”² पुराणों की चर्चा धर्म सूत्रों, मनुस्मृति, विष्णुस्मृति, रामायण, महाभारत आदि धर्मग्रंथों में भी किया गया है।

सांस्कृतिक समन्वय के इतिहास में भगवान श्री कृष्ण का महत्वपूर्ण स्थान है। गीता के द्वारा उन्होंने भागवतों की भाक्ति, वेदान्त के ज्ञान और सांख्य के दुरुह-सूक्ष्म दर्शन को एकाकार कर दिया।

संस्कृत आर्य भाषा है। इस भाषा में रचित साहित्य भारतीय आर्य परम्परा के महत्वपूर्ण अंग है। आर्य परम्पराओं को चलाने वाले श्रुति-मुनियों एवं उनके द्वारा रचित ग्रंथ महान भारत की आत्मा हैं। सहस्र वर्षों से प्राचीन इस देश के मनीषियों और रचनाकारों की भावनाओं, कल्पनाओं, संकल्पों और आकांक्षाओं की छवि संस्कृत एवं अन्य भाषा



के साहित्य में अंकित है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुसार—“ कई सहस्राब्दियों में विस्तीर्ण यह काल संस्कृत साहित्य के कल्पवृक्ष के बीजन्यास और अंकुरण का काल है। इसी काल में मंत्रद्रष्टा ऋषियों ने मंत्रों का साक्षात्कार किया, वैदिक संहिताओं तथा ब्राह्मणग्रंथों की रचना हुई, और उपनिषदों की चिंतन की परम्पराएँ विकसित हुई। गाथाओं और आख्यानों के रूप में लोक-साहित्य की समृद्ध विरासत भी इस काल में संचित होती रही।”³ किरातार्जुनीयम्, शिशुपालवधम् तथा नैषधीयचरितम् जैसे महाकाव्यों की रचना संस्कृत में हुई। इसके बाद ऐतिहासिक महाकाव्य, रामाकाव्य, शास्त्रकाव्य आदि नवीन काव्यविधाएँ हमारी परम्परा के प्रमुख देन हैं।

वैदिक साहित्य ऋषियों की पवित्र धरोहर है, जिससे पाँच सौ साल पहले भी प्रेरणा मिलती थी और आज भी हम इससे प्रेरित हो अपने रास्ते तय करते हैं; जीवन शैली परिष्कृत करते हैं और ज्ञान की रश्मियों से समाज और राष्ट्र का कल्याण करते हैं।

वैदिक साहित्य को चार वर्गों में बाटा गया है। संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद्। भारतीय आर्ष परम्परा चारों वेदों की उत्पत्ति मानव सृष्टि के प्रारंभ से मानती है, जिनमें वेद को अपौरुषेय कहा गया है। संहिता, वेद मंत्रों के संग्रह को कहा जाता है। वेद संहिताएँ चार प्रकार के हैं— ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद। मंत्रों के रचना के

बाद उनकी व्याख्या के लिए ब्राह्मण ग्रंथों की रचना की गई। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुसार—“ ब्रह्मण का अर्थ ज्ञान है। वैदिक संहिताओं के ज्ञान की व्याख्या करने वाले ग्रंथ ब्राह्मण हैं। परम्परा में ब्राह्मण ग्रंथों की व्याख्या पद्धति के प्रमुख अंग निम्नलिखित बतलाये गये हैं—हेतु, निर्वचन, निंदा, प्रशंसा, संशय, विधि, परक्रिया, पुराकल्प, व्यवधारण— कल्पना तथा उपमान”⁴

ब्राह्मणों के यज्ञों, उपासनाविधियों आदि का निरूपण आरण्यक में किया गया है। ज्ञान का प्रतिपादन जिसमें होता है, उसे उपनिषद् कहा जाता है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी के अनुसार—“ विषयवस्तु की दृष्टि से वैदिक साहित्य के तीन मुख्य प्रतिपाद्य हैं। कर्म, उपासना तथा ज्ञान। कर्म का प्रतिपादन मुख्यतया ब्राह्मण ग्रंथों में और उपासना का मुख्यतः आरण्यकों में हुआ है, तो ज्ञान का प्रतिपादन उपनिषदों की प्रमुख विशेषता है। उपनिषद् शब्द उप तथा नि उपसर्ग लगा कर सद धातु

से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ है— पास बैठना। गुरु के निकट बैठ कर प्राप्त किये गये ज्ञान को उपनिषद् कहा जाता है।”⁵

भारतीय परम्परा वाचिक परम्परा रही है। आज भी संस्कृत अध्ययन-अध्यापन में वाचिक परम्परा देखी जा सकती है। इस परिप्रेक्ष्य में डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी लिखते हैं—“वेद को सहस्रों

“ वेद को सहस्रों वर्षों तक
गुरु-शिष्य-परम्परा में
सुन-सुन कर व स्मरण रख
कर सुरक्षित रखा गया,
इसलिये इन्हे’ श्रुति, भी कहा
जाता है। वाचिक परम्परा में
मंत्रों को यथावत् स्मरण और
पीढ़ी-दर पीढ़ी सुरक्षित रखने
के लिए पाठ की विशिष्ट
विधियाँ अपनायी गयीं।





वर्षों तक गुरु—शिष्य—परम्परा में सुन—सुन कर व स्मरण रख कर सुरक्षित रखा गया, इसलिये इन्हें श्रुति, भी कहा जाता है। वाचिक परम्परा में मंत्रों को यथावत् स्मरण और पीढ़ी—दर पीढ़ी सुरक्षित रखने के लिए पाठ की विशिष्ट विधियाँ अपनायी गयीं।⁶ भारतीय सारस्वत परम्परा गुरुशिष्य के बीच प्रवाहित वाचिक परम्परा है।

श्रवण परम्परा भारत में आर्यों के आगमन के पूर्व विद्यमान थी। हमारा पौराणिक हिन्दू धर्म आगम और निगम पर आधारित है। निगम को वैदिक विधान माना जाता है। आगम प्राग्वैदिक काल से वैदिकेतर धार्मिक परम्परा का वाचक है। डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपनी पुस्तक 'संस्कृति के चार अध्याय, के शीर्षक 'आर्य और आर्येतर संस्कृतियों का मिलन, में पुरानों की चर्चा करते हुए कहते हैं—“ पुराणों का उल्लेख धर्म सूत्रों में भी है तथा मनुस्मृति, विष्णु—स्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति एवं ऋग्विधान में भी। रामायण और महाभारत तो पुराणों के नाम कई बार लेते हैं। इन सारे प्रमाणों से यह अनुमान अत्यधिक सुदृढ़ हो जाता है कि

पुराणों की परम्परा वेदों की परम्परा से कम प्राचीन नहीं है।⁷

संस्कृत काव्य परम्परा का पालि, प्राकृत और अपभ्रंश के साहित्य से गहरा संबंध रहा है। संस्कृत काव्य की सुदीर्घ परम्परा ने भारतीय भाषाओं के साहित्य को प्रभावित किया है। पैशाची प्राकृत में रचित 'बृहत्कथा, के रचनाकार गुणादय ने संस्कृत साहित्य परम्परा को सर्वाधिक प्रभावित किया है। प्राकृत मुक्तकों की प्रथम रचना हाल कवि द्वारा रचित 'गाहासतसई' का भी महत्वपूर्ण भूमिका है। डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी इस परिप्रेक्ष्य में लिखते हैं—“ संस्कृत के अनेक कवि तथा आचार्य ईसा की पहली तथा दूसरी सहस्राब्दी में संस्कृत के साथ—साथ प्राकृत भाषा में भी रचनाएँ करते आ रहे थे। कव्याशास्त्र के महान् आचार्य आनन्दवर्धन ने तो संस्कृत में देवीशत कथारत्नोत्तर तथा अर्जुन चरित महाकव्य के साथ प्राकृत में स्वतंत्र रूप से खंडकाव्य या बड़ी रचना भी प्रस्तुत की। प्राकृत में रचनाएँ कम—से—कम एक हजार साल पहले से होती आ रही थी।⁸ संस्कृत के राजशेखर ने





प्राकृत में कर्पूरमंजरी सट्टक की रचना की। आदिकाल के प्रमुख कवि विद्यापति ने भी संस्कृत के साथ-साथ मैथिली और अवहट्ट भाषाओं में लोकप्रिय रचनाएँ की। आधुनिक संस्कृत साहित्य एवं समकालीन भारतीय भाषा एक दूसरे से बहुत प्रभावित है।

भारत विभिन्न भाषाओं एवं संस्कृतियों का विशाल देश है। हिन्दी, पंजाबी, उड़िया, बंगला, असमिया, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलगु, कन्नड, मलयालम आदि भाषाओं का साहित्यिक एवं वैज्ञानिक महत्व है। ये अत्यंत प्राचीन, वैविध्य, गुण, और परिणाम में व्यापक एवं समृद्ध हैं। डॉ. मूलचन्द गौतम के अनुसार—“ आदि आधुनिक भारतीय भाषाओं के ही सम्पूर्ण वाङ्मय का संचयन किया जाए तो मेरा अनुमान है कि वह यूरोप के संकलित वाङ्मय से किसी भी दृष्टि से कम नहीं होगा। वैदिक संस्कृत, संस्कृत, पालि, प्राकृतों और अपभ्रंशों का समावेश कर लेने पर तो उसका अनन्त विस्तार कल्पना की सीमा को पार कर जाता है।⁹ इन साहित्यिक धरोहरों का अपना स्वतंत्र और प्रखर विशेषताएँ हैं। विभिन्न भाषाओं में रचित ये रचनाएँ अनंत हैं। जैसे—“ तमिल का संगम-साहित्य, तेलगु के द्वि-अर्थी काव्य और उदाहरण तथा अवधान साहित्य, मलयालम के संदेश-काव्य एवं कीर-गीत (कलिप्पाटुद्ध तथा मणिप्रवालम्क शैली, मराठी के पवाड़े, गुजराती के आख्यान और फागु , बंगला का मंगल-काव्य, असमिया के बड़गीत और बुरंजी साहित्य, पंजाबी के रम्याख्यान तथा वीर गीत, उर्दू की गजल और हिन्दी का रीतिकाल तथा छायावाद आदि अपने-अपने भाषा साहित्य के वैशिष्ट्य के

उज्ज्वल प्रमाण हैं।”¹⁰

भारतीय साहित्य का प्राचुर्य, वैविध्य और मौलिक एकता अन्यंत रमणीय और हृदयग्राही है। संस्कृत से लेकर आधुनिक भारतीय साहित्य हमारी परम्परा को उच्च एवं उर्वर भूमि प्रदान करती है। डॉ. मूलचन्द गौतम इस परिप्रेक्ष्य में लिखते हैं—“भारत के प्रायः सभी साहित्यों में संस्कृत से प्राप्त काव्य शैलियाँ, महाकाव्य, खंडकाव्य, मुक्तक, कथा, आख्यायिका आदि के अतिरिक्त अपभ्रंश परम्परा की भी अनेक शैलियाँ, जैसे—चरितकाव्य, प्रेमगाथा, शैली, रास, पद—शैली आदि प्रायः समान रूप में मिलती हैं। अनेक वर्णिक छन्दों के अतिरिक्त अनेक देशी छन्द—दोहा, चौपाई आदि भी भारतीय वाङ्मय के लोकप्रिय छन्द हैं। इधर आधुनिक युग में पश्चिम के अनेक काव्य—रूपों और छन्दों का, जैसे प्रगीत—काव्य और उसके अनेक भेदों, जैसे—सम्बोधन—गीत, शोक—गीत, चतुर्दशपदी का और मुक्तछन्द, गद्य—गीत आदि का प्रचार भी सभी भाषाओं में हो चुका है।”¹¹

भारतीय भाषाएँ आर्य और द्रविड़ परिवार की भाषाएँ हैं। ये भाषाएँ प्राचीन भाषाओं जैसे—संस्कृत, पालि, प्राकृत, अपभ्रंश एवं आधुनिक भाषा अंग्रेजी से अपने शब्द भंडार समृद्ध करती रही हैं। प्राचीन भाषाओं में रचित साहित्य हमारी ज्ञान परम्परा को समृद्ध एवं उर्वर पृष्ठभूमि प्रदान की है। ज्ञान परम्परा के ये धरोहर आज भी विश्वविद्यालयों एवं संग्रहालयों सुरक्षित हैं। इसके उचित उपयोग एवं संपादन के लिए विभिन्न भाषाओं के साथ लिपियों का ज्ञान अपेक्षित है क्योंकि ये साहित्य विभिन्न लिपियों में उपलब्ध है। जैसे—उड़िया



लिपि, मलयालम लिपि, ब्राह्मी लिपि, नेवारी लिपि, कैथी लिपि, आदि। “भारतीय वाङ्मय अनेक भाषाओं में अभिव्यक्त एक ही विचार है। देश का यह दुर्भाग्य है कि स्वतन्त्रता-प्राप्ति तक विदेशी प्रभाव के कारण अनेकता को ही बल मिलता रहा। इसकी मूलवर्ती एकता का सम्यक अनुसन्धान अभी होना है। इसके लिए अत्यन्त निस्संग भाव से सत्य शोध पर दृष्टि केन्द्रित रखते हुए भारत के विभिन्न साहित्यों में विद्यमान समान तत्वों एवं प्रवृत्तियों का विधिवत् अध्ययन पहली आवश्यकता है। यह कार्य हमारे अध्ययन और अनुसन्धान की प्रणाली में परिवर्तन की अपेक्षा करता है। किसी भी प्रवृत्ति का अध्ययन केवल एक भाषा में साहित्य तक ही सीमित नहीं रहना चाहिए; वास्तव में इस प्रकार का अध्ययन अत्यन्त अपूर्ण रहेगा। उदाहरण के लिए, मधुरा भक्ति का अध्येता आदि अपनी परिधि को केवल हिन्दी या केवल बंगला तक ही सीमित कर ले तो वह सत्य के शोध में असफल रहेगा।”¹²

अंततः कहा जा सकता है कि विभिन्न भाषाओं जैसे—गुजराती, उड़िया, असमिया, तमिल, तेलगू, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं में रचित साहित्य

के सम्यक अनुसंधान की आवश्यकता है। जो हमारी परम्परा और सांस्कृतिक पहचान के लिए आवश्यक है। इस अन्तः साहित्यिक शोध-प्रणाली के द्वारा अनेक लुप्त कड़ियाँ अनायास ही मिल जाएँगी। इस प्रकार भारतीय चिन्ताधारा एवं रागात्मक चेतना की अखंड एकता कायम हो सकेगा।

संदर्भ

1. अशोक के फूल, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, 2013, पृष्ठ-58
2. संस्कृति के चार अध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारती प्रकाशन, 1956, पृष्ठ-31
3. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण-2013 पृष्ठ-2
4. वही, पृष्ठ-40
5. वही, पृष्ठ-45
6. वही, पृष्ठ-18
7. संस्कृति के चार अध्याय, हजारी प्रसाद द्विवेदी, लोकभारतीय प्रकाशन, पृष्ठ-30-31
8. संस्कृत साहित्य का अभिनव इतिहास, डॉ. राधावल्लभ त्रिपाठी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ-8
9. भारतीय साहित्य, डॉ. मूलचन्द गौतम, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 2009, पृष्ठ-71
10. वही, पृष्ठ-72
11. वही, पृष्ठ-91
12. वही, पृष्ठ-91-92

“प्राणियों के इस शरीर की रक्षा का दायित्व बहुत-कुछ
हमारे मन पर भी निर्भर करता है।”

सरदार वल्लभ भाई पटेल

“बहुत बोलने से कोई फायदा नहीं होता
बल्कि नुकसान ही होता है।”

सरदार वल्लभ भाई पटेल



केंचुआ को बधाई!

केंद्रीय चुनाव आयोग स्वयं एक सशक्त, सक्षम, निष्पक्ष एवं स्वतंत्र संवैधानिक संस्था है। इसके निर्णय व कार्यकलापों ने इसकी भूमिका व विश्वसनीयता स्थापित हुई है। जिस प्रकार केंचुआ को किसानों का मित्र कहा जाता है, ठीक वैसे ही केंद्रीय चुनाव आयोग (केंचुआ) को भी 'भारतीय मतदाताओं का मित्र' की संज्ञा दी जाये, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी।



डॉ० विनोद शंकर सिंह
सहायक
ए. एन. कॉलेज, पटना

भारतीय लोकतंत्र का महात्योहार 'लोकसभा चुनाव-2019' लगभग डेढ़ माह की अवधि और सात चरणों के बाद अंततः 23 मई 2019 को मतगणना के बाद संपन्न हो गया। अत्यंत पुनीत व महत्वपूर्ण लेकिन जटिल निर्वाचन प्रक्रिया को सम्पूर्ण भारतवर्ष में नियंत्रित कर पूरा कराने हेतु 'केंचुआ' अर्थात् केंद्रीय चुनाव आयोग को संपूर्ण राष्ट्रवासियों की तरफ से लख-लख बधाईयाँ। भारतीय लोकतंत्र में केंद्रीय चुनाव आयोग एक स्वतंत्र संवैधानिक संस्था है। भारतीय संविधान के अनुच्छेद 324 के अंतर्गत केंद्रीय चुनाव आयोग का प्रावधान किया गया है। उसके गठन की प्रक्रिया से लेकर कार्य व जिम्मेवारियों के निष्पादन का विस्तृत विवरण उल्लिखित है। यद्यपि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद से लेकर अबतक समय-समय पर चुनाव संपन्न होते रहे हैं और इसमें केंद्रीय चुनाव आयोग की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। लेकिन दिवंगत मुख्य चुनाव आयुक्त स्व० टी०एन० शेषन ने अपने कार्यकाल में निःसन्देह पहली बार केंद्रीय चुनाव आयोग की जिम्मेवारी, कार्यकलाप व महत्ता का अहसास आम भारतीय जन-मानस को कराया। उनकी कार्यशैली ने आम मतदाताओं को

झकझोरा ही नहीं बल्कि, "वोट हमारा अधिकार है", इस जवाबदेही के प्रति जागरूक भी किया। उनके बाद चुनाव आयोग के तत्कालीन परामर्शी श्री के०जे० राव की सक्रियता व दूरदर्शिता ने इस संवैधानिक संस्था की महत्ता और विश्वसनीयता को और सशक्त रूप में भारतीय समाज में स्थापित किया। इसी परंपरा का निर्वहन करते हुए वर्तमान केंद्रीय चुनाव आयोग की टीम ने लोकसभा चुनाव-2019 को कुशलता एवं सफलता के साथ संपन्न कराया। बेशक, निर्वाचन-प्रक्रिया पूरी तो हो गयी है, पर लोकसभा चुनाव-2019 से कुछ विचारणीय प्रश्न उभर कर सामने आये हैं, जिनका सुविचारित निराकरण भविष्य में चुनाव आयोग की अपनी भूमिका और अधिक प्रखर व सशक्त रूप में





तय कर सकने में मील का पत्थर साबित हो सकता है।

इस वर्ष लोकसभा चुनाव संपन्न कराने में सात चरणों तथा लगभग डेढ़ महीने का समय लगा। सोचकर देखा जाय, कि इस लंबी अवधि में देशभर में विकासपरक कार्यकलाप ठप्प से पड़ गये। बैंकों की गतिविधियों के प्रभावित होने से आर्थिक विकास की गति भी ठहर-सी जाती है। किसी भी राष्ट्र के प्रगति की रीढ़ माने जाने वाली शिक्षा-व्यवस्था भी पंगु बन जाती है। प्राथमिक स्तर से लेकर उच्च शैक्षिक स्तर तक की संस्थाओं शिक्षकों, कर्मियों व पदाधिकारियों को निर्वाचन कार्य में झोंक दिया जाता है। स्कूली व्यवस्था विशेषकर ध्वस्त-सी हो जाती है। अन्य सरकारी व अर्द्धसरकारी संस्थाएं भी बुरी तरह से प्रभावित हो जाती है। इससे निपटने के लिए यह अतिप्रासंगिक होगा कि केंद्र सरकार विचार करे कि केंद्रीय चुनाव आयोग की अपनी सुसंगठित व सुव्यस्थित तंत्र हो। इसके पदाधिकारी व कर्मचारीगण वर्ष भर निर्वाचन संबंधी कार्य— यथा, बी0एल0ओ0 का कार्यभार, वोटर लिस्ट बनाना, नाम जोड़ना-हटाना, वोटर कार्ड बनवाना, वोटरी पर्ची का ससमय मतदाता तक पहुँचाना व अन्य संबंधित डाटा संकलन आदि का कार्य स्वतंत्र और अचूक रूप से कर सकते हैं। नियोजन प्रदान करने की दिशा में भी यह एक सकारात्मक प्रयास साबित होगा। सरकार को इस संबंध में अखिल भारतीय निर्वाचन सेवा का गठन करने का विचार करना चाहिए। मत यह भी है कि देशभर में इस संस्था के अपने पदाधिकारी व कर्मी हो जो निर्वाचन संबंधी कार्य को अविरल और अचूक रूप से वर्ष भर निष्पादित किया करें।

अपने हालिया बयानों में बिहार राज्य के मुख्यमंत्री श्री नीतीश कुमार ने बहुत ही समीचीन प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति की है कि निर्वाचन प्रक्रिया कम अवधि में, अनुकूल मौसम में, और कम से कम चरणों में संपादित करने के प्रयास किये जायें। अगर अपने देश में उपलब्ध मानव संसाधन के स्वास्थ्य एवं कार्य-क्षमता के सदुपयोग की वास्तविक चिंता करनी हो, तो उक्त परामर्श के आलोक में शीघ्र ही सुविचारकर निर्णय लेना होगा। मतदान कर्मी, मतदाता, सिपाही-पुलिस बल, पदाधिकारी गण व नेताओं की हालत इस पीड़ादायी भीषण गर्मी में किस तरह की होती है, यह कल्पना से परे नहीं है। विशेषकर मतदाता, जिसके अधिकारों के लिए चुनाव होते हैं, वह भी प्रतिकूल मौसम के कारण मतदान केंद्रों तक नहीं पहुँच पाते हैं। फलतः वोट प्रतिशत बढ़ने की बजाय घटता चला जाता है।

केंद्रीय चुनाव आयोग को इस दिशा में भी विचारकर ठोस निर्णय लेना चाहिए कि प्रधानमंत्री, मुख्यमंत्री जैसे अन्य व्यक्तियों की चुनावी रैलियों व सभा को निर्धारित व सीमित संख्या में कर दिया जाना चाहिए। उनके आवागमन, सुरक्षा इंतजाम, आदि पर अनावश्यक रूप से खर्च जा रहे धन पर अंकुश लगाया जा सकता है। निःसंदेह, यह बचा हुआ धन राष्ट्रहित में काम आयेगा।

उस बात का भी पूरा-पूरा ध्यान रखा जाना चाहिए कि निर्वाचन अवधि में चुनाव आयोग को लेकर आरोप-प्रत्यारोप न हों। इस संबंध में किसी प्रकार का प्रश्न चिन्ह उस अवधि में न खड़े किये जायें। चुनाव आयोग को समझ है कि उसे निष्पक्ष होकर चुनाव संपन्न कराने हैं और हर चुनाव में



यह भाव परिलक्षित भी होता है। चुनाव आयोग की गरिमा व विश्वसनीयता को बनाए रखने की दिशा में यह विचार अनुकरणीय है।

प्रायः देखा जा रहा है कि हर बार चुनावी अवधि में चुनाव आयोग 'वोट प्रतिशत' में बढ़ोतरी करने हेतु तरह-तरह के प्रयास करता है। कोशिश होती है कि मतदाता अधिकाधिक संख्या में अपने मतों का प्रयोग कर पायें। इस वर्ष भी लोकसभा चुनाव को 'महात्योहार' की संज्ञा देकर बहुप्रचारित किया गया है। एक पहलू यह भी है जब हम महात्योहार की बात करते हैं, तो महात्योहार जैसा माहौल भी समाज में दिखाई देना चाहिए। वाहनों की भागमभाग, झंडो-पताकों का प्रदर्शन, लाउडस्पीकों की कानफोड़ू आवाजें, आदि पर जरूरत से ज्यादा बंदिशें होने के कारण चुनावी उत्सवी माहौल बन नहीं पाता है और परिणामतः चुनाव के प्रति मतदाता उदासीन दिखाई देते हैं। वोट प्रतिशत बढ़ाने हेतु इस संबंध में भी सुविचार की गुजाईश है। कोशिश हो कि चुनावी महात्योहार नीरस व उदासीन न दिखे।

हमारा देश सूचना युग में प्रवेश कर गया है। हम सूचना क्रांति के विभिन्न संसाधनों का उपयोग भलि भाँति करने लग गये हैं। अर्थात् केंद्रीय चुनाव आयोग को भी सूचना क्रांति के वाहक, इंटरनेट का इस्तेमाल करते हुए 'ऑनलाईन वोटिंग' की व्यवस्था हेतु विचार करना चाहिए। निःसंदेह, भारत गाँवों का देश है। लेकिन, सूचना क्रांति ने शहर और गाँवों के फर्क को काफी हद तक मिटा दिया है। गाँव का जनमानस भी इंटरनेट की भाषा और उपयोगिता से सुपरिचित है। अतः 'ऑनलाईन वोटिंग' की दिशा में निर्णय लेने से वोटिंग प्रतिशत

में भी विचारणीय इजाफा होगा। जो कि एक स्वस्थ व जागरूक लोकतंत्र का परिचायक है।

केंद्रीय चुनाव आयोग ने इस वर्ष भी पिक मतदान केन्द्र, सक्षम व दिव्यांगजनों के द्वारा संचालित मतदान केंद्र बनाकर अपनी दूरदर्शिता का परिचय दिया है। वोटर कार्ड धारकों की संख्या में भी अच्छी खासी बढ़ोतरी हुई है। पूरे चुनावी अवधि में हिंसक घटनाओं में कमी आना, सुरक्षा के पुख्ता इंतजामात, वोटर्स को मतदान केंद्र तक पहुँचाना आदि की व्यवस्था हेतु केंद्रीय चुनाव आयोग प्रशंसा का पात्र है। चुनाव आयोग को संबंधित क्षेत्रों में ट्रांसजेंडर मतदान केन्द्र बनाने की दिशा में भी पहल करना चाहिए। चुनाव आयोग व इसके सदस्यों के अथक प्रयास से लोकसभा चुनाव-2019 में हम मतदाताओं ने अपना मताधिकार का उपयोग किया, इसके लिए उन्हें लख-लख बधाईयाँ व शुभकामनाएँ।

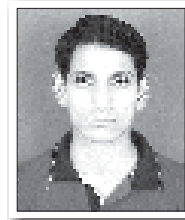
निष्कर्षतः केंद्रीय चुनाव आयोग स्वयं एक सशक्त, सक्षम, निष्पक्ष एवं स्वतंत्र संवैधानिक संस्था है। इसके निर्णय व कार्यकलापों ने इसकी भूमिका व विश्वसनीयता स्थापित हुई है। जिस प्रकार केंचुआ को किसानों का मित्र कहा जाता है, ठीक वैसे ही केंद्रीय चुनाव आयोग (केंचुआ) को भी 'भारतीय मतदाताओं का मित्र' की संज्ञा दी जाये, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। केंद्रीय चुनाव आयोग को पुनः बधाईयाँ और भविष्य में भारतीय लोकतंत्र के मूल्यों को स्थापित करने हेतु किये जाने वाले प्रयासों हेतु ढेरों शुभकामनाएँ।

●



प्राचीन भारत में भौगोलिक ज्ञान

भारत में 'भूगोल' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सूर्य सिद्धांत नामक पुस्तक में किया गया था तथा पुराणों में भूगोल, खगोल और ज्योतिषशास्त्र के मध्य अन्तर स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार प्राचीन भारत में भौगोलिक ज्ञान काफी विकसित अवस्था में थी।



विक्रान्त कुमार

शोध छात्र, भूगोल विभाग
ए. एन. कॉलेज, पटना

अ

ति प्राचीन काल से ही अपनी भौतिक तथा सांस्कृतिक उपलब्धियों के फलस्वरूप भारत विश्व का अग्रणी देश रहा है। बहुआयामी श्रेष्ठता के कारण आदिकाल से ही भारत समस्त संसार के लिए आकर्षण का केन्द्र रहा है। इसका कारण ईसा के 3500 वर्ष पूर्व से ही भारत में ज्ञान-विज्ञान का पर्याप्त विकास होना माना जाता है। हालाँकि आधुनिक खोजों से यह प्रमाणित होता है कि भारतीय सभ्यता कम से कम 10000 साल से भी ज्यादा पुरानी है। अतः भारत वर्ष दुनिया का वह खण्ड है जहाँ की मानव सभ्यता सर्वाधिक प्राचीन है। ऐसा इसलिए संभव हो सका होगा क्योंकि भारतीय जन-समुदाय इस भूखण्ड की विविधतापूर्ण प्राकृतिक संसाधनों के समुचित उपयोग की कला को सर्वप्रथम सीखकर आर्थिक विकास के शीर्ष पर अपने आपको स्थापित कर चुका होगा। यह वह समय था जब आधुनिक विश्व के अग्रणी तथा विकसित देश प्रायः अविकसित थे। वहाँ के निवासी तक या तो सभ्यता के आदिम अवस्था में थे या वे जन शून्य थे। पुरातात्विक साक्ष्यों तथा साहित्यों में वर्णित तात्कालीन समाजिक दशाओं के अध्ययनों से प्रमाणित होता है कि प्राचीन भारत सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक तथा ज्ञान विज्ञान की दृष्टि से अत्यंत विकसित अवस्था में था।

जहाँ तक भारत में भौगोलिक ज्ञान के

इतिहास की बात है तो यह उतनी ही प्राचीन है जितनी भारतीय सभ्यता। प्राचीन समय में भारतीयों को भौगोलिक तथ्यों तथा परिघटनाओं की अच्छी समझ थी। भारतीय विद्वानों को ऋतु परिवर्तन, ज्वार-भाटा, अक्षांश देशांतर, खगोलीय घटनाएँ आदि के बारे में सही संकल्पनाएँ थी। भारत में 'भूगोल' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग सूर्य सिद्धांत नामक पुस्तक में किया गया था तथा पुराणों में भूगोल, खगोल और ज्योतिषशास्त्र के मध्य अन्तर स्पष्ट किया गया है। इस प्रकार प्राचीन भारत में भौगोलिक ज्ञान काफी विकसित अवस्था में थी।

ब्रह्माण्ड विज्ञान : प्राचीन काल में भारतीयों को ब्रह्माण्ड विज्ञान तथा ब्रह्माण्ड उत्पत्ति से संबंधित सही जानकारी थी। वे वैदिक तथा पौराणिक साहित्यों में ब्रह्माण्ड तथा विश्व रचना की जानकारी मिलती है। ऋग्वेद में पृथ्वी की उत्पत्ति की प्रक्रियाएँ तथा सूर्य, चंद्रमा एवं पाँच ग्रह तथा 27 तारामंडलों सहित 34 आकाशीय पिण्डों का वर्णन किया गया है। पुराणों में नौ ग्रह सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, बृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु और केतु निर्धारित किये गये थे तथा बुध को हरा रंग का, शुक्र को सफेद, मंगल को लाल, बृहस्पति को पीला तथा शनि को काले रंग का बतलाया गया था। प्राचीन भारतीय विद्वानों को



ग्रहण (Eclipses) लगने तथा उसके कारणों के बारे में जानकारी थी। वराहमीहिर ग्रहण के प्रभावों का वर्णन किया है। ऐतरेय ब्राह्मण में विभिन्न प्रमाणों के आधार पर पृथ्वी को गोलाकार बताया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि सूर्य न तो उगता है और न ही डूबता है।

अक्षांश एवं देशान्तर : विश्वत रेखा से किसी बिंदु की कोणिय दूरी अक्षांश, वहीं प्रधान यम्योत्तर से पूरव या पश्चिम अंशों में कोणिय दूरी देशान्तर कहलाती है। भारतीय विद्वान धरातल पर किसी स्थान को निश्चित करने में अक्षांश तथा देशान्तर के महत्व को जानते थे। पुराणों में अक्षांश तथा देशान्तर का वर्णन मिलता है। इसमें अक्षांशों के अक्षांशों के आधार पर पृथ्वी को कई प्रदेशों में बाँटा गया है। जैसे विश्वत रेखीय मेखला, मेरु प्रदेश (उत्तरी ध्रुव) आदि। भारतीय विद्वानों में उज्जैन, श्रीलंका तथा मेरु पर्वत से होकर गुजरने वाली देशान्तर को प्रधान देशान्तर (Prime Meridian) मानते थे।

दिशा ज्ञान : प्राचीन भारतीय साहित्यों में दस दिशाओं का वर्णन मिलता है तथा प्रत्येक दिशा के लिए एक नियंत्रक देवता की कल्पना की गई थी। जो इस प्रकार है—

दिशा हिन्दी में	अंग्रेजी में	नियंत्रक देवता
1. पूर्व	East	इन्द्र
2. अग्नेय	South East	अग्नि
3. दक्षिण	South	यम
4. नैऋत्य	Souths west	नृति
5. पश्चिम	West	वरुण
6. वायव्य	North west	मारुत
7. उत्तर	North	कुबेर

8. ईशान	North East	ईश
9. ऊर्ध्व	Zenith	ब्रह्मा
10. अधः	Nadir	शेषनाग

उस समय देशान्तर के आधार पर दो स्थानों के बीच की दूरी की गणना किया जाता था।

पृथ्वी की उत्पत्ति : प्राचीन भारतीयों को विश्वास था कि पृथ्वी की रचना गैसीय पदार्थों के ठोस होने से हुआ है। उनके अनुसार पृथ्वी की उपरी परत कठोर शैलों, मृदा तथा रेत से बनी है और पृथ्वी का आंतरिक भाग तप्त तथा तरल अवस्था में है।

पृथ्वी का आकार : पृथ्वी का आकार गोलाभ (Spheroid) है जो ध्रुवों पर थोड़ा चपटी है। सूर्य सिद्धांत तथा आर्यभट्ट की पृथ्वी से संबंधी संकल्पनाएँ आधुनिक तथ्यों से काफी निकट है। जैसे पृथ्वी की परिधि का माप, अक्षांशों की बीच की दूरी तथा पृथ्वी की त्रिज्या आदि की गणना इत्यादि।

मौसम तथा जलवायु : वैदिक तथा पौराणिक कालीन भारतीय वायुमण्डल, मौसम तथा जलवायु से अच्छी तरह परिचित थे। ऋग्वेद में कहा गया है कि वायुमण्डल को पक्षी भी पार नहीं कर सकते हैं। भाष्कराचार्य ने पृथ्वी के चारों तरफ वायुमण्डल की मोटाई 12 योजन (154 Km) बतलाई, जिसमें मेझ, तड़ित, वर्षा, कोहरा तथा पाला आदि की घटनाएँ होते हैं। ऋग्वेद में साल को पाँच ऋतुओं वसंत, ग्रीष्म, प्रोउरित (वर्षा ऋतु), शरद तथा हेमन्त का वर्णन किया गया है। महाकाव्यों में 6 ऋतुओं वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद हेमन्त तथा शिशिर का वर्णन किया गया है। उपरोक्त विवरण से पता चलता है कि प्राचीन भारतीयों को मौसम संबंधी अच्छी जानकारी थी।

भूकंप तथा ज्वालामुखी : इस बात के स्पष्ट प्रमाण है कि प्राचीन ऋषियों तथा विद्वानों के



भूकंप तथा ज्वालामुखी के संबंध में पर्याप्त जानकारी थी पुराणों में भूकंप शब्द का कई बार प्रयोग किया गया है। इसमें बताया गया है कि भूकंप तथा ज्वालामुखी पृथ्वी के आंतरिक परिघटनाओं के कारण उत्पन्न होते हैं।

द्वीप तथा जलवायु : प्राचीन भारतीय साहित्यों के अनुसार पृथ्वी कई स्थल खण्डों में विभाजित है। पुराणों में विश्व को सात वृहद् द्विपों में बँटा माना गया है, जो इस प्रकार हैं:-

1. जम्बू द्वीप
2. कुश द्वीप
3. प्लक्ष द्वीप
4. पुष्कर द्वीप
5. सलमाल द्वीप
6. क्रौंच द्वीप
7. सक द्वीप

वेदों में स्थल तथा जल के वितरण का वर्णन भी मिलता है। यह उल्लेख मिलता है कि उत्तरी गोलार्द्ध में जलीय भाग अधिक है। भारत वर्ष को जम्बू द्वीप का दक्षिण भाग बताया गया है। विष्णु पुराण में भारत की सीमाओं का निर्धारण किया गया है।

‘उत्तरंयत समुद्रस्य, हिमाद्रेश्चैव दक्षिणम्।

वर्षतत् भारतनाम, भारती यत्र सन्ततिः।।

पर्वत तथा नदी : वेदों, पुराणों तथा महाकाव्यों में भारत के अनेक पर्वतों तथा नदियों का वर्णन मिलता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में हिमवत, उत्तर कुरु, उत्तर भाद्र, त्रिककुद्र (हिन्दुकुश), विन्ध्यन, पारिपात्र, दुर्दुर (Durdura) और महेन्द्र पर्वतों के नाम मिलते हैं। हिमालय को भारतवर्ष के

उत्तर में स्थित तथा इसके दो उप भाग आंतरिक तथा बाह्य हिमालय के रूप में बतलाया गया है। विन्ध्यन पर्वत को कई चोटियों वाला विस्तृत बतलाया गया है। पौराणिक साहित्यों में अनेक पर्वतों का उल्लेख किया गया है। इसमें सध्या (महाराष्ट्र के पश्चिम घाट), सूक्तिमान (खान देश अजन्ता और गोलकुण्डा के पर्वत) और कक्ष (विन्ध्या के उत्तर में केन के टौंस नदी तक है)। पर्वतों के अतिरिक्त अनेक प्रवाह तंत्रों का वर्णन भी प्राचीन वैदिक और पौराणिक साहित्य में किया गया है। ऋग्वेद में नदियों का उल्लेख है जैसे. गंगा, जमुना, सरस्वती, शतद्रु (सतलज), पुरुपणी (राव), असिनी (चिनाव), वितस्ता (झेलम), अर्जुनीय (सिन्धु का उपरी भाग), सुषोम (श्रवण), सिन्धु, कुथ (काबुल), गोमती (गोमाला), क्रुमु (कुरुम) कई नदि तंत्रों का साहित्यों में मिलता है, जिसमें सिन्धु, नर्मदा, तापी, गोदावरी, कृष्णा तथा लोहित्य (बह्मपुत्रा) नदि तंत्र आदि। इन साहित्यों नदियों की लम्बाई तथा इसके प्रवाह मार्गों का सटिक वर्णन मिलता है।

संदर्भ—

माजिद हुसैन—भौगोलिक विचारधारा का इतिहास

इस०एम० जैन—भौगोलिक चिंतन एवं विधितंत्र

डी० पी० सिंह—भौगोलिक चिंतन की समीक्षा

Ali, S.M. -Geography of Puranas

Burgess, j. - Notes on Hindu Astronomy

Ayer - The Seven Dwipas fo Purana

Law B.c -Mountain of India, in Ancient Literature

“सेवा-धर्म बहुत कठिन है यह तो काँटों की
सेज पर सोने के समान ही है।”

सरदार वल्लभ भाई पटेल



स्त्री पुरुष सम्बन्ध के सामाजिक पक्ष

प्राचीन मान्यताओं की आड़ लेकर अपनी व्यक्तिगत परेशानियों से बचने के लिए बालिकाओं की हत्यायें की जाती रही है। पहले तो बालिकाओं की केवल उपेक्षा ही की जाती थी, लेकिन अब तो अति आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग में आ जाने की वजह से उनके जन्म से अधिकार को भी छीन लिया जाता है।



डॉ० नेहा कुमारी

तदर्थ व्याख्याता
समाजशास्त्र विभाग
ए.एन.कॉलेज, पटना

वेदों में नारी : वेद समस्त मानव जाति का पथ—प्रदर्शन करने वाले ऐसे प्रमुख ग्रन्थ हैं जिनमें मानव—जाति के धर्म—पथ का प्रदर्शन किया गया है। और इस धर्म—पथ के मुख्य विषय हैं— कर्म, उपासना एवं ज्ञान। “त्रैगुणविषया वेदाः” इत्यादि गीता के वाक्यों से भी यही सुचित किया गया है। वेदों में कोई भी बात स्त्री अथवा पुरुष को संकेत करके अथवा स्त्री—पुरुष के भेद को लक्ष्य करके नहीं कही गयी है। उनमें जो कुछ कहा गया है, समस्त मानव जाति के लिए समान रूप से कहा गया है। तथापि वेद ज्ञान की खान है, उनमें खोजने पर नारी पे प्रकाश डालने वाले पर्याप्त तत्त्व होते हैं। ऋग्वेद में नारी सर्वाधिक चर्चा की गयी है किन्तु अन्य वेदों में नारी की बहुत कम चर्चा प्राप्त होती है। प्राचीनकाल से चली आ रही नारी की संस्कृति एवं सभ्यता पर प्रकाश डालने वाली बहुत सी ऋचायें ऋग्वेद में पायी जाती हैं। तत्कालीन मनोषिणी नारियाँ सूक्तों का साक्षात्कार करती थी तथा ऋषिकाओं के रूप में प्रतिष्ठित हुई थीं। ऋग्वेद में ऐसे अनेकों सूक्त हैं जिनकी ऋषिकाएं नारियाँ हैं।

यथा सिन्धुर्नदोनां साम्राज्यं सुषुवे वृष।
एवं त्वं सम्राज्ञेधि प्रत्युरस्तं परेत्य च ॥१
—अथर्ववेद

उपर्युक्त मंत्र में जिस प्रकार स्त्री की गृह पर शासन करने का आशीर्वाद दिया गया है उससे वैदिक कालीन समाज में नारी की सम्माननीय स्थिति का स्वतः अनुमान लगाया जा सकता है। विवाह सम्पन्न होते ही पति गृह में आने वाली नववधू को श्वसुरालय में सास, ससुर, ननद, देवर आदि सभी सदस्यों के हृदय की सम्राज्ञी बनने का आशीर्वाद दिया जाता था। 2 इन उद्धरणों से स्पष्ट होता है कि आर्य लोग वधु को अत्यधिक प्रेम, आदर व सम्मान देते थे। यहां एक ऐसे परिवार की कल्पना की गई है जिसमें स्त्री का स्थान अत्यंत सम्मानपूर्ण है और वह घर की रानी मानी जाती है। संभवतः इसी के अनुसार वधू को “बहुरानी” कह कर संबोधित करने की परंपरा चली आ रही है। बहुरानी का ही आदर सूचक दूसरा नाम “गृहिणी” भी है।

वस्तुतः आर्य लोग नारी से विवाह, यज्ञ—संपादन एवं धर्मानुष्ठान आदि कराते थे। नारी के बिना गृह की कल्पना ही नहीं की जा सकती थी। गृहिणी के बिना गृहस्थ आश्रम का संपादन नहीं हो सकता था। पत्नी ही घर है और विश्राम स्थान है— ऐसी उनकी धारणा थी। 3 अतएव गृह की एकमात्र अधिष्ठात्री देवी नारी ही



थी। यद्यपि परिवार का प्रधान, कुटुंब का सबसे वयोवृद्ध पुरुष होता था किन्तु फिर भी परिवार की सबसे बड़ी स्त्री अपने पति के अधीन होते हुए भी समस्त गृह-प्रबंध की संचालिका होती थी। सूर्य द्वारा दृष्ट मंत्रों से स्पष्ट है की घर पे एक मात्र स्त्री का ही अधिपत्य था। नौकरों चाकरों पर भी उसी का शासन चलता था। वृद्धावस्था तक नारी अपने गृह में प्रभुता रखती थी।

वैदिक युग के परिवारों में पत्नी का स्थान अत्यंत सम्मानजनक था तथा उसे घर में रानी के रूप में प्रतिष्ठित किया जाता था। उस काल में धार्मिक अनुष्ठानों एवं अधिकारों को विशेष महत्व प्राप्त था तथा किसी व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उससे धार्मिक अधिकारों पर ही आधारित थी। वैदिक युग में स्त्रियों की याज्ञिक स्थिति अत्यंत अच्छी थी। पति-पत्नी दोनों संयुक्त रूप से ज्ञानुष्ठान के अधिकारी होते थे। पति को पत्नी के बिना अपूर्ण माना जाता था। ऐसी मान्यता थी की पत्नी रहित पुरुष के हविष को देवता स्वीकार नहीं करते। वेदों में अनेक स्थलों पर पति पत्नी के संयुक्त यज्ञानुष्ठान का भी उल्लेख हुआ है। प्रातः सायं देवताओं को हविष अर्पित करने के लिए पति-पत्नी द्वारा संयुक्त रूप से अग्निहोत्र कर्म करने का विधान था। १० वेदों में न केवल संयुक्त अपितु पृथक् रूप से भी स्त्रियों द्वारा यज्ञ किये जाने के वर्णन मिलते हैं। अथर्ववेद में स्त्रियों को स्पष्ट शब्दों में पक्ष की अधिकारिणी कहा गया है। कुछ स्त्रियाँ, विशेषकर कन्याएँ अपने यज्ञ सम्पन्न करती हुई पायी जाती थी। ऋग्वेद में एक कन्या का उल्लेख जो स्नान के पश्चात् सोमरस लेकर घर लौटती है और तुरंत यज्ञ में इंद्र देवता को सोमरस प्रदान करती हैं। एक अन्य स्थल पर विश्वधारा नामक स्त्री का उल्लेख है जो प्रतिदिन

प्रातः उठकर स्वयं यज्ञ करती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि वैदिक युग की नारी धर्म कार्यों में अत्यंत स्वतंत्र थी। उसके धार्मिक अधिकार व्यापक थे तथा वह पति के समान ही यज्ञों का आनंद उठाती थी। पति की अनुपस्थिति में वह उन सभी यज्ञों का संपादन कर सकती थी जिन्हें पति-पत्नी सम्मिलित रूप में करने के अधिकारी थे। वैदिक युग में कन्या माता-पिता को पुत्र के समान ही प्रिय थी। आर्यजन कन्याओं का अत्यंत सम्मान करते थे और पवित्र देवी के समान मानते थे। कमनीय कन्या की प्राप्ति के लिए पूषा देवता से प्रार्थना तक की जाती थी। विवाह से पूर्व कन्या के संरक्षक पिता तथा भाई होते थे। वे अपनी कन्या का अत्यंत स्नेह के साथ पालन-पोषण करके उसका विवाह कर देते थे। ऋग्वेद में दो ऐसी बहनों का वर्णन है जो अपनी माता की गोद में लेटी हुई हैं। ये बहनें धावा एवं पृथ्वी हैं, इन्हें अपने माता-पिता के अंगों का आभूषण कहा गया है। इससे कन्याओं पर माता-पिता की वात्सलता की सुन्दर झलक मिलती है। ऋग्वेद में ही एक स्थान पर कहा गया है कि "पुत्र से पिता को जो आनंद मिलता है वही पुत्री से माता को, बल्कि उससे भी अधिक।" इससे पुत्री की यथास्थिति का स्पष्ट आभास मिलता है। कन्या-जन्म कितना सराहनीय था इस बात का समर्थन ऋग्वेद की एक उक्ति से होती है—"वह पुरुष धन्य है जिसकी कई पुत्रियाँ हो।" किन्तु फिर भी वेदों में स्थान-स्थान पर कन्या के प्रति उपेक्षा भाव भी व्यक्त हुआ है। कन्या वंश वृद्धि की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण तथा अपने कोमल-सरल स्वभाव से माता-पिता के मन को मोह लेती थी किन्तु फिर भी धार्मिक दृष्टि से वंश चलाने के लिए तथा युद्धों में योद्धाओं की आवश्यकता होने से पुत्री की



अपेक्षा पुत्र की कामना अधिक की गई हैं। यथर्ववेद में स्त्री गर्भ न होने की कामना की गई है। वस्तुतः कन्या की अपेक्षा का प्रधान कारण योद्धाओं की अधिक आवश्यकता का होना था। इसके अतिरिक्त विवाह के पश्चात् उसके सुख-दुख तथा दहेज संबंधी चिंताएँ भी माता-पिता के वात्सल्य को सदा सशक्ति किये रहती थी। फलस्वरूप वे कन्या की उत्पत्ति से बचने का प्रयत्न करते थे।

कन्या को "दुहिता" कहा गया है। यह शब्द दुह (दुहना) धातु से छना है। विद्वानों के मतानुसार प्राचीन काल में गाय दुहने एवं गोरक्षा का प्रधान कार्य कन्याओं पर अवलम्बित था। इसी कारण उन्हें दुहिता कहा गया है। किन्तु यास्क ने दुहिता की व्युत्पत्ति "दुहिता दुर्हिता", दुरे हिता तथा "दोगोधर्वा" से बतायी है। अतएव ब्राह्मण में कन्या को दुःखों की खान कहा गया है। वस्तुतः एक-दो कन्याओं का पालन-पोषण तथा भविष्य चिंतन माता-पिता के लिए कठिन अथवा भर स्वरूप न था किन्तु यदि बहुत सी कन्याएँ हों तो उन सबके लिए योग्य वर, दहेज तथा सुन्दर भविष्य की कल्पना करना सम्पन्न परिवारों में भी संदेहास्पद था। अतएव बहुत सी संततियों में माता-पिता स्वाभाविक ही पुत्र की कामना अधिक करते थे। तथापि कन्या पवित्रता की प्रतीक तथा वात्सल्य का आधार मानी जाती थी। सामणाचार्य की निरुक्त पुष्ट टिका के अनुसार "कन्या" वर्धमान आयु की लड़की को ही बालिका को भी कहते थे। ऋग्वेद में उषा का चित्रण सुन्दर कन्या के रूप में हुआ है जो अपनी चमक-दमक से आकाश में बढ़ रही है और सूर्य उसके पीछे लगा है।

कन्याएँ विवाह से पूर्व पितृगृह में कुछ घरेलु कार्यों में अपने माता-पिता की सहायता भी करती

थी। गोदोहन एवं गोरक्षणा का भर तो उन पर था ही साथ ही वे खेतों की रक्षा कार्यों को भी करती थीं। जलाशयों से जल भर कर लाने का भारा कन्याओं पर था। इसके कारन उसके माता-पिता को विश्राम मिलता था। कन्याएँ रुई धुनना, सूत कतना, वस्त्र बुनना एवं कसीदा काढ़ने का कार्य भी करती थी। इस संबंध में अनेकों मंत्र उपलब्ध होते हैं।

वैदिक कालीन विवाह पद्धति से स्पष्ट होता है कि उस युग में युवावस्था में कन्याओं का विवाह हो जाता था। सायण ने "पत्येशंसन्ती" का अर्थ "पतिकाया" और "पर्याप्त यौवना" किया है। इसी प्रकार नव-वधू को यह आशीर्वाद देना है कि वह सास आदि पर समाश्री बने, तभी संभव था जबकि वधू की गृह शासन चलाने की योग्यतापूर्ण वय हो। इसके अतिरिक्त कन्याओं को शैक्षणिक स्थिति को देखते हुए भी यही प्रतीत होता है कि विवाह से पूर्व उपयोगी शिक्षा ग्रहण करते-करते वे अवश्य सोलह-सत्रह वर्ष की आयु प्राप्त कर लेती रही होंगी। वेदों में "जार" शब्द का प्रयोग कन्या के सामान्य प्रेमी के अर्थ में हुआ है। इससे स्पष्ट होता है कि विवाह से पूर्व युवक-युवती की परस्पर मिलने की स्वतंत्रता थी जो कि गंधर्व विवाह का रूप है। स्वयं योग्य वर का अन्वेषण करना एक युवती कन्या की सामर्थ्य की बात ही हो सकती है। नन्हीं बालिका में ऐसी बुद्धि होना असंभव ही है। किन्तु यह पारस्परिक विवाह निर्णय यदाकदा ही लिया जाता था। वस्तुतः कन्या का विवाह करना पिता का अनिवार्य कर्तव्य था। अपनी पुत्री के लिए योग्य वर का चुनाव कर लेना पिता के लिए असीम सुख का कारण था। किन्तु फिर भी वैदिक कालीन स्त्री-पुरुष गृहस्थ जीवन को सुखी बनाने का प्रयत्न करते थे और उनका विवाह परस्पर प्रेम के



आधार पर हुआ करता था। सदिता ने सूर्या को उस पति को दिया जिसकी वह हृदय से प्रशंसा करती थी। वह वधू कल्याणकारी होती है जो सुंदरी है और अपने माता-पिता की अनुमति से स्वयं अपने मित्र को वरती है।

किन्तु ऋग्वेद में कुछ ऐसे उदहारण भी प्राप्ति होते हैं जिनमें कन्याओं के बाल विवाहों का संकेत प्राप्त होता है। उषस्ति ऋषि का विवाह छोटी आयु की कन्या के साथ हुआ था। इंद्र ने कक्षीवान् को वृचया नाम की बालिका प्रदान की थी।

वैदिक काल में कन्या के विवाह में दहेज देने की प्रथा का स्पष्ट उल्लेख मिलता है। दहेज के अनुसार वधू का महत्व ससुराल में बढ़ जाता था। अथर्ववेद में वधू के साथ सौ गायों को दहेज में दिये जाने का उल्लेख है। सूर्या का दहेज उसके ससुराल पहुंचने से पूर्व ही उसके पति के यहां पहुंचा दिया गया था। किन्तु फिर भी दहेज कन्या के विवाह के बाधक नहीं था। यह केवल वर पक्ष के आदर-सत्कार, प्रेमपूर्ण उपहारों की भेंट का स्वरूप था। वर-वधू पक्ष को भी किसी प्रकार की माँग करने का कोई अधिकार नहीं था।

वर्तमान युग में सिनेमा टेलिविज़न को सामाजिक बदलाव का एक सशक्त साधन कहा जा सकता है बशर्ते कि इसका कुछ स्वार्थी तत्वों द्वारा निजी उद्देश्यों की पूर्ति के माध्यम से दुरुपयोग न हो स भारतीय फिल्म और टेलिविज़न के आरंभिक दिनों में एक नवज्योति का संचार हुआ था। "दुनिया न मानें, अछूत कन्या, इज्जत, वचन" इत्यादि फिल्मों में और टेलिविज़न के कुछ सीरियलों में ऐसा लगने लगा था कि महिलाओं के प्रति व्याप्त पूर्वाग्रही विचारधाराओं की जड़ों को कमजोर करने में सिनेमा और टेलिविज़न एक

महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन कर सकेगा, लेकिन वर्तमान समय में प्रदर्शित हो रही फिल्मों ने सारी आशाओं पर करारा वज्रपात कर दिया है। आज फिल्मोंयोग का एकमात्र उद्देश्य ऐन केन प्रकारेण धन संचय करना ही हो पाया ऐसा प्रतीत होने लगा है। आज फिल्मों और टेलिविज़न में मारकाट, हिंसा भ्रष्टाचार, बलात्कार, महिलाओं, का शोषण इत्यादि का ही बोलवाला है। इन फिल्मों में दामिनी, बैंडिट क्वीन इत्यादि है। अगर यह मान लिया जाए कि ऐसा सब कुछ वर्तमान समाज में घटित हो रहा है। और उन्हीं का अतिशयोक्तिपूर्ण ढंग से फिल्मांकन हो रहा है तो कुछ ठीक प्रतीत होता है। फिल्मों और टेलीविज़नों में महिला शोषण को और भी बढ़वा दिया है। फिल्मों में कहानियों में अक्सर दिखाया जाता है कि शहर का छेला बाबू गांव की किशोरी को बहला फुसला कर अपनी हवश का शिकार बना लेता है और ऐसा वास्तविक जीवन में भी होता है। फिल्मों में सफलता प्राप्त कर चुके लोगों के यहाँ नयी-नयी बालिकाओं की एक लम्बी कतारें हुआ करती हैं। ये डायरेक्टर, प्रोड्यूसर और अन्य भी कई लोग इन बालिकाओं को फिल्मों में अवसर देने का आश्वासन देकर उन्हें अपने वश में कर लेते हैं और उन बालिकाओं का देह शोषण से बाज नहीं आते हैं। पोर्नोग्राफी: विमेन, वायलैस एण्ड सिविल लिवटीज में डायना ई० एच० रसैल का मानना है कि बच्चों से बलात्कार की पृष्ठभूमि में मुख्य कारण बढ़ते अश्लील साहित्य और फिल्में ही हैं। अश्लील साहित्य बलात्कार को बढ़ावा देता है और अधिकांश बलात्कृत बालिकाओं को प्रायः वैश्यावृत्ति के व्यवसाय में बाध्य कर दिया जाता है। इस प्रकार अश्लील साहित्य, फिल्में और वैश्यावृत्ति उद्योग पुरुषों के हाथ में है।



इस क्रम में महिला के वर्तमान परिदृश्य पर भी विचार किया जाना आवश्यक प्रतीत होता है। महिला के शोषण अनगिनत आयाम होते हैं। लिंग भेद महिला शोषण का एक अतिरिक्त आयाम है। पितृसंतात्मक सामाजिक सांस्कृतिक संरचनाओं में महिला के दमित अस्तित्व का विश्लेषण दमन से उसके स्वतंत्रता का प्रयास एक स्वतंत्र व्यक्ति के रूप में, उसकी प्रतिष्ठा और भूमिका का निर्धारण वर्तमान समय में महिला मुक्ति के लिए किये जाने वाले आंदोलनों के प्रमुख सरोकार रहे हैं। पुरुष के बराबर ही महिला को भी पूर्ण स्वतंत्रता की संरचना महिला मुक्ति आंदोलन का सबसे प्रमुख आधार रहा है। सिमोन दि बोउवार का कहना है कि महिलायें जन्म नहीं लेती उन पर नारीत्व थोप दिया जाता है। कोई भी मनोवैज्ञानिक आर्थिक और आनुवांशिक नियाती महिला की अवस्थिति का निर्माण नहीं करते। यह पूर्ण समाज या सभ्यता ही है जो इस जीव का निर्माण करती है। पुरुष और नपुंसक के बीच यह अवस्थित है जिसे महिला के नाम से जाना जाता है। मेल्कय मगरिज की उक्ति है कि काम पिपासा आज के भौतिकवादी समाज का आध्यात्मवाद है। अतः जिस तरह अन्य युगों में मानव अध्यात्म के माध्यम से निर्वाण एवं चरम परिणति खोजता था उसी तरह काम पिपासा की अमर्यादित एवं निर्वाध तृप्ति मुक्ति का मार्ग हो गया है। भारतीय महिलाओं का द्वास पौराणिक मिथकीय चीत्रों का परिणाम नहीं है बल्कि यूरोप का औपनिवेशिक हस्तक्षेप इसका प्रमुख कारण है।

संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा अबतक अंतराष्ट्रीय स्तर पर चार विश्व महिला सम्मेलन आयोजित किये जा चुके हैं। भारत सहित तीसरी दुनिया की महिलाओं का जब सवाल उठाया तो इन देशों की निर्धनता सामने आयी लेकिन निर्धनता के कारणों

में छिपे साम्राज्यवादी कारकों के मंसूबों को नजर अंदाज किया गया। गर्भपात के सवाल पर बेटिकन सिटी और ईरान जैसे देशों ने विरोध किया। परिवार के प्रश्न पर बहुत वर्चस्व को खत्म करने के सवालों पर कोई ठोस निर्णय नहीं लिया जा सका। वही देह पर अधिकार का नारा आर्थिक आधार की प्राप्ति के नारे के साथ नत्थी न हो पाने के कारण शंका की दृष्टि से देखा गया। न्यूनाधिक मात्रा में यह स्थिति पूरे विश्व की है। इन्हीं विसंगतियों को दूर करने के प्रयासों को दूढ़ने के उद्देश्य से ही संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मैक्सिको में 19 जून से 2 जुलाई 1976 से 1985 के दशक को महिला दशक के रूप में घोषित किया गया। तमाम प्रयासों से अगर कुछ सफलता मिली है तो इसका अभिप्राय यह नहीं निकाला जा सकता है कि महिलाओं पर होने वाले शोषण में कमी हो गई है। यह निष्कर्ष जरूर निकाला जा सकता है कि उनके शोषण के स्वरूप में परिवर्तन हो गया है। पहले महिलायें हर प्रकार का अत्याचार चुपचाप सहन कर लेती थी, आज भी प्रतिरोध के साथ महिलायें ही सहन करती हैं लेकिन सहन तो महिलायें ही करती हैं। वर्तमान में फिल्म, टी०वी, कैमरे के भौड़ें प्रदर्शनों के द्वारा महिलायें स्वयं अपने अपमान एवं अवनति को आमंत्रण देती हैं। ये जरूर है कि सब कारणों में महिलाओं की मजबूरी और पुरुष का एकाधिकार शामिल होता है। लेकिन ऐसा हमेशा नहीं होता है। अगर महिलायें इन प्रदर्शनों से बाज आने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञा कर ले तो पुरुष वर्ग को नतमस्तक होना ही पड़ेगा। यह दुर्भाग्य ही है कि ऐसा हो नहीं पाता है। विगत कुछ वर्षों से लगातार जोर पकड़ती विश्व सुंदरी प्रतियोगिता का चयन भी एक तरफ से महिलाओं के आत्मसम्मान के



खिलाफ ही है। लेकिन इन प्रतियोगिताओं का विरोध करने वालों का अशिक्षित तथा पिछड़ा हुआ करार दे दिया जाता है। विश्व के लगभग 190 देशों की महिला प्रतिनिधियों का बीजिंग में 4 सितम्बर 1995 से प्रारंभ विश्व महिला सम्मेलन विभिन्न प्रतिरोधों के बावजूद कुछ मुद्दों पर सहमति के बाद आखिरकार 15 सितम्बर 1995 को समाप्त हो गया। 1995 से पूर्व हुए विश्व महिला सम्मेलनों से महिलाओं की अवस्थिति पर केवल परिपत्रों का ही आदान प्रदान हुआ था लेकिन इस बार कार्यान्वयन की दृष्टि से प्रथमतः प्लेटफार्म फार एक्शन की स्थापना बीजिंग में की गई। इस सम्मेलन में जहां एक ओर विकासशील देश स्वास्थ्य आर्थिक असमानता दूर करने, महिलाओं को पुरुषों के समान समाज के बराबरी के अधिकार प्रदान करने, परिवार नियोजन महिला स्वास्थ्य विषयों पर चर्चा कराने हेतु प्रयत्नशील देखे गये, वहीं दूसरी ओर अमेरिका वा अन्य पश्चिमी देश यौन अधिकारों का ही राग अलापते नजर आये। यहीं नहीं पाकिस्तान हमेशा की तरह यहां भी कश्मीर समस्या का मुद्दा उठाने से बाज नहीं आया। उसने महिलाओं की बलात्कार समस्या को कश्मीर समस्या से जोड़ा।

देश में प्रत्येक वर्ष 12 मिलियन बालिकाओं का जन्म होता है। जिनमें 1.5 मिलियन बालिकायें अपने जन्म दिन के पूर्व ही मर जाती हैं। जबकि 850,000 बालिकायें अपना पाँचवा जन्म दिन नहीं देख पाती हैं। भारत में 1.2 करोड़ बालिकाओं में 25 प्रतिशत बालिका अपना पन्द्रहवा जन्मदिन देखने के लिए जीवित नहीं रहती हैं। अर्थात् केवल 9 मिलियन बालिकायें ही 15 वर्ष तक जीवित रह पाती हैं।

हर 100 बालिकाओं के पीछे 105 बालक जन्म

लेते हैं, वक्त गुजर जाने के बाद यह अनुपात बराबर हो जाता है लेकिन चार वर्ष की उम्र तक बचपन में अधिक मौतों के कारण हर 100 बालिकाओं के पीछे बालकों की संख्या 104 या 105 हो जाती हैं। लिंग अनुपात हर 1000 बालकों के पीछे बालिकाओं की संख्या 975 हो जाता है। यह संख्या बचपन के वर्षों के दौरान घटती जाती है। वर्ष 2001 की जनगणना के अनुसार 0-4 वर्ष में बालिकाएँ 12.40 प्रतिशत 5-9 वर्ष में 13.36 प्रतिशत, 10-14 वर्ष में 11.59 प्रतिशत पाई गई हैं। वर्ष 2001 में 0-14 की आयु समूह के अंतर्गत बालिकाओं की तुलना में बालकों की संख्या 25.5 लाख से अधिक है। 19वीं वर्ष की उम्र तक की बालिकाओं की संख्या भारत की कुल 80 करोड़ की आबादी की एक चौथाई है। शारीरिक स्तर पर बालिकायें बालकों से अधिक शक्तिशाली होती हैं, परंतु प्रत्येक वर्ष 3 लाख से अधिक बालिकायें मर जाती हैं। ऐसी हर छठी मौत लिंग भेद और पक्षपात के कारण होती हैं।

भारत में लिंग अनुपात महिलाओं के विपरीत जाने का मुख्य कारण देश में गर्भपात तथा बालिका शिशु की हत्या है। हरियाणा, पंजाब, बिहार, मध्यप्रदेश, राजस्थान, पश्चिम उत्तर प्रदेश के 55 जिलों में नवजातों से 6 वर्ष की आयु समूह में प्रत्येक एक हजार शिशुओं में बालिकाओं की संख्या घटकर केवल 8000 रह गयी है स विश्वस्तर पर बालक बालिकाओं का अनुपात 105:100 है।

फोर्ड फाउंडेशन द्वारा वित्त पोषित एक अध्ययन से पता चलता है कि वर्ष 2001 में भारत में कुल 1.11 करोड़ गर्भपात हुए जिनमें से 0.67 करोड़ गर्भपात अभिप्रेरित थे। ये अभिप्रेरित गर्भपात भ्रूणहत्या की है। अधिकांश देशों के लिंग



अनुपात महिलाओं के हक में होता है लेकिन भारत में ऐसा नहीं है। भारत में अर्थव्यवस्था में हुए सुधार और मूल सेवाओं की उपलब्धि के बावजूद बीसवीं सदी के हर दशक से लिंग अनुपात में कमी होती रही है। 2009 में लिंग अनुपात 97/2 था जो 2011 में घटकर 927 हो गया। मृत्यु दरों पर क्षेत्र, धर्म और जाति का असर पड़ता है, जनसंख्या के किसी क्षेत्र में महिलाओं की स्थिति जितनी कमजोर होगी मौतें भी उतनी अधिक होगी। केवल केरल में ही लिंग अनुपात महिलाओं के हल में है। कर्नाटक, आंध्रप्रदेश, उड़ीसा, तमिलनाडु और हिमाचल प्रदेश में लिंग अनुपात 950 से अधिक है, अन्य सभी राज्यों में महिलाओं को अपेक्षा पुरुषों की संख्या लगभग 10 प्रतिशत अधिक हैं।

बालिका का पृथ्वी पर कदम रखते ही उसके गलत समाजीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ हो जाती है। हाथ बालिका आ गई की तर्ज पर शोक सभा प्रारम्भ हो जाती है। बालक जन्म की अभिलाषा रखने वाले लोग बालिका जन्म पर खुशी मनाने के बजाय माता-पिता के साथ सहानुभूति प्रदर्शित करने लगते हैं। ज्यादातर घरों में देखा जाता है कि बालिकाओं की की बालकों से तुलना न करना, उसकी हर इच्छा की पूर्ति न करना, पराया धन समझना तथा पृथ्वी जैसी सहनशीलता का उदाहरण देकर उसे सहनशीलता की शिक्षा प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से दी जाती रहती है। उसके साथ खान-पान, रहन-सहन, पहनावा, खेलकूद, पढाई सिलाई के अलावा अन्य सभी क्षेत्रों में भेदभाव पूर्ण वर्ताव किया जाता है। यह लिंग विभेदीकरण भारत में ही है, ऐसी बात नहीं है, कमोवेश यह विश्व के लगभग कई देशों में है। जापान में सरकारी स्तर पर 5 मई को बालकों का और 3 मार्च को बालिकाओं का दिन मनाने की घोषणा की गई है।

लेकिन बालकों का दिन बड़े उत्साह के साथ मनाया जाता है और यहाँ तक की उस दिन वहाँ पर सरकारी छुट्टी की घोषणा कर दी जाती है। लेकिन बालिकाओं के दिन पर कोई उत्साह का वातावरण देखने, सुनने या पढ़ने को नहीं मिलता। खाड़ी के कई देश ऐसे हैं जहाँ पर अधिक से अधिक बालक पैदा करना पुरुषत्व का प्रतीक समझा जाता है। जर्मनी में बालक को "स्टैमन हाल्ट" यानि वंशवृद्धि करने वाला माना जाता है। अफ्रीका में उत्तराधिकारी केवल चालकों को ही मिल सकता है। थाइलैण्ड में बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु केवल बालकों का ही चुनाव किया जाता है। बंगलादेश में तो बालक जन्म के समय अजान से उसका स्वागत किया जाता है जबकि बालिका जन्म के समय कोई भी अजान नहीं पढ़ता। साथ ही साथ बालक जन्म के समय दो बकरों की बलि दी जाती है और बालिका के जन्म के समय कोई भी बलि नहीं दी जाती है। पूर्वी भारत में तो मुंडन संस्कार, जनेऊ संस्कार और अन्य संस्कार स्पष्ट रूप से बालक शिशु के लिए ही सम्पन्न कराये जाते हैं।

देश-विदेश के अनेक क्षेत्रों में व्याप्त सामाजिक कुप्रथाओं को देखने पर बालिकाओं एवं महिलाओं पर किये गये अत्याचार की बात समझ में आती है और यह भी समझ में आता है कि इन कुप्रथाओं में संचालन में निश्चित ही बालिकाओं से राय नहीं ली जाती रही होगी, जैसे-उत्तर प्रदेश के अल्मोड़ा, गढ़वाल तथा नैनीताल के जिलों में बसने वाले नायक समुदाय की प्रथा जिसमें बालिकाओं को पूरी तरह से प्रशिक्षित करने के उपरांत वैश्यावृत्ति समाज में प्रचलित प्रथा है जिसमें बालिकाओं को कई-कई लोगों के हाथ बेच दिया जाता था। इसी प्रकार सतीप्रथा एवं



बाल विवाह जैसे कुप्रथाओं का चलन था। बालिकाओं का विवाह बचपन में ही कर देने को शास्त्र सम्मत ठहराये जाने की वजह से इस प्रथा के संचालन एवं प्रसार को निरंतर बल मिलता रहा। हालांकि वैदिक कालीन युग में बाल विवाह का कोई उदाहरण नहीं मिलता और जातक कथाओं के अनुसार भी बौद्धकाल में बालिकाओं का विवाह सोलह वर्ष की अवस्था पार करने पर ही किया था। उपनिषद व पुराणकाल में कहीं-कहीं ऐसे संकेत मिलते हैं जहां बालिकाओं का विवाह अल्प आयु में कर दिया जाता था। यह कुप्रथा हमारे समाज में अविराम गति से जारी रही है। दुःख का विषय तो यह है कि संविधान द्वारा बाल विवाह निरोधक अधिनियम के पारित होने के बावजूद अभी भी हमारे समाज में छिपे तौर पर बाल विवाह की प्रथा प्रचलित है। बाल विवाह निरोधक कानून जिसे "शारदा एक्ट" के नाम से भी जाना जाता है कि विधिवत पारित किये जाने तथा इसमें समय-समय पर आवश्यक संवैधानिक संशोधन किये जाने के बावजूद भी देश के ज्यादातर राज्यों विशेषकर उत्तर प्रदेश, बिहार, राजस्थान और ही कही जा सकती है। बाल विवाह एक प्राचीन परम्परा है, जिसका अनुपालन आज भी हो रहा है। सामान्य परिवार में इस प्रथा को स्वीकारने वाले लोग अधिक उम्र हो जाने पर विवाह में परेशानी, बालिका को हेयदृष्टि से देखने के कारण, उनकी शिक्षा-दीक्षा पर किये गये खर्च को फालतू समझना, दिनों दिन बलवती हो रही दहेज प्रथा के अलावा सामाजिक रूढ़िवादिता को मानते हैं, जिसके अंतर्गत यह विश्वास प्रचलित रहा है कि बालिका का विवाह राजस्वला होने के पूर्व ही कर देना चाहिए राजस्वला से पूर्व किये गये विवाह के लिए गौना की प्रणाली आज तक कायम

है। बाल— विवाह भारत की सबसे बड़ी समस्याओं में से एक है। राजस्थान के कुछ गाँवों में 10 से 14 वर्ष तक के 45 प्रतिशत शिशुओं का विवाह हो जाता है। विवाह, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश में 50 प्रतिशत बालिकाओं का विवाह 16 वर्ष की उम्र के पहले ही हो जाती है। इस प्रथा के कारण बालिकायें अधिक खतरनाक दौर से गुजरती हैं। मामला चाहे विवाह का हो, सती प्रथा का हो या फिर शिक्षा—दीक्षा, खान—पान, रहन—हन, चिकित्सा, सामाजिकता इत्यादि का हो, बालिकायें हमेशा से ही पूर्वाग्रह की शिकार होती हुई आई हैं। प्राचीन मान्यताओं की आड़ लेकर अपनी व्यक्तिगत परेशानियों से बचने के लिए बालिकाओं की हत्यायें की जाती रही हैं। पहले तो बालिकाओं की केवल उपेक्षा ही की जाती थी, लेकिन अब तो अति आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणों के प्रयोग में आ जाने की वजह से उनके जन्म से अधिकार को भी छीन लिया जाता है। सोनोग्राफी जिसका उद्देश्य गर्भस्थ शिशु की स्वास्थ्य एवं स्थिति की जानकारी के लिए किया जाना चाहिए, अब केवल यह पता लगाने के लिए किया जाता है कि गर्भस्थ शिशु बालक है या बालिका और यह पता लगते ही कि गर्भस्थ शिशु बालिका है, भ्रूण हत्या करा दी जाती है। इसका सबसे बड़ा कारण यही समझ में आता है कि आने वालों खर्चों एवं परेशानियों से बचने के लिए ही लोग ऐसा करते हैं, शिशु जन्म के पश्चात उनकी उपेक्षा का सिलसिला प्रारम्भ हो जाता है। स्वतंत्रता प्राप्ति के साठ वर्षों के बाद भी देश के ज्यादातर लोग इन कुप्रथाओं के शिकार हैं। सामाजिक स्तर पर व्याप्त लिंग विभेदन अभी भी देखा जा सकता है। लगभग हर महिला को आंतरिक रूप से इस बात पर भयभीत महसूस किया जा सकता है कि कहीं वह बालिका को जन्म



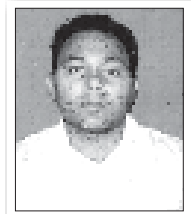
न दे दें स वह मन ही मन बालक जन्म की प्रार्थना करती है। समाज बालिका की जो छवि तैयार करता है वह गुलामी, मूल्यहीनता और निर्भरता की होती है स जीवन की आरंभिक अवस्था में उसे सहन ही सिखाया जाता है। उसकी इच्छा के बिना भी उसका कम उम्र में ही विवाह कर दिया जाता है। जन्म के समय से ही वह परिवार पर एक बोझ बन जाती है और उसे मेहमान के रूप में समझते हुए लोग यह कहते हैं कि इसका परिवार के उत्थान में कोई योगदान नहीं होता बल्कि पतन ही होता है क्योंकि विवाह के समय दहेज के रूप में परिवार की सम्पत्ति का एक बड़ा हिस्सा वह अपने साथ ले जाती है। समाज की यह मान्यता कि वंश संचालन तथा पिता के इहलोक तथा परलोक सुधारने के लिए बालक का होना जरूरी है, आज भी अबाध गति से जारी है।

संदर्भ सूची

- मनु० 2.6, "वेदोअखिलो धर्मूलस"
- ऋग्वेद, 10.85.46
- ऋग्वेद, 3.53.4
- ऋग्वेद, 1.224.4
- ऋग्वेद, 10.85.30
- ऋग्वेद, 10.85.46
- ऐतरेय ब्राह्मण, 1.2.5
- शतपथ ब्राह्मण, 5.1.6.10
- ऋग्वेद, 5.53.15
- ऋग्वेद, 5.1.173
- अथर्ववेद, 11.1.17-27
- ऋग्वेद, 8.91.1
- ऋग्वेद, 5.28.1
- ए० एस० अल्तेकर, दी पोजीशन ऑफ वीमेन इन हिन्दू सिविलाइजेशन, पृ० 1
- ऋग्वेद, 1.185.5
- ऋग्वेद, 3.31. 1-2
- ऋग्वेद, 6.75
- ऋग्वेद, 1.91.20, 1.92.13, 3.1.23
- अथर्ववेद, 8.6.25
- निरुक्त, 3.91.20, दुर्गाचार्य ने भास्क को इस प्रकार स्पष्ट किया है— "सा कि यत्रैव— दीयते तत्रैव दुहित भवति"
- निरुक्त, 3.4.4., दोग्धेर्वा— अथवा दुहने से, इस प्रकार दुर्गाचार्य की व्याख्या है— "सा हि नित्यमेव पितुः सकशात् द्रव्यं दोग्धि प्रार्थना परत्वात्"—वह पिता से धन दुहती है।
- ऐसरेय ब्राह्मण, 3.3.1, कूपणं हि दुहता ज्योतिर्हि पुत्रः
- ऋग्वेद, 10.87.7, 1.11.17.18
- ऋग्वेद, 2.3.6, 2.28.4
- अथर्ववेद, 1.29.5
- ऋग्वेद, 10.85.97
- ऋग्वेद, 10.27.12
- ऋग्वेद, 1.51.13
- काठक सं०, 5.17.12
- अथर्ववेद, 5.17.12 "नास्या जाया शतवाही कल्याणी तत्पमाशये"
- समाजकल्याण पत्रिका, अगस्त—सितम्बर, 1995, पृ० 27
- दैनिक आज, समाचार पत्र, 14 नवम्बर 2000, पृ० 10.
- समाजकल्याण पत्रिका, अगस्त—सितम्बर, 1995, पृ० 27
- दैनिक आज, समाचार पत्र, 14 नवम्बर 2000, पृ० 10
- समाजकल्याण पत्रिका, अगस्त—सितम्बर, 1995, पृ० 27
- दैनिक आज, समाचार पत्र, 14 नवम्बर 2000, पृ० 10.
- दैनिक आज, समाचार पत्र, 14 नवम्बर 2000, पृ० 10
- समाजकल्याण पत्रिका, अक्टूबर 1995, पृ० 6-9
- समाजकल्याण पत्रिका, अक्टूबर 1995, पृ० 6-9
- वी०वी० देवासिया एवं लिलम्मा देवासिया— "गर्ल चाइल्ड इन इंडिया" आशीष पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, 1991, पृ० 6
- सार्क बालिका वर्ष, 1990, यूनिसेफ, नई दिल्ली, पृ० 1
- सार्क बालिका वर्ष, 1990, यूनिसेफ नई दिल्ली, पृ० 3
- डा० आराधना दीक्षित— समाजकल्याण पत्रिका, नवम्बर—दिसम्बर 2001, पृ० 29
- महिला एवं बाल विकास विभाग, यूनिसेफ, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 6
- ललिता सिंहा—दैनिक आज, समाचार पत्र, अक्टूबर 13, 1999, पृ० 7
- श्री वेंकटराम— समाजकल्याण पत्रिका, दिसम्बर 1995, पृ० 19
- श्री श्याम सुंदर सिंह चौहान— समाजकल्याण पत्रिका, दिसम्बर 1995, पृ० 24
- जोथी शांति बेतु— योजना पत्रिका, 16-31 दिसम्बर, 2006 पृ० 14-24
- वी०वी० देवासिया एवं लिलम्मा देवासिया— "गर्ल चाइल्ड इन इंडिया", आशीष पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996, पृ० 43-46.
- आशा रानी व्होरा— "नारी शोषण आइने और आयाम, पृ० 27
- वी०वी० देवासिया एवं लिलम्मा देवासिया— "गर्ल चाइल्ड इन इंडिया", आशीष पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, 1991, पृ० 7
- सार्क बालिका वर्ष 1990, यूनिसेफ, नई दिल्ली, पृ० 5



नक्सलवाद और राजनीति



राधे श्याम

शोधार्थी, इतिहास विभाग
सीनेट सदस्य
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

कौन चाहता है कि जंगल में रहे जंगली जानवरों की तरह डर कर, हथियारों का बोझ कंधों पर उठाए जंगल में विचरण करते रहे। आखिर मानव हृदय, माँ की ममता, बच्चों का बचपन क्या नक्सलियों के पास नहीं है? क्या वे यह सब कुछ छोड़कर सुखमय सामाजिक जीवन नहीं जी सकते हैं ?

मारे देश में गरीबी और अमीरी की खाई इतनी गहरी है कि कई समस्याओं को जन्म देती है। गरीब किसान से अमीर किसान किसी तरह से उसे कमजोर कर उसकी जमीन हथिया लेते हैं। नक्सलवाद का प्रभाव मुख्यतः गरीब किसानों और भूमिहीन खेत मजदूरों के बीच या जो ज्यादातर दलित थे देखा जाता है। बिहार की बुनियादी समस्या जमीन की मलिकियत से जुड़ी हुई थी। लंबे वक्त तक भूमि सुधार न होने की वजह से विभिन्न जातियों के बीच विरोध और टकराव तक हो गया। बिहार में औद्योगिकरण नहीं हो सका। हरित क्रांति जैसा कोई बदलाव भी नहीं हुआ। जो आर्थिक और जातिगत सम्बन्धों को ठहराव लाता है। ऐसे ठहराव के दौर में गरीब और भूमिहीन दलितों के बीच नक्सलवादियों का प्रभाव बढ़ता गया। जिन्होंने आर्थिक और सामाजिक बेहतरी को उनकी आकांक्षाओं को उग्र और हिंसक रूप दिया। इसकी प्रतिक्रिया में ऊँची जातियों से अपनी हिंसक सेवाएँ बना ली। मंडलवाद के दौर में बदली हुई राजनीति ने भी जमीन से जुड़े आर्थिक संबंधों को व्यक्तिगत रूप से ठीक करने की



कोशिश नहीं की, इससे बदलाव अराजक और अक्सर हिंसक तकरार हुई।

अपनी आजादी/ जीवकोपार्जन के लिए हथियारों के बल पर उठाये गये कदम 1947 के पहले क्रांतिकारी कहलाए और आजादी के बाद जमींदारों/साहूकारों/भ्रष्ट पदाधिकारियों/भ्रष्ट राजनेताओं से अपने हक में फैसला लेने के लिए जिन्होंने भी हथियार उठाए वही माओवादी/नक्सलवाड़ी क्षेत्र से प्रारंभिक शुरुआत होने की वजह से नक्सली कहलाए।

जितनी तेजी से भारतीय अर्थव्यवस्था में सुधार आ रहा है उतनी ही तेजी से नक्सलवादी/माओवादी सोच को बढ़ावा मिल



रहा है। नक्सली सोच की मुख्य वजह है:— भूख, सामाजिक मान मर्यादा, शिक्षा और (नक्सली बनने वाले) युवा/बच्चे/महिला का अत्यधिक भोलापन जो खासकर आदिवासी वर्ग के समाज में है।

मेरा मानना है कि जिस प्रकार से पिछले वर्षों में नरसंहार हुए हैं उसके पीछे निश्चय ही अत्यधिक बुद्धिजीवी सोच रही होगी, जिन्होंने न सिर्फ इसका इस्तेमाल किया बल्कि खुद राजकीय/राष्ट्रीय सत्ता सुख पाने के लिए इन्हें सरकार के विरुद्ध एक समानान्तर सेना बना रखी है। जिससे उन्हें धन/बल मिलता रहे और वे हमेशा इनका शोषण करते रहें।

पिछले कुछ दशकों से लेकर अभी तक सरकार, मीडिया, नक्सली/माओवादी संगठन ने यह नहीं बताया कि उनका मुख्य नेतृत्वकर्ता कौन है? यह एक विचारणीय प्रश्न है कि नक्सली कौन है? एक आतंकवादी संगठन, एक आदिवासी समाज का संगठन या फिर उन लोगों का संगठन जिनके खिलाफ यदि कोई भी व्यक्ति हथियार उठाकर मुखर रूप से उनके या सरकार के विरुद्ध आवाज उठाता है तो नक्सल बनाकर उसे यातना देकर समाज और विकास की मुख्य धारा से विमुख कर दिया जाता है।

किसे नहीं पसंद है सुखमय जीवन? कौन चाहता है कि जंगल में रहे जंगली जानवरों की



तरह डर कर, हथियारों का बोझ कंधों पर उठाए जंगल में विचरण करते रहे। आखिर मानव हृदय, माँ की ममता, बच्चों का बचपन क्या नक्सलियों के पास नहीं है?, क्या वे यह सब कुछ छोड़कर सुखमय सामाजिक जीवन नहीं जी सकते हैं?

“ भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक नक्सली/माओवादी रूपी सोच का खात्मा किया जा सकता है इसके लिए निरंतर ईमानदार पहल की जरूरत है और विकास, शिक्षा की मुख्य धारा को उनके गाँवों, कसबों, बिहड़ों तक पहुँचाने की जरूरत है ”

सब कुछ संभव है यदि सरकार/बुद्धिजीवी/सरकारी पदाधिकारी/राजनेता/सामाजिक वर्ग चाहे तो भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास में बाधक नक्सली/माओवादी रूपी सोच का खात्मा किया जा सकता है इसके लिए निरंतर ईमानदार पहल की जरूरत है और विकास/शिक्षा की मुख्य धारा को उनके गाँवों, कसबों, बिहड़ों तक पहुँचाने की जरूरत है — और ऐसा क्यों नहीं हो सकता जब हम

अंग्रेजों से भारत को आजाद करा सकते हैं— धरती से अंतरिक्ष में और महासागर के धरातल पर जा सकते हैं बशर्ते स्वार्थ की भावना त्यागनी पड़ेगी।



सुमित्रा देवी

बिहार की पहली महिला कैबिनेट मंत्री

सुमित्रा जी आज जिन मूल्यों के लिए जानी जाती हैं, उनमें प्रथम है— दबे, कुचले हुए वर्गों के प्रति इनकी प्रतिबद्धता जनसाधारण की सेवा करने की शुद्धभावना सर्वोपरी है। अथक परिश्रम इनकी विभूति थी।



आशुतोष कुमार

शोधार्थी, इतिहास विभाग
छात्र नेता, ए.एन. कॉलेज, पटना

बिहार की राजनैतिक विकास में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण रही है। बिहार की पहली कैबिनेट मंत्री सुमित्रा देवी को बिहार की इन्दिरा गाँधी की ख्याती प्राप्त की। सुमित्रा देवी प्रथम राजनीतिक महिला कुशवाहा समाज की थी। सुमित्रा देवी को दो तरह का कीर्तिमान प्राप्त था। एक तो मंत्री बनने वाली प्रथम महिला की, तो दूसरी एक पिछड़ी जाति महिला को मंत्री के रूप में अपनी पहचान पाने की। सुमित्रा देवी का जन्म 25 सितम्बर 1922 को मुंगेर जिले के महेशपुर गाँव में एक साधारण परिवार में हुआ था। भाई बहन में सुमित्रा देवी दूसरे नम्बर पर थी। पाँच साल की उम्र में शिक्षा की अग्रगामी सोच से उनके पिता ने सुमित्रा को अलीगढ़ के पास हथरस के कन्या

गुरुकुल में दाखिला करा दिया। यहीं से सुमित्रा के भीतर का सोना चमका। 1936 में इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा प्रथम श्रेणी से पास की। 14 साल की उम्र में सुमित्रा जी का विवाह एक क्रांतिकारी युवा, कानून के विद्यार्थी, पढ़े-लिखे और प्रगतिशील पुरुष से हुई। उन्होंने उनके कार्य में कोई बाधा नहीं डाला। सुमित्रा देवी ने अपने राजनीतिक जीवन की शुरुआत ए0 एन0 राय की पार्टी 'रैडिकल हुम्मनिष्ट पार्टी' की सदस्यता ग्रहण की। इसके बाद सुमित्रा ने किसान और मजदूरों के अधिपत्य वाले भारत की आजादी में कूद पड़ी। इनका यही खुला व्यक्तित्व और चरित्र— व्यवहार लोगों के आकर्षण का विषय बन गया। 1942 में ये आरा नगर पालिका की भी सदस्य बन गयी। कॉंग्रेस के जितने भी बिहार के नेता थे, वे भी

लोहिया के सपनों और जाति तोड़ो अभियान का सबसे बड़ा श्री गणेश इनकी चरित्रगत दृढ़ता का इससे बड़ा प्रमाण पत्र कोई दूसरा नहीं हो सकता है। राजनीति की पहली महिला मंत्री के रूप में प्रतिष्ठित होकर इन्होंने अपने भीतर की नारी की मर्यादा को अपने लोगों के उत्थान के लिए लगा दिया।



इनकों जानने लगे। सब चाहते थे की देसी प्रतिभाशाली जागरूक महिला कॉग्रेस में आए। 1951-52 में भारत में प्रथम चुनाव हुआ। गणतंत्र बनने के बाद सुमित्रा देवी उभर कर सामने आयी और अपने प्रतिम गुणों के बदौलत ये भारी बहुमत से जीतीं। 1957 और 1962 के दूसरे और तीसरे चुनाव में सुमित्रा जी सहज रूप से चुनकर आयीं। अब वे जननेत्री बन चुकी थीं। उनका राजनीतिक जीवन परवान चढ़ चुका था। 1963 में वे सूचना-प्रसारण एवं परिवार नियोजन की मंत्री बनी। सुमित्रा जी का जनतांत्रिक मूल्यों में अटूट विश्वास था। इसी बल पर ये 1967 और 1972 के चुनावों में भी विधायिका बनी। 1980 के दशक में ये पुनः कॉग्रेस दल में शामिल हो गयीं। कॉग्रेस के ही टिकट पर 1985 में विधायिका के रूप में चुनकर आयीं। इनका श्री जगजीवन राम जी के संबंध का शिखर था कि उनकी बेटी मीरा कुमार इनकी पहली पुत्रवधु बनी। यह एक सामाजिक क्रांति थी। लोहिया के सपनों और जाति तोड़ो अभियान

का सबसे बड़ा श्री गणेश इनकी चरित्रगत दृढ़ता का इससे बड़ा प्रमाण पत्र कोई दूसरा नहीं हो सकता है। राजनीति की पहली महिला मंत्री के रूप में प्रतिष्ठित होकर इन्होंने अपने भीतर की नारी की मर्यादा को अपने लोगों के उत्थान के लिए लगा दिया। 25 फरवरी 2001 को उनकी मृत्यु हो गई। सुमित्रा जी आज जिन मूल्यों के लिए जानी जाती हैं, उनमें प्रथम है— दबे, कुचले हुए वर्गों के प्रति इनकी प्रतिबद्धता जनसाधारण की सेवा करने की शुद्धभावना सर्वोपरी है। अथक परिश्रम इनकी विभूति थी। पिछड़े वर्ग की एक साधारण महिला के इतने एकत्रित मूल्य आज के कुशवाहा समाज के लिए प्रकाश स्तम्भ की तरह है। आज भले ही सुमित्रा देवी हमारे बीच नहीं है, लेकिन उनकी राजनीतिक जीवन का सफर महिलाओं के लिए प्रेरणा का स्रोत रही है। ये अन्य वर्गों में भी पहली महिला कैबिनेट मंत्री बनी जो एक इतिहास है।

“चापलूसी का जहरीला प्याल आपको तब तक
नुकसान नहीं पहुँचा सकता जब तक कि आपके कान
उसे अमृत समझ कर पी न जाएँ।”

मुंशी प्रेमचंद

“जिस साहित्य से हमारी सुरुचि न जागे, आध्यात्मिक और मानसिक तृप्ति न मिले,
हममें गति और शक्ति न पैदा हो, हमारा सौंदर्य प्रेम न जागृत हो, जो हममें संकल्प
और कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की सच्ची दृढ़ता न उत्पन्न करे, वह हमारे
लिए बेकार है वह साहित्य कहलाने का अधिकारी नहीं है।”

मुंशी प्रेमचंद



CHANGING CONTOURS OF HUMAN TRAFFICKING

AN UGLY FACE OF THE GLOBAL MENACE



Anti-trafficking interventions can be classified under prevention, protection (including rehabilitation), prosecution, and capacity building. The main thrust of government programs is towards prevention, with some attention to protection, and little attention to prosecution.



Anjani Kumar

Student, M.A. (Pol. Sc.)
Dept. of Pol. Science,
A.N. College, Patna

Human trafficking differs from people smuggling, which involves a person voluntarily requesting or hiring another individual to covertly transport them across an international border, usually because the smuggled person would be denied entry into a country by legal channels. Though illegal, there may be no deception or coercion involved. After entry into the country and arrival at their ultimate destination, the smuggled person is usually free to find their own way. According to the International Centre for Migration Policy Development (ICMPD), people

smuggling is a violation of national immigration laws of the destination country, and does not require violations of the rights of the smuggled person. Human trafficking, on the other hand, is a crime against a person because of the violation of the victim's rights through coercion and exploitation. Unlike most cases of people smuggling, victims of human trafficking are not permitted to leave upon arrival at their destination.

While smuggling requires travel,



trafficking does not. Trafficked people are held against their will through acts of coercion, and forced to work for or provide services to the trafficker or others. The work or services may include anything from bonded or forced labor to commercial sexual exploitation. The arrangement may be structured as a work contract, but with no or low payment, or on terms which are highly exploitative. Sometimes the arrangement is structured as debt bondage, with the victim not being permitted or able to pay off the debt.

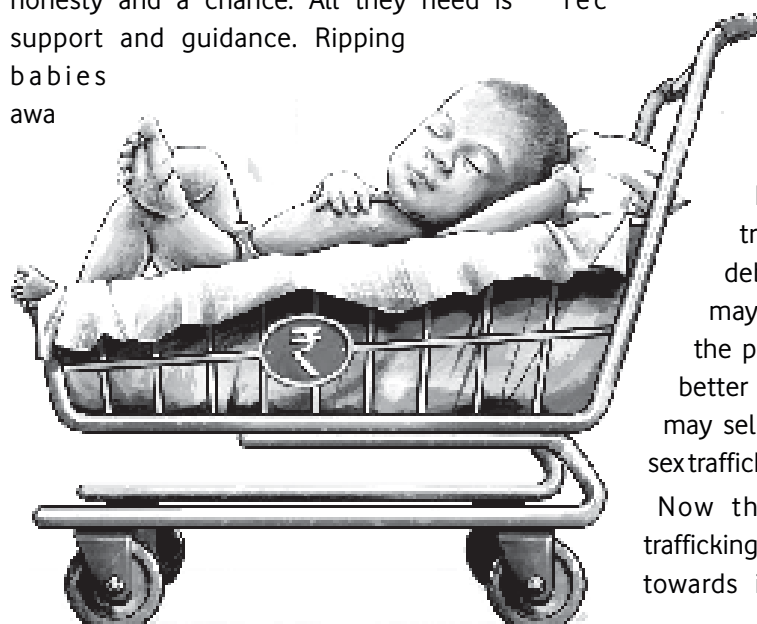
No human being on this planet should have ANY of their basic human rights ripped from them. It doesn't matter if you are a teenager, unmarried or poor. All people deserve every chance to raise their children and all children deserve every chance to grow up in a happy, healthy home with their own flesh and blood. All people need is honesty and a chance. All they need is support and guidance. Ripping babies away

y from their mothers is not in any way humane or ethical or moral. No one owes some richer married couple their child just because said-couple is infertile. No one deserves to lose their baby just because they are poor.

Trafficking of children involves the recruitment, transportation, transfer, harboring, or receipt of children for the purpose of exploitation. The commercial sexual exploitation of children can take many forms, including forcing a child into prostitution or other forms of sexual activity or child pornography. Child exploitation may also involve forced labour or services, slavery or practices similar to slavery, servitude, the removal of organs, illicit international adoption, trafficking for early marriage, recruitment as child soldiers, for use in begging or as athletes (such as child camel jockeys or football players), or for recruitment for cults.

Traffickers in children may take advantage of the parents' extreme poverty. Parents may sell children to traffickers in order to pay off debts or gain income, or they may be deceived concerning the prospects of training and a better life for their children. They may sell their children into labor, sex trafficking, or illegal adoptions.

Now the contours of human trafficking has changed considerably towards illegal adoptions, which





shows the ugly face of this global menace of human trafficking.

The recent trends suggest that adoption has now become an illegal market for selling babies? In fact, it's not just babies; young children have also become victims of this mess. It has become a successful business, with adoption agencies reaping huge benefits out of it.

The adoption process, legal and illegal, when abused can sometimes result in cases of trafficking of babies and pregnant women from developing countries to the West.

In order to be able to analyse that we first need to be aware of what adoption is, and how it is carried out in India and abroad.

WHAT IS ADOPTION?

Adoption is an act by which an individual becomes the permanent guardian of a child and takes over all the responsibilities of the child from the birth parents for the rest of the child's life. Agencies that are recognized to conduct the procedure of adoption work hard to ensure that children who have been surrendered willingly by biological parents, orphaned children and abandoned children find a safe home and family that will take care of them.

Unfortunately, many adoption agencies across the world are conducting adoptions with the sole intention of making profits. It's no longer about the safety of the child, but

the monetary benefits that his or her adoption will ensure.

SOURCING OF CHILDREN

There are many ways by which babies are sourced for adoption. Legal agencies that are recognised by the government for adoption often resort to illegal means to encompass more and more children in the agency.

Kidnappers often abduct babies and sell them to agencies; they are usually abducted from hospitals, nursing homes, even slums if the child is found unattended.

Some people even trick the mothers into believing that their baby was a still born. An example of this was seen in Ludhiana where a man sold his own grandchild on Facebook for 45,000 rupees

by tricking his daughter-in-law.

Another tactic is when families are fooled into sending their children abroad with the assurance of a better future. For example, in Ethiopian bush, illiterate families are asked to send the youngest of their children for education to America. Not only that, but families are given money to help them and they are also promised that they would be kept posted regarding their child. Promises of pictures with the child's adoptive American guardians, and money every year are made as well. There are times when mothers are forced to sell their babies; due to poor economic conditions, they are left with

Adoption is an act by which an individual becomes the permanent guardian of a child and takes over all the responsibilities of the child from the birth parents for the rest of the child's life.



choice. Often women who get pregnant before their wedding also give up their child due to social pressure.

Do all these examples suggest that children are being trafficked?

In many ways, this is trafficking. If a child is being abducted, forcefully or fraudulently taken away from his birth family so as to sell them for adoption, then it is trafficking.

DOMESTIC ADOPTION V/S INTER-COUNTRY ADOPTION

After babies are abducted, they get trapped in the market of illegal adoption; a market that not only looks at adoptions within the country but outside of the country as well. These children have been reduced to mere commodities and it really is a market. We can think that day is not far away when babies might just be auctioned.

But there is a twist in the story. Agencies actually prefer inter country adoption over domestic as it fetches more profits. For example, in the state of Maharashtra, agencies were inclined more towards foreigners and NRI's even though there were more eligible Indian parents that were keen on adoption.

Even though the Central Adoption Resource Authority (CARA) (CARA is the authority that takes care of inter-country adoptions in the country) has issued guidelines that give priority to domestic adoptions, these agencies completely disobeyed the guidelines. And this is not the only case. Back in 2005, a Chennai based orphanage that was recognised by the government to carry out inter-country

adoptions had illegally carried out the international adoption of 350 Indian children. All though they are legally recognized agencies, they defied CARA's guidelines.

Not just that, other developing nations (from where the adoptive parents adopt most) are also poisoned with corruption. This problem exists mostly in impoverished Asian countries. Malaysian Social Services (agency recognised by CARA to do inter-country adoptions) located in Chennai, India, paid about 236 dollars per child. China's Human Province's institutions buy children openly for up to 350 dollars. Western adoption agencies are not far behind either. In 2007 employees of Zoe's Ark, a French charity, tried to fly 103 "Sudanese war refugees" from Chad. Police later reported that many of them were unwillingly taken from their families in Chad. If people are paying this much to buy babies, imagine the profits that agencies will be making by overcharging the adoptive families.

Illegal adoption is especially prevalent in China, as a result of the government's one child policy and a cultural preference for male children. Of course China is not the only country where illegal adoption occurs. A recent Al Jazeera article highlights orphanages in Nepal deceiving parents and putting children with families up for adoption. A U.S. citizen is facing trafficking charges in Haiti in March, 2014, a situation reminiscent of the American missionaries accused of removing Haitian children from the country after the 2010 earthquake. All of



these children had at least one parent living, and they were subsequently reunited with family. One American was later found guilty, but her sentence was limited to time already served in jail.

Chinese officials, the media, and many others consider the abduction of children for illegal adoption to be human trafficking, but debate still surrounds the issue.

In March, 2014, 382 babies were rescued and 1,000 people arrested in a Chinese sting operation against four illegal adoption rings. In January, a Chinese doctor received a suspended death sentence after her conviction for abducting and selling seven babies between November 2011 and July 2013. At least 26 other cases have been linked to this doctor, and several other people are also in criminal detention.

REASONS

Inter-country adoptions are carried out for the sake of money; and the measures used are completely unethical. Forged documents about the children are provided to the adoptive families, who are then charged a very high price. What's worse is that agencies exploit the helplessness and desperation of the adoptive families.

It is noteworthy that it takes only 53 days to adopt a child from Panama, 265 days to adopt from China and 606 days to adopt from India? While from Mexico, it takes 770 days (even though it's one of the closest neighbours of the United States of America), and it takes 741 days if you wish to adopt a child from the Dominican Republic. Now we can do that Mathematics and figure out how

the developing nations rule in this matter. It's no wonder that they take advantage and charge prices that are sky high!

In the last two decades, inter-country adoption has progressively changed. From its initial purpose of providing a family environment for children, it has become more demand-driven. Increasingly in industrialized countries, inter-country adoption is viewed as an [option] for childless couples. To meet the demand for children, abuses and trafficking flourish: psychological pressure on vulnerable mothers [to give up their children]; negotiations with birth families; adoptions organized before birth; false maternity or paternity certificates; abduction of children; children conceived for adoption; political and economic pressure on governments are made. Indeed, a booming trade has grown in the purchase and sale of children in connection with inter country adoptions.

LEGAL FRAMEWORK

The 1993 Hague Convention on the Protection of Children and Co-operation in Respect of Intercountry Adoption establishes common standards and regulations for international adoption, while recognizing that these adoptions can lead to child trafficking.

The 2005 Trafficking in Persons (TIP) report, however, disagrees and states that children who have been put up for adoption through illegal means such as abduction or coercion is not considered human trafficking. The TIP report states:

“The purposes of baby selling and human



trafficking are not necessarily the same. Some individuals assume that baby selling for adoption is a form of human trafficking because trafficking and baby selling both involve making a profit by selling another person. However, illegally selling a child for adoption would not constitute trafficking where the child itself is not to be exploited. Baby selling generally results in a situation that is non-exploitative with respect to the child. Trafficking, on the other hand, implies exploitation of the victims. If an adopted child is subjected to coerced labor or sexual exploitation, then it constitutes a case of human trafficking.”

THE 2010 TIP REPORT REITERATES THIS POINT:

“The kidnapping or unlawful buying/selling of an infant or child for the purpose of offering that child for adoption represents a serious criminal offense, but it is not a form of human trafficking, as it does not necessarily involve the use of force, fraud, or

coercion to compel services from a person. As stated in the travaux préparatoires of the Palermo Protocol, only ‘where illegal adoption amounts to a practice similar to slavery . . . it will also fall within the scope of the Protocol.’”

Thus according to the U.S. State Department if a child is not exploited post-adoption, the adoption act might be illegal, but it is not considered trafficking. This is because the U.S. Trafficking Victims Protection Act follows the U.N. Protocols on Trafficking in Persons and the Sale of Children in its definition on trafficking.

Even though the U.S. doesn't recognize trafficking of children for adoption purposes, several countries do and have included illegal adoptions in their anti-trafficking legislation. China is an example, as are Sri Lanka, Liberia, Vietnam, Guatemala, Nicaragua, Venezuela, and Costa Rica. According to various TIP reports these countries include illegal adoptions in





legislation which “does not fall within the international definition of human trafficking.”

Despite the broad international condemnation of child trafficking, a complete and authoritative legal definition remains difficult to establish, especially in the context of inter country adoption, but it is important to note that the Australian Government appears to accept that child trafficking may occur through the adoption system, even where no exploitation is present.

International law has been reluctant to label all sales of children as prohibited forms of child trafficking and has failed to demand penal sanctions for all abusive adoption practices; however the law has been moving in the direction of clearly labeling certain abusive adoption practices as prohibited forms of child trafficking or sale of children.

UNICEF, for its part, considers illegal adoption as child trafficking. In UNICEF's 2009 report *Child Trafficking in East and South-East Asia: Reversing the Trend* adoption is listed as one of the reasons why children are trafficked in the region, but UNICEF notes that “existing literature in the region overwhelmingly concentrates on trafficking for sexual exploitation, while systematic research on more diverse forms, such as trafficking of children for adoption and marriage, is lacking.” UNICEF also considers illegal adoption exploitation when it recommends the criminalization of “all forms of exploitation, including but not limited to: sexual abuse and sexual

exploitation, domestic servitude, debt bondage, involvement in armed conflict, organ/tissue removal and transport, illegal adoption and forced marriage.” This directly contradicts what the U.S. asserts in the 2005 and 2010 TIP reports (cited above) that illegal adoption is not exploitation if it does not lead to forced labor or sexual exploitation.

And while international law does not specifically label illegal adoption human trafficking, the UNODC Global Report on the Trafficking of Persons does: “Trafficking for purposes not specifically mentioned in the Trafficking in Persons Protocol, including begging, forced marriages, illegal adoption, participation in armed combat and the commission of crime (usually petty crime/street crime) accounted for 6 percent of the total number of detected cases in 2010,” and the UNODC reports that: “cases of trafficking for the purposes of illegal adoption have been detected in 15 countries.”

The U.N. acknowledges that trafficking of children for illegal adoption is not in the Trafficking in Persons Protocol, but it still considers the practice of obtaining children-like the 382 Chinese babies rescued this week-through abduction, coercion, or other illegal means to be child trafficking. This begs the question, why doesn't the U.S.?

The Indian legal framework with respect to trafficking is severely flawed. While there are a large collection of statutes, existing international & regional conventions, active institutions, and a defined legal process that is designed to ensure that TIP offenders be



prosecuted and TIP victims be protected/compensated, the legal framework is plagued by several weaknesses. These include mammoth levels of corruption, an overburdened judiciary/law enforcement sector, and poorly resourced protection services.

While there exist many national Indian laws criminalizing the buyers, traffickers and profiteers of the trade, there fails to be a cohesive definition and understanding of 'trafficking' in human beings per se. However, the biggest problem remains in the implementation of the laws. Where laws are implemented, the penalties are not enough to deter trafficking or give adequate punishment. This is compounded by the existence of a plethora of national laws and acts, which lead to confusion among law enforcement and judicial officials. At the level of central government, there is a fragmentation of efforts because of a diversity of vested interests in TIP across several departments & ministries.

State governments have not utilized the provisions within the Immoral Trafficking Prevention Act (ITPA) to develop special courts for trafficking. Furthermore, the major thrust of their efforts (limited in most cases) is towards prevention and protection, with only minimal support for prosecution. The absence of compensation schemes is another hindrance. Courts face two issues: first, they are generally overloaded with cases, and thus trafficking cases often remain on the docket for years; secondly, they lack careful assessment towards trafficking cases

and often prosecute and punish the victims, not the traffickers. Similarly, the police lack sensitivity and often do not prioritize trafficking as an offence, leading to a low rate of registration of such crimes. They often register the crime against the victim instead of the trafficker. Figures show that in the process of prosecution, one of the weakest links is the failure to get cases past the second level of scrutiny.

This is where the magistrates determine whether or not the case is viable based on the evidence and arguments presented by the investigating police officer. This combines with limited police efforts to register cases appropriately, if at all, to make for a very disturbing legal backdrop to trafficking.

GOVERNMENT ANTI-TRAFFICKING INTERVENTIONS

Anti-trafficking interventions can be classified under prevention, protection (including rehabilitation), prosecution, and capacity building. The main thrust of government programs is towards prevention, with some attention to protection, and little attention to prosecution.

However, there is hope. India's central government has launched new programs such as the Integrated Anti-Human Trafficking Units (IAHTUs), Anti-Trafficking Nodal Cell State Program, and Integrated National Plan of Action. These represent a multi-disciplinary approach and inter-agency collaboration - aspects that were absent in previous government initiatives.

SOLUTION

There is a solution to everything and so is



the case here.

The government should deploy security in hospitals and nursing homes, as well as, maintain records of the mother and child. The pilot project which has been introduced in the Kamala Hospital of Pune, is a very good example wherein both the mother and the child's movement will be tracked through electronic surveillance.

Awareness programmes should be conducted about the procedure for adoption, and who are preferred. If the child is allowed for inter-country adoption, then a visa is definitely needed. The procedure for getting a visa should get stricter in the case of children.

CARA should take note of the agency that did the adoption process in detail. A deoxyribonucleic acid (DNA) test should be conducted on the child so that they know who the biological parents are, and the biological parents should be interviewed to investigate whether the child has been

surrendered willingly, and to get a medical background of the child.

And when the child has been abandoned, then too, proper health tests should be conducted so that the people who are adopting him or her have full information about the child and are therefore able to take care of him.

Most importantly, the process of follow ups should be stricter and carried out for a longer time to keep an eye on how the child is doing in the new country, and whether he or she is being treated well or not.

The practice of inter-country adoptions started during the time of the Second World War when thousands of children were orphaned. It was a kind of humanitarian aid, but today, unfortunately it has lost its humane touch. Stricter laws and micro-managing this process may be the answer, but either ways, this illegal practice must be set right!



"The failure of several mercantile houses in Calcutta has produced much distrust both in India and England"

Ram Mohan Roy

"I have now given up all worldly avocations, and am engaged in religious culture and in the investigation of truth"

Ram Mohan Roy



सामाजिक न्याय के आलोक में गाँधी और अम्बेडकर का तुलनात्मक अध्ययन

गाँधीजी और बाबा साहब दोनों ने देश में सामाजिक न्याय का अभूतपूर्व काम किया अंतर इतना ही है कि गाँधीजी सवर्णों का हृदय परिवर्तन भी करना चाहते थे और जो संवैधानिक लाभ हो सकता है, उसे भी दिलाना चाहते थे, लेकिन बाबा साहब उसे संगठन और संघर्ष के बल पर ही पाना चाहते थे। सवर्णों का हृदय परिवर्तन कर गाँधीजी सामाजिक समरसता के पृष्ठपोषक थे जबकि बाबा साहब दलितों की दशा सुधारने के लिए अंदर से बेचैन थे।



रौशन कुमार

रिसर्च स्कॉलर,
राजीव गांधी नेशनल फेलोशिप
दर्शनशास्त्र विभाग
ए. एन. कॉलेज, पटना

यक्ति से समाज बनता है और समाज व्यक्ति का बाह्य आवरण और आन्तरिक सुरक्षा कवच होता है 'भारत की यह विडम्बना है कि हम वेद, उपनिषदों के कारण आध्यात्मिक अभियन्त्रणा की ऊँचाई पर तो चढ़ गए हैं, लेकिन हमारी सामाजिक अभियन्त्रणा अत्यंत दयनीय स्थिति में है' हम एक तरफ कहते हैं – "एको अहम् द्वितीयो नास्ति" का जप करते हैं तो दूसरी ओर हमारा समाज हजारों टुकड़ों में विभक्त है 'ईश्वर भले एक है लेकिन मनुष्य हजारों टुकड़ों में विभक्त है' यही मूल कारण है कि भारत अभी भी एक अर्धविकसित राष्ट्र है। भले हमारा इतिहास बहुत पुराना हो और अतीत भी काफी गौरवमय रहा हो, लेकिन हमारा वर्तमान तो अत्यंत दयनीय और दुःखमय है। हम कहते तो हैं कि अनेकता में एकता हमारा दर्शन है लेकिन धर्म के नाम पर ही नहीं बल्कि जातियों के नाम पर भी हम हजार टुकड़ों में बंटे हैं।

यह सौभाग्य है कि भारत में एक से एक मनीषी, दार्शनिक और सामाजिक चिंतक भी हुए हैं लेकिन हमारी कुछ बुराईयाँ इतनी प्रगाढ़ रूप से हमारी

नसों में घुस गयी हैं कि हमारा सामाजिक जीवन खंडित हो रहा है। अन्य बातों को छोड़कर हम सामाजिक न्याय की तुला पर ही अपनी सभ्यता और संस्कृति को तौले। एक तरफ तो हम एक ईश्वर में विश्वास करते हैं, "एको अहं द्वितीयो नास्ति च" या 'एकमेवाद्वितीयम्' या 'सियाराम मय सब जग जानी' आदि मन्त्रों का स्मरण करते हैं दूसरी ओर हमारा समाज अनेको टुकड़ों में में बटा हुआ है। समाज तो उसी को कहते हैं जहाँ समता हो (श्रमण अजन्ति जनाः) जहाँ समता है वही समाज है लेकिन हमारे देश में धर्म और पंथ के नाम पर हम अनेक टुकड़ों में बंटे हैं। कुछ अद्वैतवादी है तो कुछ द्वैतवादी, कुछ विशिष्टाद्वैतवादी आदि 'दार्शनिक आधार पर भारत अनेक मत दृमतान्तर में विभक्त हैं चभारत में लगभग एक हजार से कुछ अधिक छोटे दृछोटे धार्मिक समूह हैं लेकिन इससे भी ज्यादा खतरनाक तो यह है कि हिन्दू समाज लगभग साढ़े पांच हजार जातियों और उपजातियों में विभक्त है दइसका सबसे कुत्सित एवं घृणित रूप हम अस्पृश्यता की धारणा में पाते हैं। कितनी बड़ी



विडम्बना है कि आदमी एक दुसरे आदमी को छूने से अपवित्र हो जाता है और इस पर कुछ शास्त्रों की भी मुहर लग जाती है।

यह ठीक है कि वेद, उपनिषद् और गीता में जाति प्रथा नहीं है। उनमें वर्ण के ही आधार पर सिर्फ चार भागों में विभाजन किया गया है। लेकिन धीरे-धीरे शास्त्रों की वाणी लोप होती गयी और स्वार्थहित के लिए पंडितों, पुरोहितों आदि ने अधिक से अधिक दक्षिणा प्राप्त करने के लिए समाज में ऊँच और नीच का भेद पैदा किया। फलतः वेद, उपनिषद् और गीता के सिद्धांतों पर पर्दा डालकर वर्ण व्यवस्था के बदले जाति व्यवस्था को प्रतिष्ठित किया गया।

यह स्पष्ट है कि यजुर्वेद, उपनिषद् और गीता में केवल चार वर्णों का उल्लेख है। यथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र “ब्रह्मणो अस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः उरु तदस्य यद् वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।” उपमा के रूप में बताया गया है कि ईश्वर के मुख के सरूप ब्रह्म है, उनके शक्तिमान भुजा के समान क्षत्रिय और पेट के प्रतीक वैश्य तथा चरण के अनुसार शूद्र।

यह कहना कि यहाँ पर भी शास्त्रों ने भेद-भाव किया है, जो ब्राह्मणों को ईश्वर का मुख और शूद्रों को उनका पैर बताया गया है। हमें समझना चाहिए कि उपमा तो उपमा है और हमें मालूम होना चाहिए कि हिन्दू समाज में सभी देवताओं की पूजा में चरण का वन्दन और पूजन करना होता है। असल में समाज की संरचना और कार्य दृष्टिभाजन की दृष्टि से ऋषियों ने समाज के चार व्यूह बनाए—शिक्षा, रक्षा, कृषि—वाणिज्य और सेवा। हम आज की परिस्थिति के अनुसार चाहे तो थोड़ा परिवर्तन कर सकते हैं लेकिन यह मानना चाहिए कि चारों ईश्वर के अंश हैं। इसलिए चारों

सामान्य रूप से पवित्र है। गीता में भी भगवान ने स्पष्ट कहा है—“चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टम गुणकर्मविभागाशः” इसका मतलब है कि भगवान ने ही चार वर्ण बनाए जिसका आधार है गुण और कर्म। जातियाँ जन्मना होती हैं, वर्ण कर्म आधारित है। इसलिए वर्ण और जाति में भेद आवश्यक है। लेकिन सदियों के प्रवाह में वर्ण व्यवस्था असली स्वरूप में समाप्त हो गया और जाति व्यवस्था कायम हो गयी। आज भारत में लगभग साढ़े पांच हजार जातियाँ हैं। यही कारण है कि भारत का समाज टूट गया है और यह हमारी दीर्घ अवधि की पराधीनता का कारण रहा है। हम जाति के नाम पर पांच हजार से अधिक समूहों में बँट गए। जाति—प्रथा का सबसे कुत्सित एवं घृणित स्वरूप अस्पृश्यता में देखने को मिलता है। हम कुत्ते, गाय, भैंस, चिड़ियों आदि को छूते हैं, लेकिन मनुष्यों को छूना अधर्म मानते हैं। अतः महात्मा गाँधी और बाबा साहेब अम्बेडकर ने इस सामाजिक अन्याय के खिलाफ संग्राम छेड़ा। यह ठीक है कि हमारी संत परम्परा में रैदास, कबीर, सहजोबाई आदि सभी संतों ने प्रायः छुआछूत को अधर्म माना। आधुनिक युग में इसके खिलाफ दो महात्माओं ने मुखर होकर इसका विरोध किया। बाबा साहेब उसी समाज के एक दुर्लभ रत्न थे। उन्होंने व्यक्तिगत जीवन में छुआछूत का अपमान और दंश भोगा था। इसीलिए उनका दुःख स्वयं के अनुभव से परिपूर्ण था। जिस बैलगाड़ी पर बाबा साहेब और उनके भाई अपने घर जा रहे थे तो गाड़ीवान को जैसे ही मालूम हो गया कि ये दोनों दलित हरिजन हैं तो उसने गाड़ी रोक दी और उन्हें गाड़ी से उतार दिया। जब बड़ौदा में एक बड़े अधिकारी बनकर बाबा साहेब आए तो चपरासी दफ्तर की फाइल उनके हाथों में न देकर मेज पर पटक देते थे।



तालाब एवं कुओं में हरिजनों को पानी लेने की मनाही थी। ऐसे ही घोर अपमानों के कारण बाबा साहब ने इसके प्रतिकार का संकल्प किया और उन्होंने तीन शब्दों का क्रांति मन्त्र दिया—शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो। गाँधी जी ने सम्पूर्ण हिन्दू समाज को अछूतोद्धार का आवाह्न करते हुए इसे अपने रचनात्मक कार्यक्रम का प्रमुख मुद्दा बना दिया। जहाँ भी वे स्वतन्त्रता आन्दोलन के लिए वे जाते वहाँ इन्होंने इसकी गम्भीर चर्चा की। सवर्ण हिन्दुओं से अछूतों के प्रति किए गए अपने पाप के लिए करने को कहा, इस कारण समूचे भारत में विशेषकर ब्राह्मण और अन्य ऊँची जाति के लोग अछूतोद्धार के लिए कूद पड़े। उन्होंने अछूतों को हरिजन नाम दिया, जिसका अर्थ है—भगवान का भक्त। उन्होंने अपनी पत्रिका का नाम हरिजन रखा, जन-सेवाओं में वे हरिजन-कल्याण-कोष के लिए वे जोरदार अपील करते थे। इसमें स्त्रियाँ अपना आभूषण भी दान कर देती थी। आदिम जाति के सेवा के लिए उन्होंने ठक्कर बापा जैसे व्यक्ति को नियुक्त किया था। इसी तरह हरिजनों के लिए उन्होंने सार्वजनिक कुओं से पानी लेने का या मन्दिर प्रवेश का आन्दोलन भी चलाया। केरल में हरिजनों के उद्धार के लिए मन्दिर प्रवेश के लिए व्याकोण में बड़ा आन्दोलन हुआ। राजनैतिक स्तर पर बाबा साहब ने जितनी सीटें हरिजनों के लिए आरक्षित करने के लिए कहा था उससे ज्यादा ही सीटें गांधीजी ने दिलवायी। केवल एक बात बाबा साहब की नहीं मानी गयी कि हरिजनों के लिए पृथक निर्वाचन मंडल बने। गांधीजी का मानना था कि पृथक निर्वाचन मंडल की व्यवस्था से हरिजन हिन्दू समाज से अलग हो जायेंगे, जो कि सबके लिए घातक होगा। ब्रिटिश सरकार आजादी के

लिए मांग रखनेवाले भारतीयों में कांग्रेस को एकछत्र प्रतिनिधि मानना नहीं चाहती थी। इसलिए गोलमेज परिषद् में मुस्लिम लीग, हिन्दू महासभा और दलित समाज को भी स्वतंत्रता की बातचीत में इसलिए आमंत्रित किया गया कि कांग्रेस का प्रजा की तरफ से कोई एकक्षत्र प्रतिनिधि न हो। उनकी साजिश यही थी कि अगर भारत को आजादी भी दे दे तो हम उसमें हिन्दू, मुस्लिम, हरिजन, देशी रजवाड़े आदि इन सबों में भारत को बाँट दे। आगे मुस्लिम लीग के अलगाववाद के चलते देश विभाजित भी हुआ।

महात्मा गाँधी के सामने मुख्य रूप से सम्पूर्ण देश की आजादी का सवाल था, जिसमें हिन्दू, मुस्लिम, सिख, इसाई, आदिम जाति, हरिजन सब मिलकर रहे तो देश मजबूत होगा। बाबा साहब हरिजनों के हालत से इतने अधिक व्यथित और संवेदनशील थे कि उनके सामने एकमात्र दलित-हरिजन का प्रश्न था।

इसीलिए उन्होंने गोलमेज परिषद् में जाकर अलगाववादी हरिजन दलित के लिए बहस की। संक्षेप में उनके लिए दलितों का उत्थान प्राथमिकता थी, गाँधी के लिए देश पहले था और देश की आजादी पहली प्राथमिकता थी। उनका ख्याल था कि आजादी के बाद सामाजिक न्याय या साम्प्रदायिक मांगों को सुलझाया जाएगा। बाबा साहब हरिजनों के लिए इतने अधिक व्यग्र थे कि उनके मन में समग्र भारत की प्राथमिकता नहीं थी। इसीलिए उन्होंने 1940-46 तक वायसराय कौंसिल में ब्रिटिश सरकार की सेवा में थे। जबकि 1940 में व्यक्तिगत सत्याग्रह और 1942 के भारत छोड़ो आन्दोलन के समय देश में लाखों लोग जेलखाने में थे और हजारों शहीद हुए। मुस्लिम लीग के अलगाववादी रवैयों के चलते देश



विभाजित हुआ और अंतरिम सरकार बनी। उस समय बाबा साहब को गांधीजी के प्रस्ताव पर विधानमंडल में लाया गया था, वे चुनाव लड़कर विधानमंडल नहीं पहुँचे सके थे। फिर गांधीजी की सलाह पर पंडित नेहरू ने अम्बेडकर को मंत्रिमंडल में स्थान दिया। फिर संविधान सभा में भी उन्हें शामिल किया गया। उन्हें संविधान के मसविदा तैयार करने वाली उपसमिति का संयोजक भी बनाया गया। इस उपसमिति के अध्यक्ष श्री गोपालस्वामी अयंगर थे। संविधान निर्माण में बाबा साहब की असाधारण प्रतिभा का तो लाभ मिला ही, साथ ही संविधान के अनुसार अस्पृश्यता को एक दंडित अपराध मानने का कानून आसानी से पारित हुआ। यही नहीं अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति को संवैधानिक आरक्षण भी मिल गया। बाबा साहब ने बाद में स्वीकार किया कि ये दोनों कानून इसलिए आसानी से पारित हो गए क्योंकि इसकी पृष्ठभूमि में गांधीजी का हरिजन आन्दोलन था, इसलिए हम कह सकते हैं कि गाँधीजी और बाबा साहब दोनों ने देश में सामाजिक न्याय का

अभूतपूर्व काम किया। अंतर इतना ही है कि गाँधीजी सवर्णों का हृदय परिवर्तन भी करना चाहते थे और जो संवैधानिक लाभ हो सकता है, उसे भी दिलाना चाहते थे। लेकिन बाबा साहब उसे संगठन और संघर्ष के बल पर ही पाना चाहते थे। सवर्णों का हृदय परिवर्तन कर गाँधीजी सामाजिक समरसता के पृष्ठपोषक थे जबकि बाबा साहब दलितों की दशा सुधारने के लिए अंदर से बेचैन थे। अगर गाँधीजी बीच में नहीं पड़ते तो शायद सदियों से चली आ रही सवर्णों के अधिपत्य और दलित समाज के बेचैनी के कारण एक खतरनाक संघर्ष वर्ग का रूप ले सकता था जिसमें एक अस्वस्थ ध्रुवीकरण का जन्म होता।

संदर्भ—सूची

- 1 .भगवद्गीता ,गीता प्रेस ,गोरखपुर 2 .हिन्दू संस्कृति — अंक ,गीता प्रेस ,गोरखपुर 3 .छान्दोग्योपनिषद् 4 .गाँधी दर्शन ,डॉ. रामजी सिंह ,बिहार हिंदी ग्रन्थ अकादमी ,पटना 5 .डॉ.बाबा साहब अम्बेडकर ,वसंत मून ,राष्ट्रीय पुस्तक न्यास ,नई दिल्ली 6 .डॉ. अम्बेडकर का विचार —दर्शन ,रामगोपाल सिंह ,मध्यप्रदेश हिंदी ग्रन्थ अकादमी 7 .ऋग्वेद

निराशा की अमावस की गहन निशा के अंधकार में
हम अपना मस्तक आत्म-गौरव के साथ तनिक ऊँचा उठाकर देखें।

अटल बिहारी वाजपेयी

“हम आदि से अंत तक भारतीय है।”

डॉ० भीम राव अम्बेडकर

“भगवान के आगे झुको किसी दुसरे के आगे नहीं,
हमारा सिर कभी भी झुकने वाला नहीं होना चाहिए।”

सरदार वल्लभ भाई पटेल



ध्वनि प्रदूषण की समस्या

जागरुकता का एक विषय

ध्वनि प्रदूषण से लोगों में खीझ, झुंझलाहट, क्रोध, मानसिक तनाव, थकान, मांस-पेशियों में खिंचाव, रक्तचाप, नेत्र विकार, उल्टी, हृदय रोग आदि जैसी कई शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। विद्यार्थियों में स्मृति क्षीणता, सिरदर्द व एकाग्रता का आभाव जैसे विकार उत्पन्न होने लगते हैं।



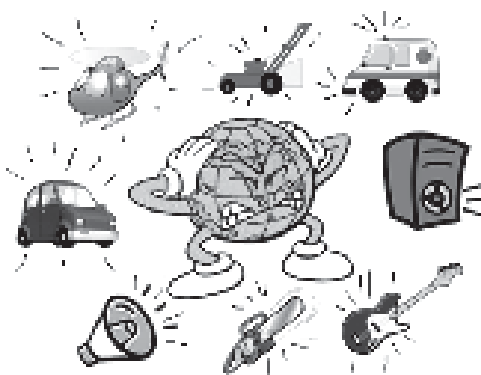
ललिता रानी

शोध छात्रा, भूगोल विभाग
ए. एन. कॉलेज, पटना

वर्तमान समय में प्रदूषण जीव-जंतुओं के अस्तित्व के लिए सबसे बड़ी समस्या माना जा रहा है। जिस प्रकार जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण एवं मृदा-प्रदूषण को एक विकट समस्या के रूप में देखा जा रहा है तथा उसके संरक्षण, नियंत्रण एवं बचाव हेतु भाँति-भाँति के उपाय अपनाए जा रहे हैं, उसी प्रकार ध्वनि को भी प्रदूषण की श्रेणी में ही रखा गया है। वायु प्रदूषण बचाव व नियंत्रण अधिनियम की धारा 2 (अ) 1981 के अंतर्गत ध्वनि को वायु प्रदूषक के रूप में परिभाषित किया गया है। परन्तु ध्वनि प्रदूषण को अन्य प्रदूषणों यथा जल-प्रदूषण, वायु-प्रदूषण एवं मृदा-प्रदूषण की समस्या की भाँति अपेक्षात कम गंभीरता से लिया जा रहा है। ध्वनि प्रदूषण के प्रति लोगों की उदासीनता के पीछे कई कारण उत्तरदायी हैं।

ध्वनि का मापक :

भौतिक रूप से यह सुनिश्चित कर पाना बहुत कठिन है कि ध्वनि को प्रदूषण की किस श्रेणी में रखा जाए, क्योंकि यह संभव है कि एक निश्चित माप से अधिक का शोर किसी को अप्रिय नहीं लगे और किसी को इससे कम माप का शोर भी अप्रिय लगे। अतः सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि



किस ध्वनि को प्रदूषण की श्रेणी में माना जाना चाहिए। 20 Hz से 20000 Hz तक की ध्वनि आवृत्ति के प्रति मानव संवेदनशील होता है। ध्वनि की तीव्रता को सामान्य मापक इकाई डेसीबल (dB) में मापा जाता है। शून्य (0) डेसीबल से क्षीण आवाज सुनी नहीं जा सकती जबकि 150-160 डेसीबल तीव्रता वाली ध्वनि प्राण घातक हो जाती है।

ध्वनि का स्रोत :

ध्वनि प्रदूषण नगरीय संसृति की देन है। महानगरों में चलने वाले स्वचालित वाहन (ट्रक, बस, कार, टेम्पो, स्कूटर, एवं रेलगाड़ी आदि) एवं वायुयान, औद्योगिक क्षेत्रों में मशीनों और साइरनों की आवाजें, व्यस्त बाजारों में विक्रेताओं के शोर, रेडियो, टी०वी० एवं लाउड स्पीकर, धार्मिक एवं



सामाजिक क्रियायें इनके प्रमुख स्रोत हैं। मनुष्य के विभिन्न कार्यों के समय उत्पन्न शोर तथा मनुष्य द्वारा निर्मित विभिन्न उपकरणों यथा मिक्सर-ग्राइंडर, एयर कंडीशनर, वैक्युम क्लीनर आदि के कार्यरत होने पर उत्पन्न शोर, अवसंरचनात्मक कार्यों, भवन व सड़क निर्माण से उत्पन्न शोर, आतिशबाजी व विस्फोट से उत्पन्न शोर, डीजल इंजनों से चलने वाले पम्पिंग सेटों तथा गेहूँ पीसने की आटा चक्कियों आदि से भी उच्च स्तर का शोर उत्पन्न होता है।

ध्वनि का दुष्प्रभाव :

ध्वनि प्रदूषण के कारण जीव जंतुओं पर कई प्रकार के प्रतिकूल प्रभाव पड़ते हैं, जिसका प्रभाव श्रवण संबंधी व्यावधान, शारीरिक प्रभाव व मानसिक प्रभाव के रूप में सामने आता है। उच्च तीव्रता वाली ध्वनि के कारण मनुष्य की सुनने की क्षमता में ह्रास आ जाता है तथा कभी-कभी तो स्थायी बधिरता की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है। लोगों के आचार-विचार व्यवहार में भी अंतर आने लगता है। अधिक तीव्रता की ध्वनि अथवा तेज ध्वनि के लगातार प्रभाव में रहने पर लोगों में खीझ, झुंझलाहट, क्रोध, मानसिक तनाव, थकान, मांस-पेशियों में खिंचाव, रक्तचाप, नेत्र विकार, उल्टी, हृदय रोग आदि जैसी कई शारीरिक समस्याएँ उत्पन्न हो जाती हैं। विद्यार्थियों में स्मृति क्षीणता, सिरदर्द व एकाग्रता का आभाव जैसे विकार उत्पन्न होने लगते हैं। कई बार तो उच्च तीव्रता की ध्वनि के कारण गर्भपात भी हो जाता है व नवजात शिशुओं में वितियाँ भी उत्पन्न

हो जाती है।

समस्या यह है कि इन तमाम प्रकार के दुष्प्रभावों से छुटकारा पाने के लिए मनुष्य कई प्रकार के उपाय करता रहता है, परन्तु इन समस्याओं की जड़ का अनुमान तक नहीं लगा पाता है। इसका प्रमुख कारण ध्वनि प्रदूषण के दुष्प्रभावों के प्रति लोगों में जागरूकता की कमी है। जब कभी प्रदूषण की चर्चा की जाती है तो लोगों के मन में वायु प्रदूषण व जल प्रदूषण की समस्या का ही विचार आता है तथा ध्वनि प्रदूषण की समस्या तो लगभग किताबों तक ही सीमित जान पड़ती है। फलतः जन कल्याणकारी उपायों में जब पर्यावरण प्रदूषण के प्रति कोई कदम उठाया जाता है तो वह जल प्रदूषण, वायु प्रदूषण व मृदा प्रदूषण तक ही सीमित रह जाता है तथा ध्वनि प्रदूषण के प्रति कोई ठोस कदम नहीं उठाया जाता है।

भारत में ध्वनि प्रदूषण की जागरूकता :

भारत में लगातार बढ़ते पर्यावरण असंतुलन को देखते हुए संसद ने वर्ष 1986 में "पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986" पास किया। इस अधिनियम की धारा 2(ए) के अनुसार पर्यावरण में जल, वायु, भूमि, मानव तथा अन्य जीवों को सम्मिलित किया गया। प्रारंभ में ध्वनि-प्रदूषण की विभीषिका के विस्तार एवं इससे उत्पन्न खतरे की संभावना को देखते हुए भी जल अधिनियम अथवा वायु-अधिनियम की तरह अलग से कोई स्वतंत्र ध्वनि (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम को पारित नहीं

उच्च तीव्रता वाली ध्वनि के कारण मनुष्य की सुनने की क्षमता में ह्रास आ जाता है तथा कभी-कभी तो स्थायी बधिरता की स्थिति भी उत्पन्न हो जाती है।



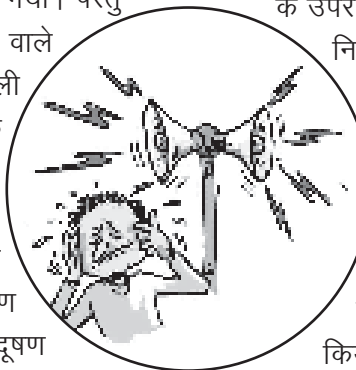


किया गया था। ध्वनि— प्रदूषण को वर्ष 2000 के पूर्व तक स्वतंत्र नहीं माना जा रहा था। इसे वायु—प्रदूषण के अंतर्गत ही माना गया था। वायु (प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण) अधिनियम, 1981 को वर्ष 1987 में संशोधित किया गया। ऐसा माना गया कि ध्वनि का माध्यम वायु ही होता है इसलिए इसके प्रदूषक तत्व भी वायु में मिले होते हैं। इसलिए ध्वनि प्रदूषण को वायु प्रदूषण का ही घटक मानकर इसको वायु— प्रदूषण की ही परिभाषा में सम्मिलित कर दिया गया। परंतु संगीत वाद्य यंत्र, उद्योगों से होने वाले शोर, जेनरेटर से उत्पन्न होले वाली ध्वनि आदि में वायु—प्रदूषण के तत्व नहीं होते हैं। अतः पर्यावरण (संरक्षण) अधिनियम 1986 के अधीन केन्द्रीय सरकार द्वारा पर्यावरण की गुणवत्ता का संरक्षण एवं सुधार करने हेतु ध्वनि—प्रदूषण (विनियमन एवं नियंत्रण) नियमावली 2000 को बनाया गया तथा केन्द्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड और राज्य प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड को विनिर्दिष्ट किया गया।

किसी भी प्रदेश की ध्वनि प्रदूषण की स्थिति को ज्ञात करने हेतु प्रदेश को चार क्षेत्रों— रिहायशी क्षेत्र, वाणिज्यिक क्षेत्र, औद्योगिक क्षेत्र तथा शांत क्षेत्र में वर्गीकृत किया गया। प्रत्येक क्षेत्र में ध्वनि प्रदूषण की अधिकतम स्वीकार्य सीमा तय की गई तथा राज्य सरकार को प्रत्येक क्षेत्र में ध्वनि प्रदूषण नियंत्रण हेतु कार्य—विधि का प्रारंभ करने की जिम्मेदारी सौंपी गयी। राज्य सरकार द्वारा इस नियम के सफल कार्यान्वयन एवं प्रदत्त दायित्वों के निर्वहन हेतु सभी आरक्षी अधीक्षक, सभी अपर समाहर्ता एवं सभी अनुमंडल पदाधिकारियों को

उनके कार्यक्षेत्र में प्राधिकारी घोषित किया गया, जिससे राज्य में प्रत्येक स्तर पर ध्वनि प्रदूषण पर नियंत्रण व बचाव कार्यों को प्रभावी बनाया जा सके। इसके अतिरिक्त रात को 10 बजे के बाद शोर करने पर प्रतिबंध लगाया गया है, जिसमें कुछ महत्वपूर्ण त्योहारों के अवसर पर ध्वनि उत्पन्न करने वाले संयंत्रों के उपयोग पर रात 10 बजे से 12 बजे तक की छूट दी गयी है।

कई प्रकार के उपरोक्त उपाय अपनाए जाने के उपरांत भी ध्वनि प्रदूषण की समस्या को नियंत्रित करने में सफलता प्राप्त नहीं की जा सकी है। ध्वनि प्रदूषण के बचाव व नियंत्रण हेतु भारत सरकार द्वारा बनाये गये नियमों का कड़ाई के साथ अनुपालन किया जाना हितकर हो सकता है। अवांछित तरंगों व ध्वनि को कम किया जाना चाहिए। फैक्ट्रियों में



प्रदूषण जाँच मापक व कर्शों में छूट देकर सरकार द्वारा फैक्ट्रियों के मजदूरों को भी ध्वनि प्रदूषण से बचाव के नियमों का पालन आवश्यक रूप से करना चाहिए, जो उनके स्वास्थ्य के बचाव हेतु निर्धारित किये गये हैं। सड़क के किनारे वृक्षों की कतार खड़ी करके ध्वनि प्रदूषण से बचा जा सकता है क्योंकि हरे पौधे ध्वनि की तीव्रता को 10 dB से 15 dB तक कम कर सकते हैं। ध्वनि अवशोषक तथा ध्वनिरोधी सामग्रियों के प्रयोग से ध्वनि तथा शोर को कम करने की युक्तियाँ अपनायी जा सकती हैं। तथा लोगों को ध्वनि प्रदूषण संबंधी दूष्परिणामों के प्रति जागरूक किया जाना चाहिए ताकि वे बचाव हेतु नियमों का पालन आवश्यक रूप से कर सकें।



उड़ान

उदासी के इस लम्हें खुद मैंने बना ली !
फिर भी मुस्कुराहटों के कुछ ठिकाने मैंने निकाली!
रूँ तो न जाने कितनी कहानियाँ है !
इन उदासियों के हिस्से में !
जिनमें एक कहानी तुम्हारी भी तो है.....!
अपने जीवन के सबसे खूबसूरत
मीठे शब्द, तुम्हें ही समर्पित ।
पर नहीं जानती उसका मूल्य तुम्हारे लिए
कुछ है भी या नहीं
तुम्हें पाने का इरादा न था
पर तुम्हें खो देने का डर अब सताती है मुझे ।
पूर्ण स्वीकार भी मैं करती हूँ
तुम्हारे शब्दबाण बड़े तीक्ष्ण होते हैं
बहुत कुछ मर चुका मेरे भीतर
पर मैं नहीं जानती कि वह कौन—सी भावना है
जो तिरस्कार और व्यंग्य बाणों के बावजूद
खत्म होने का नाम नहीं लेती
कितना कुछ था, जो तुमसे कहना था
पर वो शब्द क्यों कुंद हो गए ।
तुम्हें अहसास भी नहीं
जिसके होठों पर सदा तुम्हारे लिए दुआएँ बसाती है ।
जानती हूँ प्रेम की चपलता और गांभीर्य ।
फिर किसलिए ये सारी शिकायतें है ।
ये सारे प्रश्न है
पर फिर भी हर पल याद आते हो
और मैं खुद को भूल जाती हूँ
तुम शायद अपेक्षाओं का
पर कतरना सिखा रहे हो ।
पर मैं प्रेम का पंख दे रही हूँ
अनंत आकार में
इसके साथ उड़ान भरने को ।



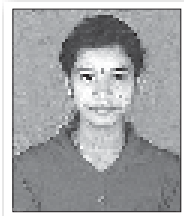
संध्या श्री

स्नातकोत्तर, हिन्दी प्रतिष्ठा
ए. एन. कॉलेज, पटना



प्रतिदान

एक मुस्कुराहट एक उम्मीद
कैसी यह उलझन
कैसी यह लालसा
कुछ कर जाने की तमन्ना
एक अजीब सी है ये बेचैनी
लबो पे हँसी, आँखों में जिज्ञासा
दिल में एक डर, फिर भी मन निडर
आँखें कह रही अनकही कहानी।
बीते हुए कुछ पल में
सुरज की किरण सी
चाँद की चाँदनी सी
देखूँ कुछ ऐसी ही ख्वाब
अगले ही क्षण
कुछ पल थम सा गया
कुछ अरमान टूट से गए
कुछ बिखर से गए
हुआ जब सामना
दुनियाँ के यथार्थ का
यह कैसा रंगमंच
जीवन के भाग-दौर,
मतलब के कुछ लोग
पर फिर भी कुछ पाने की जिद्द
कुछ कर जाने की,
एक पहचान बनाने की आरजू
बीते हुए कुछ पल में सीखा
मैंने कुछ ऐसा ही सबक
कि कुछ करना है तो जिज्ञासा रखो
सफलता के उन सूत्रों को खोजो
खुद पर भरोसा रखो
इस मतलबी दुनियाँ में
कुछ ऐसे इंसान है



दिव्या श्री

छात्रा, स्नातकोत्तर हिन्दी
ए. एन. कॉलेज, पटना



जो किसी फरिश्ते से कम नहीं
जो देते हैं साथ मुश्किलों की घड़ी में
उगली पकड़, दिखाते हैं रास्ता,
मिलता है भरोसा
प्यार, दुलार, फटकार
सब एकाकार
हिम्मत उम्मीद
सब हमें स्वीकार
बस कुछ कर जाने की जिद्द!
मन, मन ही मन है शुक्रगुजार
हर पल साथ
बढ़ूँ अपनी मंजिल की ओर
यही प्रार्थना, यही आशा,
यही प्रतिदान



वर्तमान वैज्ञानिक युग में हिन्दी साहित्य की प्रासंगिकता

कोई भी साहित्य मनुष्य का पेट चाहे न भरे, वह मनुष्य को मनुष्य की तरह रहना अवश्य सिखाता है। हिन्दी साहित्य अपनी प्रासंगिकता की तमाम कसौटियों पर न केवल अतीत प्रासंगिता की तमाम कसौटियों पर न केवल अतीत में खरा उतरता आया है अपितु समकालीन चौतरफा दबावों के बिच भी अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर रहा है



दीपक कु. राय

स्नातक द्वितीय वर्ष
हिन्दी प्रतिष्ठा

ए. एन. कॉलेज, पटना

वर्तमान वैज्ञानिक तकनीकी युग में यह प्रश्न अक्सर उठाया जाता है कि साहित्य जैसी कलाएँ जीवन की मूलभूत आवश्यकता है या नहीं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि वह वस्तु समाज के अस्तित्व या विकास में कोई ऐसा योगदान दे पाती है या नहीं जो समाज के लिए महत्वपूर्ण या अपरिहार्य हो। कई चिंतकों का मानना है कि आज के वैज्ञानिक तकनीकी युग में साहित्य महत्वहीन है क्योंकि वह विज्ञान के समान समाज के लिए कोई उपयोगी भूमिका नहीं निभा पाता। टॉमस लव पीकॉक जैसे साहित्य विरोधियों ने तो यहाँ तक कहा कि इस वैज्ञानिक तकनीकी युग में साहित्य लेखन एक आदिम कार्य है, अतः “साहित्यकार अर्द्ध-बर्बर पशु के समान है।” किन्तु वास्तविकता यह नहीं है। विज्ञान मनुष्य के भौतिक जीवन की आवश्यकताओं को तो पूरा कर सकता है किन्तु उसकी मानसिक भावनात्मक तथा सर्जनात्मक आवश्यकताओं को नहीं। रूसो ने जब “प्रकृति की ओर लौटो” का नारा दिया और विलियम वडर्सवर्थ तथा कोलरिज जैसे कवियों ने स्वच्छन्दवादी

आंदोलन की शुरुआत की तो उसका मूल कारण उस भौतिकता और कृत्रिमता से मनुष्य को बचाना था जो विज्ञान की देन थी। ऐरिक फ्रॉम जैसे चिन्तक बता चुके हैं अतिवैज्ञानिक नहीं, बल्कि सृजनात्मक गतिविधियाँ ही मनुष्य को संतोष दे सकती हैं।

वस्तुतः विज्ञान एवं नकनीक की भूमिका मनुष्य को सुविधा सम्पन्न बनाने तक सीमित है। अब प्रश्न है कि क्या भौतिक सुविधाओं की उपलब्धि मनुष्य को सार्थक बना सकती है? कोई भी साहित्य मनुष्य का पेट चाहे न भरे, वह मनुष्य को मनुष्य की तरह रहना अवश्य सिखाता है। हिन्दी साहित्य अपनी प्रासंगिकता की तमाम कसौटियों पर न केवल अतीत में खरा उतरता आया है अपितु समकालीन चौतरफा दबावों के बीच भी अपनी प्रासंगिकता सिद्ध कर रहा है।

साहित्य की प्रासंगिकता का पहला प्रतिमान है – मनुष्य को संवेदनशीलता बनाने की उसकी क्षमता। संवेदनशीलता वह क्षमता है जिससे मनुष्य अपने आसपास के परिवेश, अन्य मनुष्यों तथा



प्राकृतिक जीवन में निहित वेदनाओं को गहराई से महसूस कर पाता है। दूसरों के दुख में दुखी होने की क्षमता ही वह शक्ति है जो समाज के जटिल ताने-बाने को संचित करती है। आदिकवि वाल्मीकि के मुख से फूटी कविता क्रौंच पक्षी के प्रति उनकी तीव्र संवेदनशीलता का ही विस्फोट था। गोदान दिव्या जैसे उपन्यास तथा हरिजन गाथा जैसी कविताएँ इसी संवेदन क्षमता को उद्बुद्ध करती हैं। छायावादी कवि ने तो कहा भी है

वियोगी होगा पहला कवि,
आह से उपजा होगा गान
निकल कर आँखों से चुपचाप
बही होगी कविता अनजान”

साहित्य की प्रासंगिकता का दूसरा प्रतिमान यह है कि वह न सिर्फ वैचारिक स्तर पर प्रगतिशीलता को धारण करता है बल्कि अपने समय की प्रगति-विराधी रूढ़िवादी तथा यथास्थितिवादी वैचारिकता का पुरजोर खंडन भी करता है। हिन्दी साहित्य में हर युग में ऐसा हुआ है। भक्तिकाल में कबीर ने रीतिकाल में धनानन्द ने आधुनिक युग में भरतेन्दु निराला, मुक्तिबोध तथा प्रेमचन्द ने अपने-अपने समय की प्रतिमानवीय शक्तियों से लगातार वैचारिक स्तर पर संघर्ष किया है। आज के समय में हम अपने संविधान के माध्यम से जिस समतामूलक समाज का स्वप्न देखते हैं, वह कबीर और निराला की आखों ने ही पहली बार देखा था। कबीर कहते हैं—

जाति पाति पूछे नहीं कोई
हर को भजे सो हरि का होई”
—:कबीरदास

हिन्दू कहत है राम हमारा मुसलमान रहमान।
आपस में दोऊ लड़ते है मरम कोऊ नहिं जान

—:कबीरदास

साहित्य की प्रासंगिकता की एक कसौटी यह भी है कि वह समाज के वांछनीय परिवर्तनों के लिये सक्रिय रूप से सहायक हो पाता है। साहित्य समाज का सिर्फ तटस्थ दर्पण नहीं है बल्कि समान के जीवन में सक्रिय हस्तक्षेप करता है।

जहाँ-जहाँ समाज कमजोर है, वहाँ वह परिवर्तन का आह्वान करता है। भारत-भारती जैसी रचनाएँ पूरे देश को पराधीनता के विरुद्ध एकजुट करने के लिए आज तक याद की जाती हैं। दिनकर तथा जयशंकर प्रसाद की निम्नलिखित पंक्तियाँ क्रांति का ही आह्वान करती हैं—

सदियों की ठण्डी बुझी राख सुगबुगा उठी,
मिट्टी सोने का ताज पहन इठलाती है।
रो राह समय के रथ का घर्घर नाद सुनो
सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।”

—:दिनकर

हिमाद्रि तुंग शृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।

—:जयशंकर प्रसाद

साहित्य न सिर्फ जीवन की विसंगतियों का चित्रण करता है बल्कि आदर्श समाज के निर्माण हेतु प्रतिमान भी उपलब्ध करता है। कोई भी समाज जब संक्रमण के दौर से गुजरता है तो उसके सामने सबसे बड़ा प्रश्न यही होता है कि वह किन मूल्यों नैतिक आदर्शों तथा प्रतिमानों को स्वीकार करे। यहाँ साहित्य की भूमिका समाज को



उचित मूल्य प्रदान करने की होती है। भक्तिकाल और आधुनिक काल में विशेष रूप से हम अनेक हिन्दी साहित्यकारों में यह चेतना देखते हैं। उदाहरण के लिए—

परहित सरिस धर्म नहीं भाई,
परपीड़ा सम नहीं अधमाई।”

—:तुलसीदास

औरों को हँसते देखो मनु हँसो सुख पाओ
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी
बनाओ”

—:जयशंकर प्रसाद

अतः साहित्य की प्रासंगिकता इस बात में है कि वह जीवन की मूलभूत समस्याओं को पहचान करता है। समस्याओं को उथली पहचान कोई भी कर सकता है किन्तु साहित्यकार के पास वह सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि होती है तो समस्त उथलेपन को चीरकर मूलभूत वास्तविक समस्या को पहचान लेती है।

भीतर का राक्षसी स्वार्थ
अब साफ उभर आया है

छिपे हु उद्देश्य
यहाँ निखर आए हैं”

—: मुक्तिबोध

वस्तुतः मनुष्य का मूल उद्देश्य संतोष व आनन्द की प्राप्ति है जिसकी उपलब्धि अन्ततः वस्तुओं पर नहीं मन पर निर्भर है। जयशंकर प्रसाद ने कमायनी में सविस्तार बताया है कि आज की बुद्धि प्रधान वैज्ञानिक सभ्यता मनुष्य की भावनात्मक वृत्तियों का दमन कर उसे निरर्थक बना देती है। शुक्ल जी ने ‘निबंध/कविता क्या है?’ में लिखा है कि जैसे—जैसे वैज्ञानिक युग आगे बढ़ेगा, मनुष्य के जीवन में प्रसन्ताएँ बढ़ती जायेगी उन्हें हटाकर मनुष्य को अपने मूल स्वरूप से जोड़ने के लिए कविता की आवश्यकता हमेशा बनी रहेगी। विज्ञान और साहित्य विरोध नहीं पूरकता का संबंध है। विज्ञान मनुष्य के बाहरी व भौतिक जीवन को सँवारता है तो साहित्य आंतरिक व भावनात्मक जीवन को किसी एक के बढ़ाने पर दूसरे को बढ़ाना आवश्यक हो जाता है ताकि व्यक्ति का आंतरिक संतुलन बना रहे।

‘राष्ट्रभाषा हिंदी का किसी क्षेत्रीय

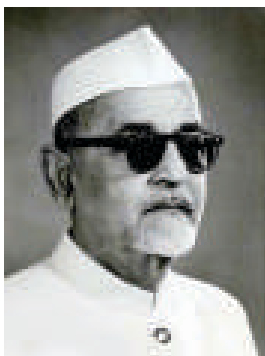
भाषा से कोई संघर्ष नहीं है।’

— अनंत गोपाल श्रेष्ठ।

‘विदेशी भाषा का किसी स्वतंत्र राष्ट्र के राजकाज और

शिक्षा की भाषा होना सांस्कृतिक दासता है।’

— वाल्टर चेनिंग।

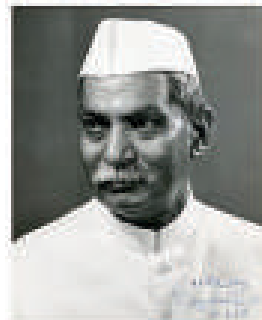


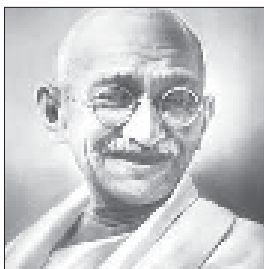
अनुग्रह बाबू की जीवन—गाथा, त्याग और बलिदान की लम्बी कहानी है—कितनी मर्मस्पर्शी और आकर्षक। गाँधी जी के चम्पारण सत्याग्रह से लेकर, अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक उन्होंने बिहार राज्य की सेवा, सभी उपायों तथा पद्धतियों से की। उनके निधन से, राज्य और देश के सार्वजनिक जीवन में जो शून्य स्थान हो गया है, उनकी पूर्ति कठिन होगी।

—: डॉ. जाकिर हुसैन

मेरा परिचय अनुग्रह बाबू से बिहारी छात्र सम्मेलन में पहले पहल हुआ था। मैं उनकी संगठन शक्ति और हाथ में आए हुए काम में उत्साह देखकर मुग्ध हो गया और वह भावना समय बीतने से कम न होकर अधिक गहरी होती गयी।

देशरत्न डॉ. राजेन्द्र प्रसाद



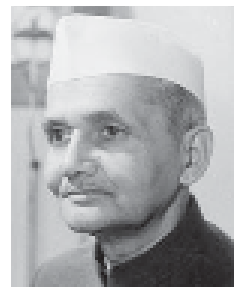


हमारे साथी अनुग्रह बाबू

1917 से अनुग्रह बाबू मेरे सब कामों में साथ देते आये हैं उनका त्याग हमारे देश के लिए गौरव की बात है। उनमें आडम्बर नहीं है। वे सब कामों को इमानदारी से करते हैं। साम्प्रदायिक एकता में उनका उतना ही विश्वास है, जितना मेरा।

—: महात्मा गाँधी

अनुग्रह बाबू वीर, कर्मठ और त्यागी पुरुष थे। ऐसा उदार हृदय वाला प्यार और स्नेह से भरा हुआ व्यक्तित्व मैंने दूसरा नहीं देखा। सादगी की तो वो सच्ची प्रतिमा ही थे। मुझे उनके जीवन से बड़ी प्रेरणाएँ मिली हैं।



—: लाल बहादुर शास्त्री



समाज में हमेशा कुछ ऐसे व्यक्ति होते हैं जो भविष्य द्रष्टा होते हैं और समय से आगे की बात देखते और करते हैं। ऐसे व्यक्ति मानव-समाज की भावी प्रगति के लिए योजना बनाते हैं। स्व. बाबू साहब इन्हीं थोड़े से महान भविष्य निर्माताओं में थे। हमारे लिए दुर्भाग्य की बात यही है कि हम उनसे तब वंचित हो गये जब उनकी आवश्यकता सबसे अधिक थी।

—: डॉ. श्रीकृष्ण सिंह

अनुग्रह बाबू बिहार प्रान्त के दो उच्चारम शासकों में एक थे, फिर भी उनके आदमी और सरलता में कोई अवसर नहीं पड़ा। शायद उनके अनेक गुणों में जो सर्वाधिक हृदयग्राही था, वह उनकी सरस्वती थी। अदना से वदना आदमी भी उन तक पहुँच सकता था। शासक में यह गुण विरले ही पाया जाता है।



—: जय प्रकाश नारायण



SALIENT FEATURE ::

- | | |
|--|---|
| <ul style="list-style-type: none"> • Constituent Unit of Patliputra University, Patna • "College with Potential for Excellence status (CPE)" by UGC • Accredited by NAAC with Grade "A" (3rd Cycle with CGPA 3.27/4) • Sprawling campus in 13 Acre • Separate Administrative Building and Examination Hall • Well Equipped Laboratories and Spacious Classrooms • Well stocked Library running on INFLIBNET Soul 2.0 Software • Each Department have Seminar Library and Smart Glass facilities | <ul style="list-style-type: none"> • Well qualified and experience teaching faculties • Good research Culture • State of Art Infrastructure • Experience and cooperative staff • Excellent Academic Results and Healthy Academic Environment • Center for Teaching, Learning and Evaluation • Well prepared playground, Badminton court and Gymnasium • Well-equipped Language Laboratory • Good research Culture • Canteen |
|--|---|

ए.एन. कॉलेज, पटना

तृतीय चक्र, श्रेणी 'ए' – राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (नेक) द्वारा पुनर्मूल्यांकित विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यु.जी.सी.) द्वारा 'विशिष्ट' महाविद्यालय के रूप में रेखांकित

पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना



ए.एन. कॉलेज, पटना

तृतीय चक्र, श्रेणी 'ए' – राष्ट्रीय मूल्यांकन एवं प्रत्यायन परिषद् (नैक) द्वारा पुनर्मूल्यांकित
विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (यु.जी.सी.) द्वारा 'विशिष्ट' महाविद्यालय के रूप में रेखांकित
पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना